रहिमन विलास

(परिवर्द्धित संस्करण)

संपादक तथा संकलनकर्ता

ब्रजरत्नदास, बी० ए० (प्रयाग)

एल-एल बी [काशी]

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

द्वितीयावृत्ति] १९४८ [मूल्य २)

विषय-सूची

आज्ञापत्र भेजा, जो इन लोगों को जालौर में मिला। इसके मिलने से इन लोगों का उत्साह बढ़ गया और सं० १६१८ वि० में ये दिल्ली पहुँच गये।

अकबर बादशाह ने इन दोनों सरदारों को आश्वासन दिया और अब्दुर्रहीम ख़ाँ को अपनी शरण में ले लिया। इनके नौकरों के लिए वेतन निश्चित कर दिया और इनके पालन तथा शिक्षण का कुल भार अपने ऊपर ले लिया। यद्यपि दरबार में इनके पिता के बहुत से शत्रु थे और वे बहुधा बैरम ख़ाँ के उद्धतपन और विद्रोह की बातें उठा कर अकबर के चित्त को इस बच्चे की ओर से खट-काना चाहते थे पर अकबर के हृदय में इसकी ओर से कभी मालिन्य नहीं आया। वह इसे मिर्ज़ा ख़ाँ कह कर पुकारता था। होनहार थे, इससे अकबर की रक्षा में अच्छी शिक्षा प्राप्त की और अमीरों के लड़कों की तरह खेल में व्यर्थ समय नहीं व्यतीत किया। जब यह अवस्था को प्राप्त हुए और पढ़ लिख कर योग्य हुए तब दरबार में इनका सहायक पैदा करने के लिए अकबर ने ख़ानेआज़म मिर्ज़ा अज़ीज़ कोकल्ताश की बहिन माहबानू बेगम से इनका विवाह करा दिया।

सं० १६२९ वि० में गुजरात विजय हुआ और ख़ानेआज़म मिर्ज़ा अज़ीज़ वहाँ का सूबेदार नियत हुआ। दूसरे वर्ष वहाँ विद्रोह होने पर यह जब अहमदाबाद में घिर गया और अकबर ने चुने हुए सरदारों के साथ दो महीने का रास्ता सात दिन में तै किया था, तब यह भी साथ गए थे। जब मिर्ज़ा कोका को फिर से गुजरात की सूबेदारी दी जाने लगी तब वह हठी सरदार अड़ गया और कहने लगा कि क्या [illegible] हुआ [illegible]ओं के घर के लिए मैं ही घलुआ [illegible]। तब [illegible]जला होने पर [illegible] अब्दुर्रहीम को सं० १६३३ वि० में गुजरात [illegible] किया। इनकी उस समय केवल

उन्नीस वर्ष की अवस्था थी, इससे चार बुद्धिमान और वृद्ध सरदारों को साथ किया। वज़ीर ख़ाँ को प्रधान सम्मतिदाता, मीर अलाउद्दीन कज़वीनी को अमीन, प्रयागदास को दीवान और सैय्यद मुज़फ़्फ़र बारह: को बख़्शी नियत किया। सं० १६३७ वि० में यह दरबार बुलाए गए और मीर-अर्ज़ के पद पर नियुक्त किए गए और तीन वर्ष के अनन्तर सुलतान सलीम के शिक्षक बनाए गए।

जब बादशाह ने गुजरात पर अधिकार किया था उस समय वहाँ का सुलतान मुज़फ़्फ़र भी क़ैद किया गया था। यह सं० १६३५ वि० में क़ैद से भाग कर गुजरात गया और जूनागढ़ पहुँच कर काठियों की रक्षा में रहने लगा। सं० १६४० वि० में जब बादशाह ने शहाबुद्दीन अहमद ख़ाँ के स्थान पर, जो गुजरात का सूबेदार था, एतमाद ख़ाँ को भेजा तब पहिले सूबेदार के कुछ नौकरों ने विद्रोह मचा दिया। मुज़फ़्फ़र, जो ऐसे अवसर की ताक में चुपचाप बैठा था, झटविद्रोहियों से आकर मिल गया और उनका सरदार बन कर उसने अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। इसके अनन्तर बड़ौदा पर चढ़ाई कर उसे विजय कर लिया, जहाँ से बहुत लूट हाथ लगी और इसी सहायता से मुज़फ़्फ़र ने चालीस सहस्र के लगभग सेना एकत्रित कर लिया। दरबार जम गया, पदवियाँ बँटने लगीं और ख़ुतब: पढ़ा जाने लगा। समय का हेर फेर देखिए कि यह वही सुलतान मुज़फ़्फ़र था, जो पहिले गुजरात का शाह था, फिर क़ैदी होकर तीस रुपये मासिक वृत्ति पर आगरे में जीवन व्यतीत कर रहा था और अब भाग कर पुनः शाही दरबार जमा बैठा था।

बादशाह को जब यह समाच[illegible]ा तब उन्होंने मिर्ज़ा अब्दुर्रहीम को चुनी हुई सेना के [illegible]मन करने के लिए भेजा। यह भी इस सेना के सा[illegible]ात की ओर बढ़े और बहुत जल्दी पाटन में पहुँचे [illegible] मारे गये थे।

पाटन में पहुँचते ही इसने सब सरदारों को एकत्र करके उनसे सम्मति ली और अधिक सम्मति से यही निश्चय हुआ कि शत्रु की सेना चालीस सहस्र और बादशाही सेना केवल दस सहस्र है, इससे मालवा के सरदारों की सहायक सेना के आने तक ठहरे रहना उचित है तथा ऐसी ही बादशाह की आज्ञा भी है। मिर्ज़ा ख़ाँ के एक वृद्ध सरदार दौलत ख़ाँ लोदी ने, जो उसका मीर शमशेर और सेनायक था, सम्मति दी कि उस समय के विजय में कई साझी हो जायँगे, इससे यदि ख़ानख़ानाँ होने की इच्छा हो तो अकेले ही विजय प्राप्त कीजिए। गुमनामी के जीवन से प्रसिद्ध मृत्यु भली है।

नवयुवक मिर्ज़ा का हृदय नए उत्साह से परिपूर्ण था। इससे उन्हें इसी अनुभवी वृद्ध की सम्मति ठीक जान पड़ी और उन्होंने बड़े साहस और उत्साह से युद्ध की तैयारी की। अहमदाबाद से तीन कोस पर सरखेज नामक स्थान में घोर युद्ध हुआ और शत्रु की चौगुनी संख्या का प्रभाव मुग़ल सेना पर पड़ रहा था कि ठीक ऐसे समय छः सात सहस्र सवारों के साथ मुज़फ्फर ने मिर्ज़ा ख़ाँ पर धावा किया, जो मध्य में तीन सौ सवारों और सौ हाथियों के साथ डटा हुआ था। इनके मित्रों ने चाहा कि इन्हें हटा ले जायँ पर इनका रक्त यह सब दृश्य देख कर चोटैल सिंह की तरह खौल उठा था और हटना हटाना दूर रहा इन्होंने झट घोड़े की बाग उठाई और हाथीवानों को धावा करने के लिए 'करना' में आज्ञा दी। इसके शब्द को सुनते ही बादशाही सेना में उत्साह बढ़ने लगा। ठीक इसी समय ख़्वाजा निज़ामुद्दीन, जिसे मिर्ज़ा ने कुछ सेना के साथ शत्रु के पीछे पहुँच कर आक्रमण करने के लिए भेजा था, बड़े वेग से आ गिरा, जिससे मुज़फ़्फ़र बड़ा घबड़ाया। हल्ला हुआ कि बादशाह आ पहुँचे या मालवा से सेना आ पहुँची। बादशाही सैनिकों के हृदय बित्तों उछलने लगे, बड़ा कड़ा धावा

शत्रु के भीड़भाड़ को परास्त कर भगा दिया। इस विजय का पूरा समाचार बादशाह को लिख भेजा गया। बादशाह ने बड़ी प्रसन्नता के साथ इस विजय के लिए ईश्वर को धन्यवाद दिया, क्योंकि यह विजय उसी के द्वारा शिक्षित एक नवयुवक के हाथ हुई थी।

मुज़फ्फ़र यहाँ से भागा हुआ खम्भात गया, जहाँ के व्यापारियों को लूट मार कर नई सेना एकत्रित करने लगा। मिर्ज़ाखाँ ने भी मालवा की सेना के आ जाने पर उधर चढ़ाई की, जिससे वह नादोत चला गया। यह एक पहाड़ी स्थान है। पर्वत और घाटियों में बड़ी लड़ाई हुई और यद्यपि मुज़फ्फ़र की सेना अधिक थी; परन्तु इन्होंने पर्वत पर अपना तोपखाना जमाकर ऐसी अग्नि-वर्षा की कि वह घबड़ा कर राजपीपला के जंगलों की ओर भाग गया। गुजरात में इस विद्रोह का अंत सुलतान मुज़फ्फ़र के साथ ही हुआ, जो सं० १६५० में आत्महत्या कर मर गया। बादशाह ने मिर्ज़ा खाँ को पाँच हज़ारी मंसब और खानखानाँ की पदवी देकर सम्मानित किया।

मिर्ज़ा खाँ ने सरखेज युद्ध के पहिले मनौती मानी थी कि विजय के अनंतर जो कुछ मेरे पास है सब बाँट दूँगा और उन्होंने वैसा ही किया। हाथी घोड़े आदि जिन्हें छोटे सैनिकगण या मँगते अपने काम में नहीं ला सकते थे उनके दाम आँके जाकर बाँटे गए। एक सिपाही अंत में आया और कहने लगा कि मुझे कुछ नहीं मिला तब एक क़लमदान जो आगे रखा हुआ था उठा कर उसे दे दिया। इसके अनंतर इन्होंने एक पत्र अबुलफ़ज़ल को भी लिखा कि यह प्रांत अशांतिमय हो रहा है, मेरे सहकारी गण दुमुँहे हो रहे हैं और कोई उचित सम्मति नहीं देता है। यदि ऐसे समय बादशाह स्वयं यहाँ आवें या राजा टोडरमल को भेजें तो यहाँ शांति फैलाने का प्रयत्न सफल हो जायगा। शेख ने

उत्तर में बहुत कुछ उत्साह दिलाया और बादशाह से भी सब बातें कह सुन दीं। इनकी घबड़ाहट ठीक ही थी क्योंकि एक नवयुवक के लिये ऐसी ऐसी दो विजयों के प्राप्त होने के अनंतर फिर उसी प्रांत में गड़बड़ मचने की आशंका होना डर का कारण ही था, इससे उसने अपने हृदय की बात लिख दी। उनका राजा टोडरमल को बुलाना उनकी दूरदर्शिता और मनुष्य की पहिचान बतलाता है क्योंकि अंत में इन्हीं राजा टोडरमल ने वहाँ शांति स्थापित की थी। सं० १६४४ वि० में गुजरात का प्रबंध ठीक करके क़लीज खाँ को वह प्रांत सौंप कर यह शाही आज्ञानुसार दरबार लौट गये।

सं० १६४६ वि० में खानखानाँ ने बाबर के आत्मचरित्र का तुर्की भाषा से फ़ारसी में अनुवाद करके बादशाह को समर्पण किया, जिससे बादशाह बड़े प्रसन्न हुए। इसी वर्ष राजा टोडरमल की मृत्यु हो जाने के कारण यह वकील मुतलक़ बनाये गए और जौनपुर प्रांत जागीर में मिला।

सं० १६४८ वि० में यह मुल्तान प्रांत के सूबेदार बनाए गए और बहुत बड़ी सेना के साथ ठट्टा और सिंध प्रांत पर अधिकार करने के लिये भेजे गए। इन्होंने पहिले मुल्तान पहुँच कर सब तैयारी ठीक की और तब उस ओर कूच किया। खानखानाँ ने बड़ी बुद्धिमानी से जल्दी कूच करते हुए दुर्ग सेहवन के नीचे से निकल-कर लखी पर अधिकार कर लिया। एक सैनिक के घायल हुए बिना ही सिंध की इस कुंजी पर अधिकार हो गया। जिस प्रकार बंगाल का फाटक गढ़ी और काश्मीर का बारहमूला है, उसी प्रकार यह सिंध का फाटक है। इसके अनंतर दुर्ग सेहवन घेर लिया गया और मिर्ज़ा जानीबेग भी यह समाचार सुनकर ससैन्य आ पहुँचा और नसीरपुर घाट पर एक दृढ़ स्थान में पड़ाव डाला। खान-

ख़ानाँ के सहायतार्थ भी सेना आ पहुँची। पहिले मिर्ज़ा जानी ने लगभग दो सौ नावों के एक जंगी बेड़े को युद्धार्थ भेजा। खानखानाँ के पास केवल पचास ही नावें थीं। इन्होंने इन पर चुनी हुई सेना और कुछ तोपें सजा कर भेजीं। ईश्वरी कृपा से शाही नावों को धारा के साथ जाना था और शत्रु चढ़ाव पर आ रहे थे। पहिले अच्छी अग्निवर्षा हुई, फिर पास आने पर तलवार भाले चलने लगे। खौलते पानी की तरह वीर लोग उबल उबल कर शत्रु के नावों पर कूद कर जा पड़ते और बढ़ बढ़ कर हाथ मारते थे। नावें नदी पर जल पक्षियों की तरह तैरती हुई फिर रही थीं। कई घंटे के कड़े युद्ध के अनन्तर शत्रु के बेड़ाध्यक्ष के डूबने पर ख़ानखानाँ की विजय हो गई। छोटी छोटी कई लड़ाइयाँ हुईं पर अंत में एक वर्ष के बाद एक युद्ध में मिर्ज़ा जानी ने स्वयं परास्त होने पर संधि के लिए प्रस्ताव किया। ख़ानखानाँ ने भी रसद की कमी से इसे इन शर्तों पर मान लिया कि मिर्ज़ा जानी दुर्ग सेहवन बादशाह को दे दे, ख़ानखानाँ के पुत्र मिर्ज़ा एरिज से अपनी पुत्री का विवाह कर दे और वर्षा व्यतीत होने पर राजधानी जाकर बादशाह से भेंट करे। दुर्ग सेहवन हसन अली अरब को सौंपकर ख़ान-ख़ानाँ अपने पुत्र का विवाह कर लौट आए। खानखानाँ के दर-बार में एक कवि मुल्ला शकेबी नामक थे, जिन्होंने इस विजय पर एक मसनवी बनाई थी और उसे उस समय सुनाया था, जब मिर्ज़ा जानी भी वहाँ उपस्थित था। खानख़ानाँ ने प्रसन्न होकर एक सहस्र अशर्फी पुरस्कार दी और मिर्ज़ा जानी ने भी उसके एक शैर पर एक सहस्र अशर्फी पुरस्कार दी। वह शैर यों है—

हुमाए* कि बर चर्ख़ कर दी ख़िराम।
गिरफ़्ती व आज़ाद करदी ज़े दाम॥

---

* हुमा एक कल्पित पक्षी का नाम है, जिसका यह गुण कहा जाता है कि वह जिसके सिर पर बैठ जाय वह अवश्य राजा होता है।

अर्थ—हुमा जो आकाश में उड़ रही थी उसे जाल में पकड़ कर छोड़ दिया।

मिर्ज़ा जानी ने कहा था कि तुमने हमें हुमा बनाया यही ईश्वर की कृपा है और यदि गीदड़ कहते तो तुम्हें कौन रोक सकता था?

वर्षा बीतने पर जब मिर्ज़ा जानी दरबार जाने के लिए बहाने करने लगा तब खानख़ानाँ पुन: ससैन्य ठट्टा गए। मिर्ज़ा तीन कोस आगे बढ़ कर स्वागत के लिए सेना सहित आया पर जब उसने व्यूह रचा तब खानख़ानाँ ने उसे फिर परास्त किया। तब मिर्ज़ा जानी सपरिवार ख़ानखानाँ के साथ दरबार गया और बादशाह ने उसे तीन हज़ारी मंसब और सिंध की अध्यक्षता देकर सम्मानित किया।

अहमदनगर के सुल्तान बुर्हानुल्मुल्क निज़ाम शाह द्वितीय की सं० १६५२ वि० में मृत्यु हो गई और उसका अल्पवयस्क पुत्र सुलतान इब्राहीम शाह अहमदनगर की गद्दी पर बैठा। इस कारण उस राज्य में बड़ा गड़बड़ मचा हुआ था और वहाँ के सरदार गण आपस में झगड़ कर कई भागों में बँट गए थे। बीजापुर के सुलतान ने अहमदनगर का प्रबन्ध ठीक करने के लिए सेना भेजी, जिससे युद्ध करके इब्राहीम मारा गया। इसने एक दिन पहिले अपने भाई इस्माईल को अंधा कर मार डाला था और दूसरे ही दिन उसे उसका प्रतिफल मिल गया। अकबर ने इसी अवसर के लिए सुलतान मुराद को बड़ी सेना के साथ पहिले ही गुजरात भेज दिया था और जैसे ही अहमदनगर के एक सरदार मीर मंजू ने सहायता के लिए प्रार्थना की वैसे ही सुलतान मुराद और खानखानाँ को दक्षिण पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। बादशाह के आज्ञानुसार सुलतान मुराद भड़ोंच पहुँचकर वहीं नवाब की प्रतीक्षा में ठहर गए। खानख़ानाँ को

अपनी सेना सुसज्जित करने में कुछ समय लग गया और फिर कुछ दिन अपने जागीर भिलसा में, जो रास्ते में पड़ता था ठहर गए। जब यहाँ से यह उज्जैन गए तब शाहज़ादे ने इस समाचार को सुनकर आवेश में इन्हें एक कड़ा पत्र लिखा। खानखानाँ ने उत्तर में लिखा कि उसने खानदेश के नवाब राजा अली खाँ को मिला लिया है और वह उसे [illegible] हुए आवेगा। शाहज़ादे ने इस उत्तर पर कैसा क्रोध प्रकाश किया और उसके दरबारियों ने उस पर कैसा रंग चढ़ाया इन सब बातों का पता खानखानाँ के चरों ने इन्हें तुरन्त दिया। इन्होंने अपने तोपखाने और सेना आदि को लिवाने का प्रबन्ध मिर्ज़ा शाहरुख के हाथ में छोड़ा और थोड़ी सेना सहित राजा अली खाँ को साथ लेकर दक्षिण को कूच किया। शाहज़ादा यह समाचार सुनकर भी इनकी प्रतीक्षा में नहीं ठहरा और ससैन्य अहमदनगर की ओर चल दिया। अहमदनगर से चालीस कोस उत्तर चाँदावर स्थान में खानखानाँ ने मारामार पहुँच कर उन्हें जा लिया। पहिले दिन भेंट ही नहीं हुई और दूसरे दिन हुई तो शाहज़ादे के तेवर चढ़े हुए थे, जिसके रूखे बर्ताव से दुःखित होकर खानखानाँ अपनी सेना में चले आए। इसके अनन्तर लिखा पढ़ी होने पर दोनों ओर से सफ़ाई हो गई।

सं० १६५२ वि० के अंत में अहमदनगर का दुर्ग घेर लिया गया, स्थान स्थान पर तोपखाने लगाए गए और खानें खोदकर दीवाल उड़ाने का प्रबन्ध होने लगा। बुर्हान निजामशाह की बहिन चाँदबीबी सुलताना ने इब्राहीम के पुत्र को गद्दी पर बिठा कर और वहाँ के सरदारों को समझाकर स्वामिभक्त बना लिया। उसने बीजापुर से संधि कर ली और स्वयं महल से निकलकर दुर्ग की रक्षा का प्रबन्ध किया। इधर बादशाही सरदारों में आपस के

वैमनस्य होने से और सुलतान मुराद की अयोग्यता से कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थीं। रसद आदि रास्ते में लुटने लगे, जिससे अन्न का कष्ट होने लगा और दूसरे यह भी शोर मचने लगा कि बीजापुर और गोलकुंडा के सुलतानों ने भी अहमदनगर की सहायता के लिए सेना एकत्र किया है। इन कारणों से जब चाँदबीबी ने संधि के लिए प्रार्थना की तब शाहजादे ने झट मान लिया। बुर्हान निजामशाह का पौत्र बहादुर निज़ाम शाह सुलतान हुआ, जिसे अहमदनगर जागीर में दी गई और बरार साम्राज्य में मिला लिया गया। शाहजादे ने शाहपुर नामक नगर बसा कर अपनी राजधानी बनाई और अमीरों को जागीरें दीं।

दक्षिण के सुलतानों ने एकमत होकर लगभग सत्तर सहस्र सेना एकत्र की और उसे मोतमिदुद्दौला सुहेल ख़ाँ के सेनापतित्व में बादशाही सेना पर भेजा। सुल्तान मुराद की बड़ी इच्छा थी कि सुहेल खाँ से युद्ध करें पर उसके चापलूस सेनानियों ने सम्मति नहीं दी, इससे वह कुछ नहीं कर सका। खानख़ानाँ ने जब यह हाल देखा तब मिर्जा शाहरुख और नवाब राजा अली ख़ाँ को साथ ले बीस सहस्र सेना सहित शाहपुर से कूच कर दिया। वे पाथरी से बारह कोस पर आश्टी नामक स्थान पर ठहरे और सेना का प्रबन्ध ठीक किया। सुहेल ख़ाँ भी अपनी सेना की संख्या और तोपख़ाने के घमंड में भूला हुआ आ पहुँचा और आश्टी के पास सोंदर के मैदान में युद्ध की तैय्यारी हुई। सुहेल खाँ दाहिने भाग पर बीजापुर की आदिलशाही सेना को और बाएँ पर गोलकुंडा की कुतुबशाही सेना को रखकर मध्य में स्वयं अहमदनगर की निज़ामशाही सेना सहित डट गया। खानख़ानाँ भी बाएँ भाग पर राजे अली ख़ाँ को नियत कर स्वयं मध्य में खड़े हुए। दक्षिणी सेना में तोपख़ाना अधिक था तथा सामान भी अच्छा था और इसी से पहिले तोपों का युद्ध आरम्भ हुआ। बादशाही सेनापति भी अपनी

इस कमी को देख रहा था। उसने सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी और हरावल से हरावल भिड़ गये। राजे अली खाँ और राजा रामचन्द्र ने आदिलशाहियों पर इतने वेग से धावा किया कि उन्हें अपनी तोपों को खाली करने तक का अवसर नहीं मिला। अच्छी गुत्थमगुत्था हुई, कभी वह पीछे हटते कभी यह। युद्ध के इस घमासान में राजे अली हटता हटता खानखानाँ के स्थान पर आ गया था, इससे शत्रु ने इन्हें ही सेनापति समझ बड़ा तोपखाना इन्हीं पर सर किया और बड़े वेग से धावा किया। राजा अली वीरतापूर्वक लड़कर मारा गया और सुहेल खाँ यह समझकर कि सेनापति मारा गया खानखानाँ के कम्प को लूटता हुआ आगे बढ़ कर एक नदी पर ठहर गया।

इधर खानखानाँ ने अपने सामने के शत्रु का नाश कर दिया और बढ़ कर वहाँ पहुँचे जहाँ शत्रु का तोपखाना और मेगज़ीन थी। संध्या हो गई थी इससे यह उन तोपों को आगे लगाकर वहीं रात्रि व्यतीत करने के लिये उतर पड़े। शत्रु भी पास ही था पर एक को दूसरे का पता नहीं था। इतने में सुहेल खाँ के सैनिकों ने मशाल आदि बाले तब खानखानाँ ने पता लगाने को सैनिक भेजे। जब ठीक समाचार मिला तो शत्रु की ही तोपों को उन पर सीधा किया, जिससे उनमें बड़ा गड़बड़ मचा। खानखानाँ ने करना में विजय की प्रसन्नता फुँकवाना आरम्भ किया, जिससे बादशाही सैनिकगण जो इधर उधर लुकेछिपे बैठे थे अपने करने के शब्द को पहिचान कर आने लगे। यह रात्रिभर होता रहा, जिससे सुबह होते होते सात आठ सहस्र सेना एकत्र हो गई। सुहेल खाँ को भी सब पता लग चुका था पर उसके पास लगभग बीस पचीस सहस्र के सेना थी इससे वह डट कर जमा हुआ था। खानखानाँ ने यह विचार कर कि सेना कम है, उजेला होने पर पर्दा खुल जायगा इसलिये

पौ फटने के समय की धुँधलाहट में बिगड़ी बात बनाने की इच्छा से धावे की आज्ञा दे दी। दौलत खाँ लोदी ने कहा कि इतने शत्रु पर आक्रमण करना प्राण गँवाना है। एक काम कीजिये, मेरे पास छः सौ सवार हैं, मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं शत्रु पर पीछे से धावा करूं। ख़ानख़ानाँ ने कहा कि दिल्ली का नाम नष्ट हो जायगा। उसने उत्तर दिया कि यदि शत्रु को परास्त कर सके तो सौ दिल्ली स्थापित कर लेंगे और यदि मारे गये तो ईश्वर जाने। सय्यद कासिम बारह: भी दौलत खाँ के साथ था। उसने कहा कि हम तुम हिन्दुस्तानी हैं, हम लोगों के लिये मृत्यु छोड़ दूसरा उपाय नहीं है पर ख़ानख़ानाँ की इच्छा तो पूछ लें। तब दौलत खाँ ने नवाब से कहा कि शत्रु की सेना बहुत है और विजय ईश्वर के हाथ है। यदि पराजित हुए तो आपको हम लोग कहाँ ढूढ़ेंगे ख़ानख़ानाँ ने उत्तर दिया कि 'लाशों के नीचे'।

इसके अनन्तर जब सुहेल खाँ अपने स्थान पर से हिला तब ख़ानख़ानाँ ने उस पर सामने से धावा किया। दोनों ओर के सिपाही एक दिन और एक रात्रि के भूखे प्यासे और थके हुए होने पर भी जी तोड़ लड़े पर जब दौलत खाँ बड़े वेग से पीछे आ गिरा तब सुहेल खाँ की सेना में गड़बड़ी और भगदड़ मच गई। सुहेल खाँ स्वयं घायल हो गया था और उसे उसके साथी किसी प्रकार निकाल ले गये। थोड़ी देर में मैदान साफ़ हो गया और ख़ानख़ानाँ की विजय हो गई। ख़ानख़ानाँ ने इस विजय के उपलक्ष में पचहत्तर लाख का सामान, जो पास था, लुटा दिया। यह विजय ऐसी थी कि वह ख़ानख़ानाँ के इतिहास में सूर्य्य की किरणों से लिखी जानी चाहिये। वस्तुतः इस विजय की धूम से उस समय सारा हिन्दुस्तान गूँज उठा। बादशाह ने भी इस समाचार को सुनकर बड़ी प्रसन्नता मनाकर इनके लिए अच्छी खिलअत और पत्र भेजा। परन्तु जब इस विजय से भी दक्षिण की उलझन नहीं

सुलझी तब बादशाह ने इन्हें दरबार में बुला लिया और इनके स्थान पर शेख़ अबुल्फ़ज़ल भेजे गये। इसी वर्ष सं० १६५५ वि० में ख़ानखानाँ की स्त्री माहबानू बेगम की अम्बाले में मृत्यु हो गई

दक्षिण से शेख़ अबुल्फ़जल की रिपोर्ट पहुँचने पर बादशाह उसकी सम्मति के अनुसार स्वयं दक्षिण जाने का विचार ठीक कर लाहौर से आगरे आये और वहाँ से दक्षिण की ओर चले। सुल्तान मुराद की अत्यन्त मद्यपान के कारण मृत्यु हो चुकी थी, इस लिये सुल्तान दानियाल को ख़ानखानाँ के साथ आगे भेजा और इन लोगों ने सं० १६५७ वि० के आरम्भ में अहमदनगर पहुँच कर उसे घेर लिया। मोर्चे और दमदमे बढ़ाये जाने लगे और सुरंगें खोदी जाने लगीं। घेरा कड़ा होने पर भी दक्खिनी बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा कर रहे थे और बाहर चारों ओर फैले हुए दक्खिनी रसद लूट रहे थे। चाँद बीबी दुर्ग में सैनिकों को उत्साह दिलाने में कुछ उठा नहीं रखती थी परन्तु जब उसने अकबरी प्रताप और मुग़ल साम्राज्य की प्रभाव-शालिनी वाहिनी को प्रबल होते देखा तब प्रतिष्ठा बचाने के विचार से दुर्ग दे देने की सम्मति दी। दुर्ग के सरदारों में पटती नहीं थी, आहंग ख़ाँ जूनार भाग गया था और चीता ख़ाँ हबशी ने चाँद बीबी के विरुद्ध षड़यंत्र रचकर सैनिकों को उभाड़ा। इससे वे विद्रोही चीता ख़ाँ के साथ महल में घुस गये और चाँद बीबी को मार डाला। ख़ानख़ानाँ ने एक सुरंग उड़वाई, जिससे तीस गज़ लम्बी दीवाल गिर गई और मुग़ल सेना धावा कर भीतर घुस गई। चीता ख़ाँ कई सहस्र दक्खिनियों के साथ मारा गया, दुर्ग पर अधिकार हो गया और बहादुर निज़ाम शाह पकड़ा गया। ख़ानख़ानाँ इसे सपरिवार साथ लेकर बादशाह के पास बुर्हानपुर गये।

जिस समय ख़ानख़ानाँ शाहज़ादा दानियाल के साथ अहमद-नगर जा रहा था, उस समय उसे शेख़ अबुल्फ़ज़ल की उन कार्-

वाइयों का पता लग गया था, जो उसने अहमदनगर के विजय के लिए किया था। ख़ानख़ानाँ और शेख़ अबुल्फ़ज़ल में पहिले बड़ी मित्रता थी और बहुत दिन बिछुड़ने पर दोनों के मिलने का समय आया था पर देखना चाहिए कि मित्रता का रूप कैसा बदल गया था कि ख़ानख़ानाँ ने शाहज़ादे को समझाकर शेख़ को आज्ञा भेजवा दी कि हम लोगों के पहुँचने तक आगे न बढ़ें। उधर यह आज्ञा भेजवाकर स्वयं आसीर दुर्ग के पास ठहर गए कि इसे विजय कर और रास्ता साफ़ कर आगे बढ़ेंगे। यह भी शेख़ पर दूसरी चोट थी क्योंकि ख़ानदेश में शेख़ का समधिआना था और उसे अहमदनगर लेने से रोक कर आप बीच ही में टिक रहे। शेख़ भी कम नहीं थे, उन्होंने झट बादशाह को सब बातें जता दीं, जिससे तुरंत ख़ानख़ानाँ को आज्ञा मिली कि वे अहमदनगर जायँ और आसीरगढ़ का काम बादशाह स्वयं अपने हाथ में लेंगे। बादशाह ने वहाँ पहुँच कर आसीर को घेर लिया और शेख़ को अपने पास बुला लिया।

आसीरगढ़ विजय हो चुका था, इसलिए अकबर ने ख़ानदेश का नाम शाहज़ादा दानियाल के नाम पर दानदेश रखा और उसे बरार सहित एक प्रांत बनाकर सुलतान दानियाल को सूबेदार और ख़ानख़ानाँ को उसका दीवान नियत किया। इसी समय ख़ानख़ानाँ की पुत्री जाना बेगम का सुलतान दानियाल से विवाह हुआ। आगरे से सुल्तान सलीम के विद्रोह का समाचार आ रहा था और इधर अहमदनगर के दो सर्दार राजूमना और मलिक अंबर ने शाह अली के पुत्र को मुर्तज़ा निज़ाम शाह द्वितीय की पदवी के साथ गद्दी पर बिठाकर फिर विद्रोह आरम्भ कर दिया था। बादशाह ने खानखानाँ को दक्षिण भेजा और स्वयं आगरे लौटे। शेख़ अबुल्फ़ज़ल को ख़ानख़ानाँ आदि के कहने से दक्षिण

के प्रबन्ध को ठीक करने के लिए छोड़ गए। ❀ यह भी खान-ख़ानाँ की एक चाल ही थी क्योंकि सुल्तान दानियाल तो सूबेदार थे और स्वयं प्रधान सेनापति और शाहजादे के श्वसुर थे इससे एक प्रकार शेख भी उनके अधीन रह गए। वे क्या कर सकते थे ? बैठे बैठे निरीक्षण किया करते थे। इनकी सम्मति इच्छानुसार मानी या नहीं मानी जाती थी। शेख ने जिस लेखनी से खानख़ानाँ को उत्साहपूर्ण पत्र लिखे थे, उसी से अब उन पर ऐसे ऐसे कटाक्ष किए हैं, जो कोई शैतान के बारे में भी नहीं लिख सकता पर वह भी इस ढंग से कि रोचकता उसमें कूट कूट कर भरी हुई है। इस बात के लिए हर एक बुद्धिमान के मन में यह शंका उठेगी कि पहिले तो इनमें वैसी मित्रता थी और अब ऐसी चालें क्यों चली जाने लगीं ? बहुधा ऐसा देखा जाता है कि दो अंतरंग मित्र, जिनके उन्नति का मार्ग अलग अलग है, एक दूसरे की सहायता के लिए सदा तन मन धन सहित तैयार रहते हैं पर ज्योंही एक मार्ग पर घुड़दौड़ आरम्भ हुई कि एक दूसरे को गिराने तक का प्रयत्न करने लगता है। यह स्वभाव आज से तीन शताब्दि पहिले भी नया नहीं था और यही कारण उन दोनों सर्दारों के कूटनीति ग्रहण करने का रहा होगा।

सुल्तान सलीम के विद्रोह के शांत होने पर शेख अबुल्फ़ज़ल दरबार बुलाए गए पर जहाँगीर के आदेश से रास्ते में ओड़छा-नरेश वीरसिंह देव बुंदेला ने उसे मार डाला। सं० १६६२ वि० में शाहज़ादा दानियाल अति मद्यपान के कारण मर गया, जिससे

❀ शाहजाना ने ख़ानख़ानाँ को अम्बर पर और अबुल्फ़ज़ल को राजूमान पर भेजा। ख़ानख़ानाँ ने अपने पुत्र मिर्ज़ा एरिज को अम्बर पर भेज दिया, जिसने उसे नानदेर के पास परास्त किया। इं० ना० भा० ६ पृ० १०४—०५

खानखानाँ को अपनी पुत्री के वैधव्य के लिए बड़ा शोक हुआ। इसी वर्ष अकबर बादशाह की भी मृत्यु हुई और जहाँगीर बादशाह हुआ।

जहाँगीर की राजगद्दी के समय ख़ानख़ानाँ दक्षिण में थे, इससे इनके कई पत्र लिखने पर जहाँगीर ने आने की आज्ञा दी। वह अपने तुज़ुक में लिखता है कि इतनी प्रसन्नता के साथ यह आया कि इसे यह भी ध्यान नहीं था कि सिर से आया है कि पाँव से आया है। घबड़ाकर मेरे पाँवों पर गिर पड़ा तब मैंने भी प्रेम से उठाकर गले लगाया। दो मोती की मालाएँ और कई माणिक, जो तीन लाख के मूल्य के थे, भेंट दिए। जहाँगीर ने भी घोड़े हाथी आदि देकर दक्षिण विदा किया। ख़ानख़ानाँ दक्षिण की गुत्थियों के सुलझाने में लगा हुआ था कि जहाँगीर ने शाहज़ादा पर्वेज़ को ख़ानख़ानाँ के सहायतार्थ भेजा। फिर मुराद के साथ के उसी मतभेद की पुनरावृत्ति हुई। कहाँ यह वृद्ध सेनापति और इनकी बूढ़ी सम्मतियाँ और कहाँ वह नवयुवक। शाहज़ादे को इनकी बातें नहीं जँचती थीं, जिससे ठीक वर्षा ऋतु में चढ़ाई कर दी गई। यह पहिला ही अवसर था कि ख़ानख़ानाँ को पराजित होना पड़ा और अहमदनगर, जिसे इन्होंने स्वयं विजय किया था, हाथ से निकल गया। इस पर शाहज़ादे ने पिता को लिख भेजा कि जो कुछ हुआ है वह सब ख़ानख़ानाँ की ही कृति है और आप उन्हें या हमें बुलवा लें।

अंत में यह सं० १६६७ वि० में बुला लिए गए और कन्नौज तथा काल्पी इन्हें जागीर में मिली। यह वहाँ भेजे गए कि जा कर वहाँ के विद्रोह को शाँत करें। दूसरे वर्ष दक्षिण में अब्दुल्ला ख़ाँ के परास्त होने का जब समाचार आया तब यह फिर जागीर पर से बुलाए गए और जहाँगीर ने इन्हें छः हज़ारी मंसब, खिलअत,

घोड़े आदि देकर दक्षिण ख्वाजा अबुलहसन के साथ भेजा। इनके पुत्र शाहनवाज़ ख़ाँ को तीन हज़ारी ३००० सवार का मंसब और दाराब ख़ाँ को दो हज़ारी २००० सवार का मंसब मिला।

इन्होंने दक्षिण पहुँचकर सब प्रबंध ठीक कर लिया और शाहनवाज़ ख़ाँ को ससैन्य बालापुर भेजा। वहाँ मलिक अंबर के कई सर्दार इनसे आकर मिल गए, जिनका इसने बड़ा आदर किया और उनकी सम्मति से अंबर पर चढ़ाई कर दी। अंबर के सैनिकगण गाँव गाँव में फैले हुए थे। वे यह समाचार सुन कर टिड्डियों की तरह उमड़ आए पर परास्त होकर लौट गए। मलिक अंबर यह समाचार सुनकर आदिलशाही और कुतुबशाही सेनाओं को साथ ले बड़े वेग से आया। दोनों सेनाओं का सामना हुआ पर बीच में एक नाला पड़ता था, जिसके दोनों ओर दूर दूर तक दलदल थे। याक़ूत ख़ाँ हब्शी ने बड़े धूमधाम से धावा किया पर उसे गोलों और तीरों के मारे कुछ सैनिकों को दलदल में फँसा कर लौट जाना पड़ा। यद्यपि रात्रि होने को अभी एक प्रहर बाक़ी था पर धुँआधार अग्नि वर्षा से अंधेरा हो गया था। अंबर के हरावल के चुने सैनिक भी जब इस लोहे के तूफ़ान के आगे पीछे हट गए तब वह क्रोधाग्नि में कोयले की तरह लाल हो गया और सारी सेना सहित तड़प कर बादशाही सेना पर आया; परन्तु दाराब ख़ाँ हरावल की सेना सहित वायुवेग से नाला पार कर उस पार जा पहुँचा और शत्रु को उलटता पुलटता सीधे अंबर के ऊपर जा पड़ा। वह तलवार की आँच न सह कर अंबर हो कर उड़ गया। तीन कोस तक पीछा किया गया और इतने शत्रु खेत रहे कि लोगों को देख कर आश्चर्य होता था।

सं० १६७३ वि० में जहाँगीर ने शाहज़ादा खुर्रम को शाहजहाँ

की पदवी दे कर दक्षिण भेजा और (स्वयं) दूसरी बार मांडू में आकर ठहरा। शाहजहाँ ने अपने बुद्धिमान और नीति-धुरंधर मनुष्यों को भेज कर दक्षिणी सुलतानों को अधीनता स्वीकार करने पर वाध्य किया। इस प्रकार दक्षिण का प्रबंध ठीक कर के और ख़ानख़ानाँ को अपने प्रतिनिधि-स्वरूप वहाँ छोड़कर शाहजहाँ पिता से मिलने मांडू चला गया। पिता ने इसका बड़ा सत्कार किया और शाहनवाज़ ख़ाँ की पुत्री से उसका विवाह कर दिया। सं० १६७५ वि० में ख़ानख़ानाँ दरबार गए और जहाँगीर ने इनकी बड़ी प्रतिष्ठा की। सात हज़ारी ७००० सवार का मंसब, जो अभी तक किसी सर्दार को नहीं मिला था, इन्हें दिया। ख़िलअत, जड़ाऊ तलवार, हाथी और घोड़े देकर दक्षिण की सूबेदारी पर बिदा किया।

संसार में बहुधा लोग केवल लक्ष्मीरूपी धन की खोज में ही अपना जीवन व्यतीत कर डालते हैं पर वे इस बात पर ध्यान नहीं देते कि स्वास्थ्य भी एक धन है, संतति भी धन है, प्रतिभा और प्रभाव भी धन है और सब के ऊपर संतोष भी एक धन है। संसार में कोई ऐसा ही विरला पुरुष होगा जिसे भगवती माया ने इन सब धनों से परिपूर्ण कर रखा हो पर वैसा करके भी वही कभी ऐसा कपट करती है और कलेजे पर ऐसा चोट देती है कि देखनेवालों के हृदय काँप उठते हैं। जिस पर जैसी पड़ती है उसे वही जाने। सं० १६७६ वि० से ख़ानख़ानाँ पर भी यही चोटें चलने लगीं और उसके बुढ़ापे में कष्टों और दुःखों के झुण्ड निर्बल समझकर उसे और भी जर्जरित करने लगे। सौभाग्य देवी तो ऐसी रूठीं कि फिर उलट कर इनकी ओर देखा ही नहीं। इसी वर्ष इनका प्रथम और योग्य पुत्र शाहनवाज़ ख़ाँ सुरा देवी पर बलिदान हो गया, जिससे इन्हें कितना शोक हुआ होगा यह वही जान सकता है कि 'जा सिर बीती होय'। दूसरे वर्ष इसका

दूसरा पुत्र रहमनदाद भी जाता रहा। जहाँगीर ने अपने आत्म-चरित्र में इन दोनों की मृत्यु पर शोक प्रकाश किया है और उसके प्रत्येक शब्द से सहानुभूति झलकती है।

समय मनुष्य को ऐसे अवसर पर भी ला डालता है कि उसे दो ही रास्ते दिखलाई पड़ते हैं और वे दोनों ही कंटकमय। उन मार्गों पर जाने का फल क्या होगा सो ईश्वर ही जाने। भाग्यानुसार उसने एक रास्ता पकड़ा और यदि उसका दाँव बैठ गया तो सभी वाह २ की झड़ी लगा देंगे, नहीं तो राह चलते हुए मूर्ख और बच्चे भी उसकी हँसी उड़ाने लगेंगे। जो कुछ अप्रतिष्ठा, दुःख और शोक होता है, वह ऊपर से। सं० १६७७ वि० में मलिक अंबर ने संधि तोड़ कर मुग़ल थानेदारों पर चढ़ाई कर दी और खानखानाँ बुर्हानुपुर में घिर गया, इससे शाहजहाँ को फिर दक्षिण जाना पड़ा। यह वहाँ दक्षिण ही में था जब फ़ारस के शाह अब्बास सफ़वी ने कंधार पर चढ़ाई की, तब बादशाह ने इसे और खानखानाँ को वहाँ भेजने के लिए बुलाया। शाहजहाँ ने मांडू पहुँचकर पिता को एक पत्र लिखा, जिसमें उसने कंधार जाने की तैयारी के लिए अपनी आवश्यकताएँ प्रकट की थीं। जहाँगीर अपने इस योग्य पुत्र का पक्षपाती था परन्तु वह स्वयं दूसरे के आधीन हो रहा था। नूरजहाँ बेगम ने शाहजहाँ की योग्यता से इतना समझ लिया था कि उसके बादशाह होने पर वह साम्राज्य के स्वतंत्र अधिकार से वंचित हो जायगी, इस लिए उसने अयोग्य शहरयार का पक्ष लिया जिसे उसने अपनी पुत्री, जो शेरअफ़गन से पैदा हुई थी, विवाह दी थी।

शाहजहाँ ने जहाँगीर से धौलपुर माँग लिया, जिस पर पहिले ही से शहरयार का अधिकार हो गया था और उसकी ओर से शरीफ़ुल्मुल्क वहाँ का अध्यक्ष नियत था। शाहजहाँ के सैनिक

जब अधिकर लेने गए तब युद्ध हो गया और शरीफुल्मुल्क तीर लगने से काना हो कर दरबार चला गया। शाहजहाँ ने बहुत कुछ प्रार्थना कर के क्षमा चाही और अपने दीवान अफ़ज़ल ख़ाँ को भेजा पर वह कैद कर लिया गया। नूरजहाँ की सम्मति से शाहजहाँ की जागीर, जो उत्तरी भारत में थी, छिन गई। कंधार की चढ़ाई पर शहरयार की नियुक्ति हो गई और पर्वेज़ तथा महाबत ख़ाँ।शाहजहाँ को कैद करने के लिए भेजे गए। इस पिता-पुत्र के युद्ध में बड़े बड़े विश्वासपात्र सर्दार मारे गए, अप्रतिष्ठित हुए और क़ैद किए गए। अंत में निरुपाय होने पर शाहजहाँ को विद्रोह करना ही पड़ा और वह ख़ानख़ानाँ को साथ लिये लौट पड़ा।

नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ।ख़ानख़ानाँ दो पीढ़ियों का समय देख चुके थे और वह ऐसे लालची नहीं थे कि थोड़े लाभ के लिये किसी ओर फिसल पड़ते। उन्होंने बहुत कुछ सोच समझ कर किसी मार्ग पर अग्रसर होने का निश्चय किया होगा। यह तो उन्होंने अवश्य ही समझा होगा कि बादशाह की बुद्धि के अधिकाँश प्रकाश को मदिरा ने नाश किया ही था और जो बचाखुचा था वह भी नूरजहाँ के प्रकाश में लुप्त हो गया। उसीके प्रेम में पड़ कर बादशाह अपने योग्य पुत्र का नाश किया चाहता है। इस समय शाहजहाँ का पक्ष लेना स्वामिभक्त सेवकों के लिये राजद्रोह नहीं कहला सकता पर उसे बेगम विद्रोह की पदवी दी जा सकती है। दोनों ओर से निश्चिंत हो कर चुपचाप बैठ रहना और साम्राज्य का नाश देखना अवश्य स्वामिद्रोह या देशद्रोह था। जो कुछ कारण रहा हो पर यह उस समय शाहजहाँ के साथ थे, इससे उसी का साथ दिया।

जब ख़ानख़ानाँ और उसके पुत्र दाराब ख़ाँ शाहजहाँ के साथ दक्षिण आये तब इस समाचार को पाकर जहाँगीर लिखता है

कि जब खानखानाँ के ऐसा सर्दार, जिससे कि हमने शिक्षा प्राप्त की थी, विद्रोह और स्वामिद्रोह से सत्तर वर्ष की अवस्था में अपना मुँह काला करे तब दूसरों से हम क्या कहें ? इनके पिता ने भी हमारे पिता के साथ ऐसा ही बर्त्ताव किया था और इन्होंने भी इस वय में उस वंशजात स्वभाव का परिचय दे दिया।

रुस्तम खाँ के धोखा देने से शाहजहाँ परास्त हो कर दक्षिण लौटा और नर्मदा नदी पार कर बैरम बेग को उसके घाटों को रोकने के लिये नियत किया। इसी समय एक पत्र, जिसे खान-खानाँ ने महाबत खाँ को अपने हाथ से लिखा था, शाहजहाँ के हाथ में पड़ गया। उस पत्र के एक किनारे पर एक शैर लिखा था, जिसका यह अर्थ है कि सैकड़ों मनुष्य मुझ पर निगाह रखते हैं नहीं तो मैं इस दुःख से भाग आता। शाहजहाँ ने यह पत्र उन्हें एकांत में दिखलाया पर यह क्या उत्तर देते ? लज्जित हो चुप हो रहे। अन्त में यह नज़र बंद किये गए और आसीर गढ़ के पास पहुँचने पर दुर्गाध्यक्ष सैय्यद मुज़फ्फर खाँ बारहः की रक्षा में वहाँ भेज दिये गये। दाराब खाँ निर्दोष था पर पिता को कारागार में रख कर पुत्र को छोड़ना भी शाहजहाँ को खटकता था, इससे अन्त में दोनों से वचन लेकर उन्हें छोड़ दिया।

सुल्तान पर्वेज़ और महाबत खाँ ने नर्मदा के किनारे पहुँच कर देखा कि कुल नावें उस पार सजी हुई हैं और उतारों तथा घाटों पर सेना युद्ध के लिये तैय्यार खड़ी है। नदी के बहाव में इतना वेग था कि घोड़े आदि बह जाते थे। महाबत खाँ ने चालाकी से खानखानाँ को ऐसा पत्र लिखा कि वह दैवयोग से उसके फेर में आ गये। ऐसा भी कहा जाता है कि यह पत्र इस प्रकार भेजा गया था कि वह शाहजहाँ के हाथ में पड़ गया और उसकी शांतिमय मीठी बातों में स्वयं शाहजहाँ भी फँस गया। इसने अपने सर्दारों और खानखानाँ से इस विषय में सम्मति ली

और सब के एकमत हो जाने पर इस कार्य्य के लिये खा़नखा़नाँ को ही उपयुक्त समझकर उन्हीं को भेजना निश्चित किया। सामने कुरान रखकर इनसे शपथ ली और इनके बालबच्चों को अपने पास रखकर संधि की बातचीत करने के लिये भेजा। महाबत खाँ ने बड़ी तैय्यारी से इनका स्वागत किया और ऐसी बातें कीं कि इनकी वृद्धा बुद्धि ने उसे बिलकुल सत्य समझ कर शाहजहाँ को अपनी सफलता लिख भेजी। इस वृत्तांत से घाटों के प्रबंध में ढिलाई होने लगी। महाबत खाँ अपने कपटाचरण के फल स्वरूप इसी अवसर की ताक में था, इससे उसने रात्रि में चुपके चुपके चुनी सेना पार उतार दी और खा़नखा़नाँ को नज़र कैद कर लिया।

शाहजहाँ वहाँ से भागा और ताप्ती पार करने में उसकी बहुत हानि हुई। इसने खा़नखा़नाँ के पुत्र दाराब खाँ और दूसरे बाल-बच्चों को राजा भीम की रक्षा में क़ैद कर दिया। बुर्हानपुर में रहना उचित न समझ कर शाहजहाँ तेलिंगाना होता हुआ बंगाल को चला गया और सुलतान पर्वेज़ और महाबत खाँ भी पीछा करते बुर्हानपुर पहुँचे। खा़नखा़नाँ को अपने बालबच्चों के क़ैद होने का समाचार सुनकर बहुत दुःख हुआ और उन्होंने राजा भीम को पत्र लिखा कि मेरे बालबच्चों को छोड़ दो तो मैं किसी प्रकार शाही सेना को अटका लूँगा और नहीं तो काम कठिन हो जायगा। राजा भीम ने उत्तर भेजा कि अभी शाहजहाँ के पास पाँच छः सहस्र स्वामिभक्त सवार हैं और तुम्हारे चढ़ आने पर पहले तुम्हारे पुत्रादि मारे जायेंगे और फिर तुम पर हम लोग आ पड़ेंगे।

शाहजहाँ लड़ता भिड़ता बंगाल पहुँच गया और दाराब खाँ को कारागार से मुक्त करके उसे बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया। उसके स्त्री बच्चे और शाहनवाज़ खाँ के पुत्र को अमानत में लेकर

शाहजहाँ बिहार गया। महाबत खाँ भी ससैन्य प्रयाग आ पहुँचा और उसके पास ही दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। शाहजहाँ परास्त हो लौट आया और दाराब खाँ को बुलाने के लिये आज्ञा-पत्र भेजा पर उसने लिखा कि ज़मींदारों ने मुझे घेर रखा है, मैं किस प्रकार आ सकता हूँ। शाहजहाँ ने यह समझ कर कि यह भी पिता के समान बादशाह से मिल गया है, उसके और शाहनवाज़ ख़ाँ के पुत्रों को मरवा डाला। बादशाही सेना ने बंगाल पहुँच कर उस पर अधिकार कर लिया और बादशाह के आज्ञानुसार महाबत खाँ ने दाराब खाँ का सिर कटवा कर और एक वर्त्तन में रखवाकर ख़ानख़ानाँ के पास कारागार में भेजवा दिया। महाबत ख़ाँ के सेवकों ने आज्ञानुसार यह संदेशा भी दिया कि बादशाह ने यह तर्बूज़ भेजा है। वृद्ध सर्दार ने आँसू भरे नेत्रों को आकाश की ओर उठा कर कहा कि ठीक! शहीदी है।

सं० १६८२ ई० में जहाँगीर ने इन्हें क़ैद से छुटकारा देकर अपने सामने बुलवाया। जाते समय महाबत खाँ ने इनके योग्य यात्रा का सब सामान ठीक कर दिया और जो घटनाएँ हो चुकी थीं उसके लिये बहुत कुछ प्रार्थना भी की थी, जिसमें आगे के लिये हृदय स्वच्छ हो जाय। जहाँगीर स्वयं लिखता है कि 'सामने आने पर बहुत देर तक लज्जा के कारण सिर नहीं उठाया। तब मैंने कहा कि जो कुछ हुआ है वह कर्मगति है। वह न तुम्हारे हाथ की थी, न हमारे। इसके लिये लज्जित न होना चाहिये क्योंकि हम अपने को तुमसे अधिक लज्जित समझते हैं।' इसके अनंतर एक लाख रुपया, ख़ानख़ानाँ की पदवी, जो छीन ली गई थी और कन्नौज की जागीर इन्हें देकर बिदा किया। उसी समय वृद्ध ख़ानख़ानाँ ने यह शैर पढ़कर धन्यवाद दिया—

مرا لطف جہانگیرے زتائیدات ربانی
دوبارہ زندگی دادہ دوبارہ خانخانانی —

इसका अर्थ है कि ईश्वरीय सहायता से जहाँगीर की कृपा ने मुझे द्वितीय बार जीवन और खानखानाँ की पदवी प्रदान की।

इसके अनंतर जब नूरजहाँ महाबतखाँ से बिगड़ी तब इसे बुलाया। बादशाह काश्मीर की ओर जा रहे थे और यह पाँच छ: सहस्र वीर राजपूतों के साथ लाहौर होता हुआ आया। यहाँ खानखानाँ भी थे और इसके तेवर बिगड़े देखकर समझ गये कि यह आँधी होकर आया है पर खूब धूल उड़ा कर उड़ जायगा, क्योंकि निर्मूल है। इसलिये न उससे मिलने ही गये और न अपना आदमी ही पूछने के लिये भेजा। जब झेलम नदी पर पहुँच कर महाबत खाँ ने जहाँगीर और बेगम को कैद कर लिया तब इन्हें लाहौर से दिल्ली जाने की आज्ञा दी। इनके दिल्ली पहुँचते ही उसके मन में कुछ संशय उठा इसलिये फिर लाहौर बुलवा लिया। जब नूरजहाँ के कौशल से जहाँगीर छुट गया और महाबत खाँ भागा तब बेगम ने उसे दमन करने के लिये [illegible] को नियत किया। सातहज़ारी ७००० सवार का मंसब, खिलअत, जड़ाऊ तलवार, घोड़ा, हाथी और बारह लाख रुपया पुरस्कार दिया। महावत खाँ की जागीर और अजमेर का प्रांत इन्हें मिला। इस नियुक्ति के कारण यह लाहौर से दिल्ली चले पर वहीं बीमार हो चुके थे। दिल्ली पहुँच कर ७२ वर्ष की अवस्था में सं० १६८३ वि० के अंत में इनकी मृत्यु हो गई। यह हुमायूँ के मक़बरे के पास गाड़े गये।

सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुं० देवीप्रसाद जी खानखानाँनामा में 'रहीम' की मृत्यु के विषय में लिखते हैं कि 'सन् १०३६ हि० के बिचले महीने में शांत हो गये और अपनी बीबी के मक़बरे में, जो

उन्हींका बनवाया हुआ था, दफ़न हुए। उस समय उनकी आयु ७२ वर्ष की थी।' उसी ग्रन्थ में उसी पृष्ठ पर इसके पहिले शाहज़ादा पर्वेज़ की मृत्यु ७ सफ़र सन् १०३६ हि० को लिखकर पाद टिप्पणी में उसके अनुसार भारतीय तिथि कार्तिक शु० ८ सं० १६८३ शुक्रवार दिया है। खानखानाँ की मृत्यु पर्वेज के मरने के बाद उसी वर्ष में हुई थी, इससे खानखानाँनामा के अनुसार सं० १६८३ के अंत में इनकी मृत्यु तिथि आती है। बादशाह जहाँगीर की मृत्यु भी इनके छः सात महीने बाद २८ सफ़र १०३७ को हुई थी और यह निश्चित है कि 'रहीम' जहाँगीर के राजत्वकाल ही में महाबत खाँ के विद्रोह के अनंतर उसी का पीछा करने पर नियुक्त होने के बाद दिल्ली में मरे थे।

मआसिरुल् उमरा नामक सुप्रसिद्ध इतिहास में लिखा है कि यह लाहौर में बीमार पड़े और दिल्ली चले आये। यहीं बहत्तर वर्ष की अवस्था में सन् १०३६ हि० में जहाँगीर के २१ वें जुलूसी वर्ष के अंत में मर गये। इनकी मृत्यु की तारीख—खाने सिपह सालार को—(सेनाध्यक्ष खानखानाँ कहाँ है ?) से निकलती है।' इससे भी अबजद के अनुसार (६००+१+५०+६०+२+५+६०+१+३०+१+२००+२०+६=१०३६) सन् १०३६ हि० ही निकलता है। बादशाह जहाँगीर का २१ वाँ जुलूसी वष २२ जमादि उस्सानी १०३५ हि० से २ रज्जब सन् १०३६ हि० (चैत्र बदी ७ सं० १६८२—चैत्र सु० ४ सं० १६८४) तक रहा। इससे भी यही निश्चित होता है कि खानखानाँ की मृत्यु हि० सन् १०३६ के बीच तथा सं० १६८३ के अंत में हुई थी।

नवाब के पिता बैरम खाँ शिआ मुसलमान थे पर यह सुन्नी थे। मआसिरुल् उमरा का ग्रन्थकर्त्ता लिखता है कि लोग शंका करते थे कि यह अपने मत को छिपाते हैं। इनके पुत्रगण कट्टर

सुन्नी थे। शाहनवाज़ खाँ और दाराब खाँ को छोड़ कर और भी पुत्र थे, जिनमें रहमनदाद का नाम आ चुका है। अमरुल्ला एक दासी-पुत्र था। यद्यपि यह शिक्षित नहीं था पर इसी ने गोंडवाने के हीरे की खान पर अधिकार किया था। हैदर कुली सबसे छोटा था पर वह सब के पहिले ही मर गया था। दो पुत्रियाँ थीं, जिनमें प्रथम जाना बेगम सुल्तान दानियाल को ब्याही थी और दूसरी मीर अमीनुद्दीन नामक एक सर्दार-से; परन्तु इन दोनों ही को यौवन ही में वैधव्य भोग करना पड़ा।

यह बड़े गुणग्राहक और दानी थे, इससे इनका दरबार सर्वदा कवियों, विद्वानों और गुणियों से भरा रहता था। अब्दुल्बाकी नामक एक विद्वान ने मआसिरे-रहीमी नामक एक ग्रंथ इनके नाम पर बनाया है, जिसमें मुसलमानों के भारत में आने के समय से अकबर के समय तक का इतिहास है। इन्होंने गंग कवि को केवल एक छंद पर छत्तीस लाख रुपया पुरस्कार दिया था। एक दिन मुल्ला नज़ीरी नैशापुरी ने कहा कि मैंने लाख रुपये का ढेर नहीं देखा है। नवाब की आज्ञा से कोषाध्यक्ष ने रुपए लाकर ढेर कर दिये, जिस पर यह ईश्वर को धन्यवाद देने लगे। खानखानाँ ने कहा कि इतने के लिये ईश्वर को क्या धन्यवाद देते हो, इस रुपए को लो और तब धन्यवाद दो तो एक बात है। इस प्रकार इनके दान की बहुत सी कथाएँ हैं पर स्थानाभाव के कारण कुछ नमूने दिये गए हैं। जब इनके बुरे दिन आ गए थे तब दान देने की शक्ति नहीं रहने से इन्हें बहुत कष्ट होता था।

इनका स्वभाव और चरित्र बहुत ही अच्छा था और इनकी बातचीत से सभी प्रसन्न हो जाते थे। इनके यौवन के समय एक स्त्री ने इन पर रीझ कर इन्हें अपने गृह पर बुलवाया और जब पहुँचकर इन्होंने उससे पूछा कि मुझे किस लिये बुलवाया है,

तब उसने लज्जित होकर कहा कि मैं तुम्हारे ऐसा पुत्र चाहती हूँ। इन्होंने उत्तर दिया कि मान लो यदि तुम्हें मेरे समान पुत्र भी हुआ तो कौन जानता है कि वह सुपुत्र निकलेगा या नहीं, इसलिए मुझे ही अपना पुत्र समझो। यह कह कर इन्होंने उसकी गोद में अपना सिर रख दिया। साधारणतः मनुष्यों में यौवन-काल अत्यंत उन्मत्तता का समय है। 'यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकता' में से एक भी किसी पुरुष को नष्ट करने के लिये बहुत है, पर जहाँ सभी उपस्थित हों वहाँ क्या होगा यह विचार के परे है। जो हो जाय वही थोड़ा है। उस समय मनुष्य उस बलिष्ठ घोड़े के समान हो जाता है जो वायु वेग से किसी खाई की ओर भागा जाता है। यदि विवेक रूपी बाग उसकी किसी प्रकार नियंत्रण कर सकी तो भला ही है नहीं तो वह और नीचे खाई। नवाब अब्दुर्रहीम खाँ में यौवनं धन-संपत्तिः प्रभुत्वं होते भी अविवेकता नहीं थी; प्रत्युत् विवेक ज्ञान पूर्णतया विकसित था और उसीने उस स्त्री के साथ ऐसा सज्जनोचित व्यवहार कराया था।

इन्हें साम्राज्य के वृत्तांत जानने का इतना शौक था कि इन्होंने बहुत से नौकर रखे थे जो दूर दूर तक नगरों में फैले हुए थे और डाक चौकी से समाचार भेजा करते थे। यह शत्रु से भी मित्रता का बर्ताव रखते थे। दक्षिण में इन्होंने तीस वर्ष कार्य्य किया था और वहाँ के मुसलमानों और सर्दारों को अपनी मिलनसारी से फँसाये रहते थे।

विद्वत्ता के बारे में इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह अरबी के पूरे विद्वान थे। तुर्की और फारसी भाषाएँ तो इनके घर की भाषाएँ थीं। इनमें इतनी योग्यता थी कि तुर्की भाषा के लिखे पत्र को यह फ़ारसी में इस प्रकार पढ़ जाते थे मानों वह उसी

भाषा में लिखी हुई है। बाबर के आत्मचरित्र का फ़ारसी में अनुवाद किया था और इस भाषा में इनके फुटकर पद्य मिलते हैं। इन्होंने संस्कृत भाषा में भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी और एक पुस्तक इसी भाषा में ज्योतिष पर लिखी है, जिसका नाम 'खेटकौतुकम्' रखा है। इसमें प्रत्येक ग्रहों के बारहो स्थानों के फल एक एक श्लोक में दिये हैं। रहीमकाव्य भी लिखा था, जिस के पाँच छः श्लोकों को छोड़ कर और अंश अप्राप्य है। हिन्दी भाषा में यह रहीम या रहिमन उपनाम से प्रसिद्ध हैं और इनकी कविता बड़ी सरल और मनोहर होती है। इनके बनाए हुए अनेक ग्रन्थ प्राप्त हैं और अभी मिलने की आशा भी है।

ख़ानख़ानाँ को इमारतें बनवाने का भी बहुत शौक था। यह जिस समय जिस प्रांत में सूबेदार हो कर जाते थे वहीं अच्छे अच्छे महल तथा बाग निर्मित कराते थे। इनकी आगरे की हवेली प्रभूत धन व्यय करके बनवाई गई थी। गुजरात-विजय के उपलक्ष में सरखेज ग्राम में साबरमती के तट पर एक बाग लगवाया था, जो फतहबाग या फतहबाड़ी कहलाता है। जहाँगीर बादशाह भी इसे देखने गया था। इसमें एक विशाल भवन भी बनवाया था, पर अब वह खंडहर हो रहा है। इसी से एक कोस हट कर एक शाहबाड़ो बनी थी, जिसमें अच्छे अच्छे महल बने थे। अलवर में भी ख़ानख़ानाँ ने कुछ इमारतें बनवाई थीं, जहाँ उनका नाना जमाल खाँ मेवाती रहता था। आज भी वहाँ की तिरपोलिया ख़ानख़ानाँ ही की कहलाती है। दिल्ली में इनका जो मक़बरा है वह खंडहर हो रहा है। यह निज़ामुद्दीन औलिया की दरगाह और बारे पुल के पास है।

जौनपुर के पुल को लोग भूल से इनका बनवाया समझते

हैं पर वह मुनइम खाँ खानखानाँ का बनवाया हुआ है, जो इनसे पहिले हुआ है। अब इनकी रचनाओं का परिचय दिया जाता है।

२—रहीम की रचनाएँ

१. दोहावली—कहा जाता है कि रहीम ने दोहों की एक पूरी सतसई तैयार की थी पर वह अभी तक हिन्दी संसार के लिये अप्राप्य ही है। अब तक रहीम के शतक ही प्रकाशित हो रहे थे पर जब "रहिमन विलास" (प्रथम संस्करण) के लिए दो सौ पैंसठ दोहे प्राप्त हुये तब न उसका नाम शतक और न सतसई ही रखना उपयुक्त ज्ञात हुआ, इसलिये उस संग्रह का नाम दोहावली रखा गया। इधर कुछ और दोहे प्राप्त हुये जो इस नये संस्करण में मिला दिये गये हैं। इस प्रकार अब प्रायः तीन सौ दोहे संगृहीत हो गये। ये फुटकर दोहे कई पुरानी हस्तलिखित प्रतियों तथा प्रकाशित संग्रहों में मिले हैं, जिनके नाम अलग दे दिए गये हैं। रहीम की कविता की कुछ विशेष चर्चा होने से अनेक सज्जनों ने फुटकर दोहे आदि भिन्न भिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित भी किये हैं, जिनको भी इसमें संगृहीत कर लिया गया है। कुछ दोहे ऐसे भी संकलित हैं, जिनमें रहीम या रहिमन उपनाम नहीं आया है। कुछ संदिग्ध दोहे ऐसे भी हैं, जिनमें उपनाम है पर पाठभ्रष्ट होने या अर्थ ठीक न बैठने या अन्य कवियों के नाम से भी पाए जाने के कारण वे निश्चयतः रहीम ही के नहीं कहे जा सकते। इसकी सूचना पाद-टिप्पणियों में बराबर दे दी गई है। ये सभी संगृहीत दोहे या सभी रचनाएँ रहीम ही कृत हैं, ऐसा हठवश कहा ही नहीं जा सकता और साथ

ही इन्हें रहीम कृत, बिना विशेष रूप से कारण दिये हुये, न मानना भी हठधर्म्मी है। आशा है कि समय और अन्वेषण आप ही क्रमशः इन्हें अलग करते हुए स्यात् कभी पूरी सतसई पाठकों के मनोरंजनार्थ उपस्थित करें।

"रहिमन विलास" में दोहे पहिले पहिल अकारादि-क्रम से लगाकर इस लिये दिये गये थे कि यदि किसी सज्जन को नए दोहे या पाठ आदि ज्ञात हों तो उन्हें मिलान करने में इससे विशेष सुविधा होगी। रहीम के दोहे फुटकल ही मिले थे और उनमें कोई क्रम भी नहीं था। अन्य संपादकों ने भी इसी क्रम को अपनाया है, जिससे इसकी उपादेयता स्पष्ट है।

रहीम का जीवन-वृत्त देखने से पाठकों पर विदित होगा कि इनका सारा जीवन, जन्म से मृत्यु पर्यन्त, कैसी घटनापूर्ण झंझटों में बीता था। एक समय वे मुग़ल साम्राज्य के वकील मुतलक़ थे और दूसरे समय कारागार में कालयापन कर रहे थे। एक समय बड़ी-बड़ी सेनाओं को परास्त कर भारी राज्यों तथा प्रान्तों पर शासन करते थे और दूसरे समय अपने स्वामी ही की सेना के आगे भागे फिरते थे। अकबर इन्हें मिर्ज़ा ख़ाँ कहकर पुत्रवत् मानता था और जहाँगीर इनके गुणों तक को न पहिचान सका। सांसारिक सुख दुःख का इन्हें पूरा अनुभव था और इन अनुभवों के अंतःसार को ग्रहण करने की भी इनमें अद्भुत शक्ति थी। कवि थे ही, इससे भावुकता के कारण ऐसे अनुभूत मार्मिक तथ्यों को इन्होंने दोहे तथा सोरठे ऐसे छोटे पदों में व्यक्त कर दिया है। जीवन की सच्ची परिस्थिति में पड़ कर उदारचेता कवि ने अपने भावों को सच्चे हृदय से जी खोल कर कह डाला है। 'पर-उपदेश-कुशल' कवियों में यह सचाई

नहीं रहती और यही कारण है कि उनके नीति के कथन में सजीवता तथा हार्दिक समवेदना नहीं रहती। रहीम की रचनाओं में उनकी अन्तरात्मा सजीव रूप से व्यंजित हो रही है और यही कारण है कि उनके दोहे आदि सर्व साधारण में इतने प्रचलित हो गए हैं। उदाहरण के लिये समग्र प्राप्त दोहे ही यहाँ संगृहीत हैं।

कुछ दोहे सुगठित नहीं हैं, उनमें भाषा की शिथिलता है पर कवि उस पर ध्यान नहीं देता। उसे इतना अवकाश ही कहाँ? काव्य-कौशल दिखला कर उसे कवि बनने की इच्छा नहीं है। जीवन में जिस प्रकार वह अनेक कार्य कर रहा था उसी प्रकार ईश्वरदत्त प्रतिभा ने यह भी करा दिया। विद्वान थे, भाषाविद् थे, अनुभव था, भावुकता थी, विद्वान तथा कवियों का सत्संग था और सर्वोपरि सर्वतोमुखी प्रतिभा थी, बस अपने हृदय के उद्गार को कविताबद्ध कर दिया। उसे काट छाँट कर 'शुस्तः जबान' करने का अवकाश ही नहीं था। अस्तु, जो कुछ हो इनके दोहे हिन्दी साहित्य के रत्न हैं।

२—नगर शोभा—इधर दो रचनायें और मिली हैं जो रहीमकृत कही जाती हैं। इन में पहिली नगर शोभा है, जिसकी हस्त-लिखित प्रति के आदि में 'अथ नगर शोभा नवाब खानखानाँ कृत' लिखा है। आरंभ में मंगलाचरण का दोहा है, जिससे यह स्वतंत्र ग्रंथ ज्ञात होता है। इसमें एक सौ बयालीस दोहे हैं। रहीम और रहिमन शब्द न दोहों ही में आया है और न आदि ही में दिया है। आदि में केवल "नवाब खानखानाँ" आया है। मुग़लों के इतिहास में अनेक खानखानाँ और नवाब मिलते हैं तथा उनमें हिन्दी-प्रेमी भी हुये हैं पर हिन्दी-कवियों में अभी तक केवल यही 'रहीम नवाब खानखानाँ' प्रसिद्ध

हैं इसलिए इसे इन्हीं को रचना मानना चाहिये, जब तक इसके विरुद्ध कोई अच्छा प्रमाण न मिल जाय। इसमें अनेक जाति तथा पेशेवाली स्त्रियों पर दोहे कहे गये हैं, जिनमें उनकी जाति, कर्म या व्यापार के शब्दों को लेकर शृंगारिक भाव बड़ी सुन्दरता से निबाहे गये हैं। इन्हीं भावों के कुछ बरवै भी पं० मायाशंकर जी याज्ञिक बी० ए० को मिले हैं, जो इसी प्रकार के एक ग्रंथ का अंश मालूम होते हैं। रहीम को दोहे और बरवै ये ही दो छंद विशेष प्रिय थे और स्यात् इन्होंने दोहे में इस प्रकार की रचना करने के बाद उसे बरवै में भी बना डाला हो। जितना अंश प्राप्त है उससे दोहों के भाव मिलते भी हैं। पर निश्चयतः कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इन दोहों को देखकर कोई अन्य कवि भी ये बरवै बना सकता था। पाठकों के विनोदार्थ तथा रहीम की कविता के प्रेमी अन्वेषकों के लिये बरवै टिप्पणी में उद्धृत किये गए हैं।

३—बरवै नायिका भेद—यह रचना पूरी प्राप्त है और पहिले पहिल कविवचनसुधा में प्रकाशित हुई थी। इसके अनंतर 'भारत-जीवन' प्रेस ने इसे पुस्तकाकार प्रकाशित किया। इसमें शुद्ध अवधी भाषा में भिन्न भिन्न नायिकाओं के भेद केवल उदाहरणों द्वारा समझाये गये हैं, उनके लक्षण नहीं दिये गये हैं। आरंभ का दोहा बतलाता है कि इन्होंने अन्य छन्दों से इसे ही इस रचना के लिये विशेष पसंद किया था। इनके बरवै इतने सुन्दर हुये हैं कि कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन्हें ही देखकर बरवै रामायण की रचना की थी। बाबा वेणीमाधवदास ने स्वरचित गुसाँई-चरित में लिखा है कि—

कबि रहीम बरवै रचे, पठए मुनिवर पास ।
लखि तेइ सुंदर छंद में, रचना किये प्रकाश ॥

जिस प्रकार पद में सूर की, दोहों में बिहारी की, चौपाइयों में

तुलसी की तथा कवित्त में देव की समता हिन्दी-साहित्य में कोई नहीं कर सके है उसी प्रकार बरवै में रहीम भी अद्वितीय हैं। इन बरवों की भाषा भी उत्तम चलती अवधी का सुंदर नमूना है। ये छोटे छोटे छंद छोटे छोटे चित्र हैं जिनमें भारतीय प्रेम-जीवन का सच्चा चित्रण है, कोरी कल्पना या सुनी सुनाई बातों को लेकर कविता के साथ खिलवाड़ नहीं किया गया है। वास्तव में इनके हाथों में पड़कर बरवै भी छंद कहलाने योग्य हो गया। यह छोटा सा ग्रंथ हिंदी-साहित्य-भंडार की आदरणीय वस्तु है। इधर इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं, जिनमें एक में रहीम का नायिका-भेद उदाहरण के रूप में दिया गया है और मतिराम के दोहे लक्षण स्थान में रखे गये हैं। यदि स्वयं मतिराम ने यह संग्रह किया है, जैसा संभव है, तो यह रहीम की कविता के अपने समय में ही विशेष लोकप्रिय हो जाने का द्योतक है। मतिराम हिंदी नवरत्न के कवियों में से एक हैं और रहीम के कुछ दिनों बाद हुये हैं। उनकी कविता अवश्य ही इनकी ऋणी रही होगी। काशीराज के पुस्तकालय की हस्त-लिखित प्रति के अंत में यह दोहा है—

लक्षण दोहा जानिए, उदाहरन बरवान।
दूनों के संग्रह भये, रस सिंगार निरमान॥

संभव है कि किसी दूसरे ही ने ऐसा संग्रह किया हो और रसराज से दोहे लेकर इस नायिका भेद में मिलाकर 'रस शृंगार' नामक ग्रंथ संगृहीत किया हो। समालोचक पत्र (भा ४ सं० २ सं० १९८४) में यह 'नवीन संग्रह' के नाम से प्रकाशित भी हो चुका है। इससे यह अधिक संभव ज्ञात होता है कि किसी तीसरे ही ने यह संग्रह तैयार किया है। स्यात् 'नवीन' कवि ने ऐसा किया हो और 'नवीन संग्रह' नाम उसी कवि के नाम पर

हो। यह 'नवीन' संग्रह करने में विशेष पटु थे और उनके संग्रहों में इन दोनों कवियों ने भी स्थान पाया है। इस प्रकाशित प्रति का अन्तिम दोहा यों है—

यह नवीन-संग्रह सुनै जो देखे चितु देय।
विविध नायिका नायिकनि जानि भली विधि लेय॥

४—बरवै—इस रचना की हस्त-लिखित प्रति मेवात से प्राप्त हुई है, जो रहीम के मातामह जमालखाँ की जमींदारी थी। इसके आरंभ में 'श्रीरामो जयति अथ खानखानाँ कृत बरवै आरंभ' दिया हुआ है। प्रथम ६ बरवों में गणेशजी, श्रीकृष्ण जी, सूर्य भगवान, महादेव जी, हनुमान जी तथा गुरु की वंदना की गई है। इस प्रति में कुल १०१ बरवै हैं, जो किसी क्रम से नहीं हैं। ये शृङ्गार-विषयक स्फुट रचनाएँ हैं। हिंदी के मुसल्मान कवियों में प्रायः बारहमासा लिखने की चाल थी और वे प्रायः चौपाइयों ही में रचे जाते थे। रहीम ने स्यात् उसी की देखादेखी बरवै में बारह मासा रचने का विचार किया हो और थोड़ी सी लिख कर रह गये हों। आषाढ़, सावन, भादों तथा फाल्गुन चार मास का इसमें वर्णन आया है। बारहमासों की चाल पर स्पष्ट ही कहते हैं—

जब तें आयो सजनी मास अषाढ़।
जानी लखि वा तिय के हिय की गाढ़॥

इन बरवों में विशेषतः या प्रायः सभी में विरहिणी नायिका की उक्तियाँ हैं जो उसी प्राचीन कथा पर स्थित हैं अर्थात् गोपिकाओं का श्रीकृष्ण के मथुरागमन पर उद्धव आदि से अपनी विरह-कथा कहना। तीन बरवै एक ही स्थान पर राम, नृसिंह तथा कृष्ण अवतार पर दिये हुए हैं तथा कुछ विरक्ति-युक्त भक्ति पर भी हैं, जो विरह की अंतिम दशा समझनी चाहिए। फ़ारसी भाषा के

चार बरवै उसी हिज्र (विरह) पर रचे हुए भी सम्मिलित हैं। भाषा तथा काव्यकौशल की दृष्टि से भी यह रचना रहीम ही के योग्य है। अंत में आठ बरवै और भी दिये गये हैं, जो भिन्न भिन्न जगहों से संगृहीत हुये हैं और रहीम-रचित कहे जाते हैं। ये कहाँ से संगृहीत किए गए हैं इसकी सूचना टिप्पणी में दे दी गई है।

५—शृङ्गार सोरठ—रहीम की रचनाओं में इस नाम के भी एक स्वतंत्र ग्रंथ का उल्लेख मिलता है पर इस ग्रंथ का अंश मात्र भी अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसके नाम से यह अवश्य ज्ञात होता है कि इसमें शृंगार-विषयक सोरठे रहे होंगे। रहीम के दोहों में बहुत से सोरठे भी सम्मिलित थे और उनमें से केवल छः सोरठे ऐसे मिले, जो शृंगार-रस पूर्ण थे। अन्य नीति विषयक थे। इन्हीं छः सोरठों को लेकर 'शृङ्गार सोरठ' का अलग स्वरूप खड़ा कर दिया गया है। ये सोरठे बड़े ही अनूठे हैं, भाषा बड़ी ही श्लिष्ट है तथा भावपूर्ण है। ये बिहारी के उत्तम दोहों से टक्कर ले सकते हैं पर शोक है कि बहुत ही कम प्राप्त हैं।

६—मदनाष्टक—खड़ी बोली की कविता के लिये प्रायः संस्कृत के समान वर्णवृत्त विशेष उपयुक्त होते हैं, इसी से मदनाष्टक की रचना में रहीम ने मालिनी छंद का प्रयोग किया है। इसकी भाषा खड़ी बोली है, जिसमें संस्कृत का विशेष मिश्रण है। कुछ लोग इसकी भाषा रेख़्ता बतलाते हैं पर उस समय रेख़्ता का केवल जन्म दक्षिण में हुआ था और उसे उत्तर आकर उत्तरापथ की खड़ी बोली का नया नामकरण करने में तब विलंब था। रहीम के तीन ताब्दी पहिले खुसरो ने इसी भाषा का प्रयोग खूब किया है और उसे हिंदी या हिंदवी लिखा है, रेख़्ता नहीं। शार्गधर पद्धति में जो चौदहवीं शताब्दी का संग्रह ग्रंथ है, उसमें केवल दो

ही संस्कृत-हिंदी-मिश्रित श्लोक दिये गए हैं। उस समय तक 'रेखता' रूढ़ि नहीं हुआ था और केवल क्रिया के रूप में गिरने पड़ने के अर्थ ही में काम आता था। उनमें से एक इस प्रकार है —

कीदृग्मत्तमतंगजः कमभिनत्पादेन नंदात्मजः।
शब्दः कुत्रहि जायते युवतयः कस्मिन्सति व्याकुलाः॥
विक्रेतुं दधि गोकुलात्प्रचलिता कृष्णेन मार्गे धृता।
गोपी काँचन नं किमाह करुणं दानी अनोखे भये॥

सं० १९७९ के पहिले मदनाष्टक का नाम तथा उसका एक पद मात्र ही हिंदी संसार को परिचित था, जो शिवसिंह सरोज में दिया हुआ था। इसके अनंतर पहिले पहल भाद्रपद सं० १९७९ की सम्मेलन पत्रिका में मदनाष्टक का ६½ छंद प्रकाशित हुआ। इसके अनंतर कार्तिक मास की उसी पत्रिका में एक छंद और प्रकाशित हुआ तथा इस प्रकार अष्टक पूरा होने में आधे पद की कमी रह गई थी। इसके अनंतर काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज में दो अष्टक प्राप्त हुये, जिनमें एक असनी से और दूसरा मुअज्ज़माबाद से मिला था। इन दोनों की ठीक प्रतिलिपि 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' न्यायरूपेण बा० वासुदेव सहाय ने मुझे लिख कर दी थी। दूसरे एजेंट पं० भगीरथप्रसाद दीक्षित ने भी ये दोनों अष्टक मुझे दिखलाये थे और कुछ उनके विषय में बातचीत भी हुई थी। "रहिमन विलास" में वह श्लोक उद्धृत है, जिसके 'हे दिल' के स्थान पर 'हैदर' शब्द असनी से प्राप्त मदनाष्टक में दिया हुआ है। ये दोनों ही सज्जन उस समय 'हस्तलिखित पुस्तकों की खोज का विवरण' तैयार करने के लिये काशी ही में काम कर रहे थे और रहीम की कविता का प्रेमी समझकर ही उन अष्टकों की सूचना हमें दे दी थी। इसके अनंतर नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में इन अष्टकों पर एक लेख

भी छपा था। इसके अनंतर संवत् १९८५ के आषाढ़ मास की माधुरी में भी एक मदनाष्टक छपा है, जिसे बा० श्यामसुन्दर मल्लिक ने अपने पिता की लिखी प्रति से याद किया था और उसी को उन्होंने एक आत्मीय की स्मरण शक्ति की सहायता से प्रकाशित कराया है। अब तीनों मदनाष्टक असनी तथा मुअज्ज़माबाद से प्राप्त और माधुरी में प्रकाशित यहाँ पूरे उद्धृत किये जाते हैं। सम्मेलन वाला अष्टक संग्रह में दिया ही हुआ है। इस प्रकार से इन चारों के प्रकाशित हो जाने से अन्य सज्जन गण भी मिलान कर अपनी अपनी राय दे सकेंगे।

असनी से प्राप्त

दृष्ट्वा तत्र विचित्रतां तरुलताम् मैं था गया बाग में,
कांश्चित्तत्र कुरंगशावनैनी गुल तोड़ती थी खड़ी।
उन्नतभ्रूधनुषा कटाक्षविशिषा घायल किया था मुझे,
तत्सीमाधसरोज हायधवलं हे दर गुजारो शुकर ॥ १ ॥
कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था,
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था।
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला,
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला ॥ २ ॥
छबि छकित छबीली छैल राकी छड़ी थी,
मणि जड़ित रसीली माधुरी मूँदरी थी।
अलकि कुटिल कारे देख दिलदार जुल्फें,
अलि खुलित निहारें आपने दिल की कुल्फें ॥ ३ ॥
सकल शशि कला को रोशनी हीन लेखौं,
अहह ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं।

बहत मरुत मंदें मैं उठी रात जागी,
शशि कर कर लागे सेज को छोड़ि भागी ॥ ४ ॥
अहह विकट स्वामी मैं करूँ क्या अकेली,
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी।
दृग छकित छबीली छैल राकी छड़ी थी,
मणि जड़ित रसीली माधुरी मूँदरी थी ॥ ५ ॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब लेखा,
कह न सकत जैसा श्याम को दस्त देखा।
कठिन कुटिल कारी देख दिलदार जुल्फैं,
अलि कुलित निहारी आपने जी को कुल्फैं ॥ ६ ॥
सकल शशि कला को रोशनी हीन पेखौं,
अहह ब्रजलला को किस तरह फेरि देखौं।
विगत घन निशीथे चाँद को रोशनाई,
सघन घन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई ॥ ७ ॥
सुत पति गति निद्रा स्वामि यां छोड़ि भागी,
मदन सिरशि भूयः क्या बला आनि लागी।
हिमरितु रति धामा सेज लौटौं अकेली।
उठति विरह ज्वाला क्यों सहूँगी सहेली ॥ ८ ॥
इति वदति पठानी मद. मदांगी विरागी,
मदन सिरशि भूयः क्या बला आनि लागी।
हरनैन हुतासन्न ज्वलप्यामि याल,
रति नैन जवौधै साख वाकी बहाय ॥ ९ ॥
तदपि दहति चित्तं मामकं क्या करौगी,
मदन सिरशि भूयः क्या बला आनि लागी ॥ १० ॥

मुअज़्ज़मावाद से प्राप्त

ममासि मम नितांत्वं आय कै वासु कीया।
तन धन सब मेरा मान ते छीन लीया॥
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी।
अति चतुर मृगाक्षी देख तै मौन भागी॥ १॥
बहत मरुत मंदा मैं उठी राति जागी।
शशि कर कर लागे सेल ते पैन भागी॥
अहह विगत स्वामी क्या करौं मैं अकेली।
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी॥२॥
न भर्जासि धन धनांते धन धनी कैसि छाया।
पथिक जन वधूनां जन्म केता गवाया॥
तदपि दहति चित्तं मामकं क्या करोगी।
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी॥३॥
विगत सरद घन निशीथे चाँद की रोशनाई॥
सघन बन निकुंजे कान्ह बंशी बजाई॥
सुगति पति सुनिद्रा स्वामि या छोड़ि भागी।
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी॥ ४॥
हिम रितु रति धामा राति लेटी अकेली।
उठत विरह ज्वाला क्यौं सहौरी सहेली॥
चकित नयन वाला निद्रया तत्र लागी।
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी॥ ५॥

कमल कुसुम मध्ये राति को तू सयानी
मधुकर दिव साधू तू भयीरी देवानी॥
तदुपरि मधु काले कोकिला देखि भागी।
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी॥ ६॥

तौ मदन्न मयंकी ब्रह्म की चोप बाढ़ी ।
मुष कौंल बिभू पै चाँद ते कांति काढ़ी ॥
परम मदन रंभा देख तै मोहि भागी ।
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी ॥७॥
हर नैन हुतासन्न ज्वलप्यामि याल ।
रति नैन जलौघै खाख बाकी बहाया ॥
तदपि दहति चित्तं मामकं क्या करौंगी ।
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी ॥८॥
संवत् १८८२ चै० वदी ८ ए खानखानाँ कृत ।

माधुरी में प्रकाशित

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था ,
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था ।
कटि तट बिच मेला प्रीति सेला नवेला ,
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला ॥ १ ॥
अति ज़बर जंगी है पाँव ये दार जर्दें ,
बिलसत मन मेरी क्या वही यार पाऊँ ।
ज़रद बसन वाला गुल चमन देखता था ,
झुकि झुकि मतवाला गायते रेखता था ॥ २ ॥
कठिन कुटिल कारी देखि दिलदार जुल्फें ,
अतिहि[१] कुढ़ित मिहरी आपने दिल की कुल्फें ।
मकर-मधुप हेरो मान-मस्ती न राखें ,
बिलसत मन मेरो सुंदरें श्याम आँखें ॥ ३ ॥

---

१. पाठान्तर— "अंत कुढ़ित मिहरी अपना दिल की कुल्फें" ।

श्रुति-गढ़ चपला सी कुंडलें झूमते थे ,
नयन कवि तमासे मत्स१ यों घूमते थे ।
शरद शशि निशीथे चाँद की रोशनाई ,
सघन बन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई ॥ ४ ॥

सुपति पति समीपे साँइयाँ छाड़ि भागी ,
मदन सिरशि भूयः क्या बला आन लागी ।
यदुकुल नृप सिंहों जा दिना ते सिधारा ,
बहति नयन नीरे जैस ही गंगधारा ॥ ५ ॥

इति बदति च राधा जीवना क्या हमारा ,
असह बहु बिपत्ति दै बिधाता ने मारा ।
लिखति मम कपालो रावणा केर२ द्वारा ,
बिधि३ लिखिय न सक्यो काहु नाही सँभारा ॥६॥

तरुन जुगुत जाना देखत बुढ़ा बलाना ,
बहुत४ दिवस बाढ़ी हाथ हूँ नोच दाढ़ी ।
५रुचि रुचिहि बिकल्पं जो हुआ दुःख भागी ,
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥७॥

शशिनि कुल कलंके कंटकं पद्मनालं ,
उदधि-जलमपेयं पंडितो निर्धनत्वं ।
स्तन पतति युवत्याः शुक्लता केश पासा ,
सुजन जन वियोगी निर्विवेकी विधाता ॥ ८ ॥

१—मूल पाठ " मत्स्यों घूमते थे ।"

२—मूल पाठ " के " ।

३—मूल पाठ " लिखे न " ।

४—मूल पाठ " बहुत दिवस की बाढ़ा " ।

५—मूल पाठ "रुचि रुचि विकल्पम् ।"

सुरधुनिमुनिकन्ये तारयेः पुण्यवन्तं,
स तरति निजपुण्यैः तत्र किं ते महत्वं।
यदिह यवनजातिं पापिनं मां पुनीषे,
तदिह तव महत्वं तन्महत्वं महत्वम् ॥ ९ ॥

सभा की पत्रिका के लेख में मुअज्जमाबाद वाले अष्टक को रहीमकृत मानने के पाँच कारण दिये गए हैं। पहिला कारण इसकी प्राचीनता है पर यह प्रति केवल सौ वर्ष पुरानी है तथा इसकी प्राचीनता ऐसी नहीं है कि वह स्वयं सिद्ध हो। दूसरा कारण यह लिखा गया है कि 'रहीम' के जिस छंद के आधार पर मदनाष्टक रचा बतलाया जाता है उसकी और नं० १ के मदनाष्टक की भाषा एक सी है अर्थात् दोनों की भाषा संस्कृत और खड़ी बोली मिश्रित है। पर ऐसा कहाँ लिखा है? कौन लिखता है? यह सब कुछ नहीं बतलाया गया है। तीसरा भी 'बहुधा' शब्द के प्रयोग से बेकार है और कुछ सिद्ध नहीं करता। "मदन" शब्द आने ही से मदनाष्टक मानना चौथा कारण माना गया है। ऐसे बहुत से अष्टक, पंचक आदि हैं, जिनमें यह नियम लगाने से वे अष्टक, पंचक आदि रह ही न जायगे। 'देव' कृत तथा रत्नाकर जी द्वारा 'माधुरी' वर्ष ६ खंड २ सं० १ में प्रकाशित 'शिवाष्टक' के आठ लंबे कवित्तों में केवल एक बार शिव शब्द आया है। पाँचवाँ कारण 'पठानी' शब्द का प्रयोग बतलाया गया है। 'रहीम' पठान नहीं थे, वरन् शुद्ध तुर्क थे। साथ ही यह भी है कि इस संग्रह में दिये गए मदनाष्टक में प्रथम और अंतिम में 'मदन' शब्द आया है तथा 'पठानी' शब्द भी मौजूद है। पं० मायाशंकर जी याज्ञिक ने अपनी 'रहीम-रत्नावली' में इस मदनाष्टक को न मानने के कुछ कारण दिये हैं। पहिला यह है जो कि शिवसिंहसरोज आदि से मान्य तथा पुराने संग्रहों में दिया हुआ छंद—

कलित ललित माला वा जवाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि! बन अलबेला यार मेरा अकेला॥

मुअज्ज़माबाद वाले मदनाष्टक में नहीं है। दूसरे उसका प्रथम पद नायक की उक्ति है तथा उसके बाद की नायिका की है, जो विचारणीय है। तीसरे उसका तीसरा पद केदारभट्ट रचित "वृत्तरत्नाकर" नामक संस्कृत ग्रंथ में प्रायः उसी रूप में मिश्रित काव्य के उदाहरण में पाया जाता है। इस ग्रंथ पर नारायण भट्ट ने सं० १६०२ वि०* में टीका लिखी थी। वह पद इस ग्रंथ में यों दिया हुआ है।

हरनयनसमुत्थः ज्वाल वह्नि जलाया।
रति नयन जलौघै, खाक बाकी वहाया॥
तदपि वहति चेतो, मामकं क्या करौंगी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥†

---

* इसका रचनाकाल इस प्रकार दिया हुआ है—याति विक्रमशके द्विखषड्भू (१६०२) समिते सिनगकार्तिक सुद्धे। ग्रंथपूर्तिसुकृते किल कूर्मो रामचंद्र यद पूजनपुष्पम्।

† याज्ञिक जी ने जो पाठ दिया है, वह कुछ अशुद्ध है। सुभाषित-रत्न भांडागार पृष्ठ २१७ पर यह श्लोक इस प्रकार दिया है।

हरनयनहुताशज्वालया जो जलाया।
रतिनयनजलौघे ख़ाक बाक़ी बहाया॥
तदपि दहति चित्तं माक क्या मैं करौंगी।
मदन सरसि भूयः क्या बला आग लागी॥

अर्थ—महादेव जी के अग्निनेत्र की ज्वाला से जो जलाया गया तथा जिसका बचा हुआ भस्म रति के नेत्र से गिरते हुए जल

इस प्रकार विचार करने पर मुअज्जमाबाद वाले मदनाष्टक से संग्रह में दिए गये मदनाष्टक के रहीम-कृत होने की विशेष संभावना है। या यों कहा जाय कि जब तक कोई इसका अकाट्य तक से खंडन न कर सके तब तक निश्चय रूप से यही रहीम-कृत मदनाष्टक मान्य है। असनी से प्राप्त तथा माधुरी में प्रकाशित अष्टकों के प्रायः सभी छंद इसके छंदों से मिलते हैं। माधुरी वाले अष्टक के प्रथम सात पद अष्टक के हैं और अन्य दो रहीम काव्य के हो सकते हैं। गंगा जी पर इनकी विशेष भक्ति थी और अपने को यवन लिखते भी हैं।

७—फुटकर पद—रहीम ने रास पंचाध्यायी लिखा है, ऐसा कहा जाता है पर अभी यह ग्रंथ देखने में नहीं आया। भक्तमाला में दो पद दिये हुये हैं जो यहाँ संगृहीत हैं। ये उसके अंश हो सकते हैं। अन्य छंद जो अनेक संग्रहों आदि में रहीमकृत मिले हैं वे भी संगृहीत कर लिये गये हैं और पाद-टिप्पणियों में उनके पाठान्तर तथा मिलने के स्थान का उल्लेख कर दिया गया है।

८—रहीम काव्य—रहीम के कुछ संस्कृत श्लोक तथा कुछ संस्कृत हिन्दी मिश्रित श्लोक मिलते हैं जो यहाँ रहीम काव्य के नाम से संगृहीत किए गये हैं। दो श्लोक के भाव इन्होंने क्रमशः एक छप्पय तथा एक दोहे में प्रगट किया है जो संग्रह में दिया गया है। संस्कृत भाषा का इन्हें अच्छा ज्ञान था और सुकवि होने के कारण इनकी यह रचना भी उत्तम कोटि की है।

९—खेटकौतुकजातकम्—यह संस्कृत में ज्योतिष विषयक ग्रंथ है जिसमें आठों ग्रहों के बारहों स्थानों के फल एक एक श्लोक में दिए गये हैं। उसकी भाषा संस्कृत है पर कहीं कहीं ग्रहों के

से बहाया गया, ऐसे कामदेव के तालाब होने पर भी न जाने किस की आग लगी है कि चित्त को जलाती है, अब मैं क्या करूँ।

नाम आदि फारसी भाषा से भी मिलाकर अपनी रुचि वैचित्र्य का परिचय दिया है। इससे इनके ज्योतिष-विषयक ज्ञान का भी पता लगता है।

१०—वाक़ेआत बाबरी—प्रथम मुगल सम्राट् बाबर ने अपना आत्मचरित्र तुर्की भाषा में लिखा है। यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से तो महत्व-पूर्ण हुई है पर साथ ही यह एक भावुक तथा उदारचेता वीर के हृदय का उद्गार होने से अमूल्य हो गया है। अनेक देशों में भ्रमण करने, अनेक युद्धों में हारने और विजय प्राप्त करने, पैतृक राज्य खोकर एक वृहत् साम्राज्य स्थापित करने में तथा जन्म से मरण पर्यंत स्वावलंबी होने से बाबर का अनुभव बहुत ही बढ़ा चढ़ा था। वह अपने समय के संसार-प्रसिद्ध पुरुषों में एक था। ऐसे पुरुष द्वारा लिखे गये तुर्की भाषा के ग्रंथ का रहीम ने फारसी भाषा में अनुवाद किया है, जो बहुत ही शुद्ध है। पाश्चात्य विद्वानों ने इस अनुवाद की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है।

११—फारसी दीवान—फारसी भाषा के यह सुकवि थे और इन्होंने एक दीवान लिखा है। यहाँ उदाहरणार्थ एक ग़ज़ल के दो शैर उद्धृत किये जाते हैं।

अदाए हक़्क़ मुहब्बत इनायतस्त ज़ दोस्त।
वगरनः खातिरे आशिक़ बहेच ख़ुर्संदस्त॥
न ज़ुल्फ़ दानमो नै दाम ईक़दर दानम।
के पाता बेह सरम व हर्चो हस्त दर बंदस्त॥

भावार्थ—मित्र की कृपा है कि वह मेरे प्रेम का प्रतिफल देता है, नहीं तो प्रेमी सभी प्रकार से ही प्रसन्न है। न मैं केवल बालों की लटों को जानता हूँ और न फंदे ही को, क्योंकि सर से पाँव तक सभी अच्छा है और जो कुछ है उसी में वह बँधा हुआ है।

३–किंवदंतियाँ

(१)

जिस समय नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ मुग़ल साम्राज्य के वकील मुतलक़ थे उस समय एक दिन सेना के पैदल सिपाहियों के वेतन की परतों पर हस्ताक्षर करते हुए एक प्यादे के नाम के आगे भूल से दाम के स्थान पर तनका लिख गया। दाम आज कल के प्रायः एक पैसे के बराबर होता था और यह ताँबे का सिक्का था। तनका चाँदी का सिक्का था और चालीस दाम का होता था। इस प्रकार एक सहस्र दाम अर्थात् पचीस रुपये के स्थान पर एक सहस्र रुपया हो गया। जब यह भूल इनके कर्मचारी ने इन्हें दिखलाई तब इन्होंने उसका संशोधन न कर केवल यही उत्तर दिया कि उसके भाग्य में इतना लिखा था इसलिए वैसा लिख गया।

(२)

ख़ानख़ानाँ के एक आश्रित फारसी के प्रसिद्ध कवि मुहम्मद हुसेन 'नज़ीरी' नैशापुरी ईरान से भारत आये और ख़ानख़ानाँ के दरबार में रहने लगे। यह कुशल सोनार थे। सन् १६०२ ई० में यह मक्के गये और वहाँ से लौट कर अहमदाबाद ही में रह कर व्यापार करने लगे। सम्राट् जहाँगीर ने भी इन्हें बुलाकर इनको एक क़सीदे पर एक सहस्र रुपया, एक घोड़ा और खिलअत दिया था। यह सन् १६१२ ई० में अहमदाबाद ही में मरे और मकान के पास ही में अपने बनवाये मकबरे में गाड़े गये। मृत्यु के समय अपना सर्वस्व इन्होंने गरीबों और मुल्लाओं में बाँट दिया था। (आईन अकबरी, मआसिरे रहीमी, तुजुके जहाँगीरी और मीराते आलम) इन्हीं नज़ीरी ने एक दिन ख़ानख़ानाँ से कहा कि

एक लाख रुपये का ढेर कितना बड़ा होता है ? हमने नहीं देखा है। ख़ानख़ानाँ ने कोषाध्यक्ष को आज्ञा दी और तुरत एक लाख रुपयों का ढेर वहाँ लगा दिया गया। नज़ीरी ने देखकर कहा कि खुदा को धन्यवाद है कि नवाब के द्वारा हमें इतने सिक्के इकट्ठे दिखलाई दिये। ख़ानख़ानाँ ने कहा कि 'अब इसे आप ले जायँ और खुदा को दो बार धन्यवाद दें।' यह सुनकर मुल्ला नज़ीरी बहुत प्रसन्न हुआ और कई बार धन्यवाद दिया। सम्राट् जहाँगीर ने अहमदाबाद से बुलाकर तथा प्रशंसात्मक मसनवी पढ़ने पर जो उदारता दिखलाई थी उससे इसकी तुलना कीजिये।

(३)

इस्फ़हान के निवासी ज़हीरुद्दीन अब्दुल्ला इमाम के पुत्र मुल्ला शिकेबी यौवनावस्था में मातृभूमि छोड़कर तथा अमीर तक़ीउद्दीन मुहम्मद शीराजी से कुछ शिक्षा प्राप्त कर हिरात चला आया और कुछ दिन के अनन्तर भारत आकर ख़ानख़ानाँ का आश्रित हुआ। साक़ीनामा की रचना पर ख़ानख़ानाँ ने इन्हें अठारह सहस्र रुपया पुरस्कार दिया था। कवि-परिचय में लिखा जा चुका है कि इन्हें ख़ानख़ानाँ ने एक मसनवी पर, जो ठट्टा विजय पर लिखी गई थी, एक सहस्र अशरफ़ी पुरस्कार दिया था। यह अपने आश्रयदाता से कुछ खफ़ा हो कर दक्षिण से आगरे आये और महाबत ख़ाँ के द्वारा जहाँगीर के दरबार में पहुँच कर आगरे के सदर नियुक्त हुए। यहीं सन् १६१३ ई० में इनकी मृत्यु हो गई। (मआसिरे रहीमी, मीरातुल् आलम)।

(४)

एक दिन राजा टोडरमल तथा नवाब ख़ानख़ानाँ शतरंज खेलने बैठे। यह निश्चय हुआ कि जो हारे वह विजेता के बतलाये हुये जानवर की बोली बोले। खेल की समाप्ति पर राजा टोडर-

मल ने, जो जीते थे, कहा कि अब आप बिल्ली की बोली बोलिये। नवाब साहब यह सुनकर कुछ इतस्ततः करते हुए उठ खड़े हुए और यह कहकर कि एक आवश्यक बादशाही कार्य करके अभी आता हूँ, जाने लगे। राजा टोडरमल ने उनका वस्त्र पकड़कर खींचा और कहा कि नहीं पहिले आप बिल्ली की बोली बोल लीजिये, तब जाइये। नवाब अब्दुर्रहीम ने फारसी भाषा में 'मीआयम्, मीआयम्, मीआयम्' कहा जिसका अर्थ हुआ, आता हूँ, आता हूँ, आता हूँ। राजा साहब और नवाब साहब दोनों ही हँस पड़े। बिल्ली की बोली 'म्याऊँ' से बहुत कुछ मिलता जुलता (मी+आ=म्या+यम) मीआयम् तीन बार कहकर शर्त पूरी कर दी गई।

(५)

विरह पीड़ित किसी मनुष्य को देखकर किसी दूसरे पुरुष ने उससे समवेदना प्रकट करते हुए उसका वृत्तांत पूछा। उसने कहा कि मेरी प्रियतमा एक लक्ष मुद्रा माँगती है और उसके बिना मुझसे बातचीत भी नहीं करती। अब आप ही कोई उपाय बताएँ तो मैं इस कष्ट से बचूँ। उसने कहा कि यदि तुम कविता कर सकते हो तो यह एक बहुत ही सुगम उपाय है कि तुम अपना वृत्तांत कविता में लिखकर खानखानाँ के पास ले जाओ, वह बहुत उदार हैं, तुम्हारी कामना अवश्य पूर्ण हो जायगी। उसने झट इस प्रकार एक कविता रची—

हे उदार खानखानाँ!
एक चन्द्रमुखी मेरी प्यारी है।
वह जान माँगे तो कुछ हर्ज नहीं है।
रुपया माँगती है यही मुश्किल है।

जब ख़ानख़ानाँ ने उसकी यह प्रार्थना सुनी तो हँस कर उससे पूछा कि वह कितने रुपये माँगती है? उसके बतलाने पर एक लाख छ हज़ार रुपये दिलवाकर कहा कि एक लाख तो उसे देना और बाकी छ हज़ार तुम्हारे व्यय के लिये हैं। (तज़किरः हुसेनी)

(६)

ख़ानख़ानाँ के सिपाहियों को वर्षाकाल के चार महीने घर पर व्यतीत करने के लिये प्रति वर्ष आज्ञा मिल जाती थी। परंतु एक साल लड़ाई का सुयोग पड़ गया, जिससे घर जाने की आज्ञा न मिली। ख़ानख़ानाँ ने इसके बदले एक एक मुहर सब सिपाहियों को दिलवाई कि उसे व्यय कर वे यहीं आनन्द करें। एक सिपाही ने प्रार्थना की कि मुझे दो मुहर मिलनी चाहिये। ख़ानख़ानाँ ने उसे बुलाकर पूछा कि वह क्यों दो मुहर माँगता है। उसने उत्तर दिया कि हुजूर के आज्ञानुसार एक मुहर तो मेरे लिये है और दूसरी मुहर मैं घर पर भेजने के लिये चाहता हूँ कि वे वहाँ आनन्द करें। ख़ानख़ानाँ इस उत्तर पर बड़े प्रसन्न हुए और सब को घर जाने की आज्ञा दे दी। (ख़ानख़ानाँ नामा)

(७)

एक दिन एक दरिद्र ब्राह्मण ने नवाब ख़ानख़ानाँ की ड्योढ़ी पर आकर समाचार कहलाया कि नवाब का साढ़ू आया हुआ है। नवाब ने यह सुनकर उसे बुला लिया और उसका अच्छा आदर सत्कार किया और उसे बहुत कुछ धन देकर बिदा किया। दरबारियों में से किसी ने पूछा कि यह गरीब किस प्रकार आपका साढ़ू होता है। ख़ानख़ानाँ ने कहा कि संपत्ति की बहिन विपत्ति होती है, जिनमें एक मेरे यहाँ और एक इसके यहाँ है। यही इस सम्बन्ध का कारण है। (चकत्ता-वंशपरंपरा)।

(८)

एक दिन खानखानाँ की सवारी कहीं जा रही थी कि किसी ने इनकी पालकी में लोहे की एक पसेरी डाल दी। खानखानाँ ने उसे पाँच सेर सोना दिलवा दिया। किसी ने इस दंडनीय कार्य पर उलटे पुरस्कार देने का कारण पूछा तो आपने उत्तर दिया कि उसने हमें पारस समझकर लोहा पालकी में डाला था। (चकत्ता-वंशपरंपरा)

(९)

एक दरिद्र ब्राह्मण भूखा प्यासा एक दिन मुसलमानों को कोस रहा था कि उन्हीं का राज्य होने के कारण वह इस अवस्था में पड़ा हुआ है और कोई उसकी सहायता नहीं करता। खानखानाँ ने उसकी दशा देख कर तथा कोसना सुन कर उससे कहा कि भाई तुम हम लोगों पर दया करो, तुम्हें खाना पीना बहुत मिल जायगा। उसने प्रसन्न होकर अपनी पुरानी मैली फटी फटाई पगड़ी खानखानाँ पर फेंक दी और कहा कि शास्त्रानुसार आपकी बात पर प्रसन्न होने से आपको अवश्य कुछ देना चाहिए पर इसके सिवा मेरे पास और कुछ नहीं है। नवाब ने उस पगड़ी को ले लिया और उसे बहुत धन दिलवाया।

इसी भाव का संस्कृत का एक प्राचीन श्लोक है।

(१०)

खानखानाँ बहुत ही सुशील तथा लज्जाशील थे। शरीर भी सुगठित था और सौंदर्य की मात्रा भी कम न थी। इनके यौवन काल ही में एक स्त्री इन पर मोहित हो गई और इन्हें अपने यहाँ बुलाया। ये वहाँ पहुँचे और उससे पूछा कि आप मुझसे क्या चाहती हैं और मुझे किस कार्य के लिए बुलाया है? स्त्री ने लज्जित होकर इतना ही कहा कि मैं तुम्हारे जैसा बेटा चाहती हूँ।

नवाब ने उसकी वासना समझकर उत्तर दिया कि यह मेरे अधिकार के बाहर है, क्योंकि पुत्र का रूप रंग, शील, स्वभाव कैसा हो, कैसा न हो ? इस लिए सब से उत्तम यही है कि हमारे सा क्या हमीं आज से तुम्हारे पुत्र हुए और तुम हमारी माता हुई। यह कह कर इन्होंने अपना सिर उसकी गोद में रख दिया।

(११)

गोस्वामी तुलसीदास जी तथा नवाब अब्दुर्रहीम खाँ ख़ानख़ानाँ में परस्पर बहुत स्नेह था। एक बार एक निर्धन ब्राह्मण द्रव्याभाव से कन्या का विवाह न कर सकने के कारण दुःखित होकर गोस्वामी जी के पास आया और उनसे अपनी करुण कथा कही। उन्होंने कागज़ के एक टुकड़े पर निम्नलिखित दोहा लिख कर उसे दिया और ख़ानख़ानाँ के पास भेज दिया—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।

ख़ानख़ानाँ ने दोहे के इस अर्धांश को पढ़कर उस ब्राह्मण को बहुत कुछ धन दिया और उसी चिट पर दोहे की दूसरी पंक्ति में इस प्रकार उत्तर भेजा कि—

गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।

हुलसी का अर्थ प्रसन्न है और गोस्वामी जी की माता का नाम भी हुलसी था।

(१२)

नवाब ख़ानख़ानाँ के एक कर्मचारी ने अपने विवाह के लिए कुछ दिन की छुट्टी ली थी पर छुट्टी से अधिक दिन बीत गए थे। नौकरी पर चलते समय वह बड़े असमंजस में था कि नवाब साहब देर के लिए न जानें क्या दंड दें। उसकी स्त्री ने उनकी चिंता का कारण जानकर एक कागज़ पर निम्नलिखित एक बरवै

लिखकर पति को दिया कि जब नवाब साहब के दरबार में जाँय तब इसे उन्हें दें दें। बरवै यों है—

प्रीति रीति कौ बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यो मुरझि न जाय॥

ख़ानख़ानाँ इसे पढ़ कर बहुत प्रसन्न हुए और उसे कुछ न कहा। इस बरवै छंद को उन्होंने ऐसा पसन्द किया कि इसी में नायिका भेद तथा फुटकर बरवै लिखे।

(१३)

कहा जाता है कि पंडितराज जगन्नाथ त्रिशूली ने एक दिन स्वरचित एक श्लोक ख़ानख़ानाँ को सुनाया, जो इस प्रकार है—

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बंधुवर्गेषु।
नापकृतं नोपकृतं न सत्कृतं किं कृतं तेन॥

जिसने चल अधिकार पाकर शत्रु, मित्र और भाईबंधु का क्रमशः अपकार, उपकार और सत्कार नहीं किया उसने कुछ नहीं किया।

ख़ानखानाँ ने इस श्लोक की दूसरी पंक्ति को बदल कर इस प्रकार कर दिया—

नोपकृतं नोपकृतं नोपकृतं किं कृतं तेन॥

अर्थात् अधिकार पाकर शत्रु मित्र सभी का उपकार करना चाहिए।

ख़ानख़ानाँ के उदार हृदय में शत्रु के प्रति भी अपकार करने की बुद्धि को स्थान नहीं था।

(१४)

गोस्वामी तुलसीदास जी तथा 'रहीम' ख़ानख़ानाँ से परस्पर बहुत प्रेम था। इसी घनिष्ठता के कारण गोस्वामी जी ने अपनी दोहावली के अंत में रहीम-कृत एक दोहे को स्थान दिया है, जो इस प्रकार है—

मनि मानिक महँगे किए सहँगे तृन जल नाज ।
रहिमन याते कहत हैं राम गरीब नेवाज ॥ ❋

बाबा बेणीमाधव दास कृत मूल गुसाईं-चरित के एक दोहे से यह भी निश्चित है कि रहीम कृत बरवै को देख कर ही गोस्वामी जी ने बरवै रामायण लिखा था। दोहा इस प्रकार है—

कवि रहीम बरवै रचे पठये मुनिवर पास ।
लखि तेइ सुंदर छंद में रचना कियेउ प्रकास ॥

(१५)

सम्राट् अकबर के दरबारी नवरत्न। में आमेरनरेश महाराज मानसिंह का सर्वप्रथम स्थान था । इन्हीं के विषय में एक कवि स्यात् हरनाथ ने कहा है कि—

बलि बोई कीरति लता कर्ण किये द्वै पात ।
सींच्यो मान महीप ने जब देखी कुम्हिलात ॥

महाकवि केशवदास ने जहाँगीर चन्द्रिका में इन्हें तथा नवाब खानखानाँ को अकबर का सिंह कहा है—

साहिबी को रखबार सोभिजै सभा में दोऊ
खानखानाँ मानसिंह सिंह अकबर के ॥

इन्हीं मानसिंह की रण-दक्षता, राजनीति नैपुण्य तथा वीरता पर प्रसन्न होकर खानखानाँ ने उनकी यों अनन्वयाभूषित प्रशंसा की है—

हरि दश हैं, हर एकदश, रवि द्वादश विधि आन ।
तो सों तुही जहान में, मेरु महीपति मान ॥

❋ काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी ग्रंथावली की दोहावली में रहिमन के स्थान 'तुलसी एते जानिए' पाठ है ।

(१६)

तानसेन अकबर के दरबार के सुप्रसिद्ध गायक थे। यह पहिले बघेला-नरेश रामचन्द्र के यहाँ नौकर थे और वहीं से अकबर के यहाँ बुलाए गए थे। एक दिन इसने दरबार में सूरदास जी का एक पद गाया जो इस प्रकार है—

जसुदा बार बार यों भाषै।
है कोउ ब्रज में हितू हमारो चलत गुपालहिं राखै।

अकबर के इस पद का अर्थ पूछने पर सभा के उपस्थित सज्जनों ने अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रकार अर्थ किया। तानसेन ने कहा कि यशोदा जी बार बार अर्थात् अनेक मर्तबा इस प्रकार कहती हैं कि ब्रज में हमारा ऐसा कोई भला चाहने वाला है जो श्रीकृष्ण को मथुरा जाने से रोके।

फ़ारसी के सुकवि शेख़ फ़ैजी ने कहा कि बार बार का अर्थ रोना है और यशोदा रो रो कर कहती हैं—

राजा बीरबल ने कहा कि बार बार के माने द्वार द्वार हैं अर्थात् यशोदा जी प्रत्येक द्वार पर जाकर कहती फिरती हैं।

नवाब ख़ानआज़म कोका ने कहा कि बार बार का अर्थ दिन दिन है अर्थात् प्रति दिन यशोदा यह कहती फिरती हैं—

नवाब ख़ानख़ानाँ ने इस प्रकार अर्थ किया कि यशोदा का बार बार अर्थात् रोम रोम कह रहा है—

इस प्रकार अनेक तरह के अर्थ सुनकर अकबर ने पूछा कि सबके ऐसे भिन्न अर्थ करने का क्या कारण है। रहीम ने कहा कि हुजूर कवि अपने कौशल से ऐसे शब्द कहीं रख देता है जिसके 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' अलग अलग अपनेविचारानुसार अर्थ करते हैं। तानसेन गायक हैं, इन्हें बारंबार एक ही पद को अलापना पड़ता है, इस लिये इन्होंने वैसा ही अर्थ किया। शेख़

साहब शायर ही ठहरे, इन्हें सिवा नौह:गरी अर्थात् रोने के और काम ही क्या ? बस इन्होंने वैसा ही अर्थ लगाया। राजा साहब द्वार द्वार घूमने वाले ब्राह्मण हैं, इससे वही अर्थ बैठा डाला। नवाब साहब को ज्योतिष का ज्ञान है, उन्हें तिथि वार आदि समझ पड़ा इस कारण वैसा अर्थ लगाया पर वास्तव में अर्थ वही ठीक है जो मैंने किया है।

(१७)

ख़ानख़ानाँ ने आगरे की अपनी वृहत् अट्टालिका को बड़े ऐश्वर्य के साथ सजा रखा था। उसमें बादशाहों के बैठने योग्य सिंहासन बनवाकर सोने के चोबों पर कारचोबी शामियाना तनवाया था, जिसमें मोतियों की झालरें टँकी हुई थीं। छत्र, चमर आदि अन्य राजचिह्न भी रहते थे। इनके कुमित्रों ने चुगली खाई कि वह अपने गृह पर बादशाहों की नक़ल कर तख़्त पर बैठता है। एक दिन बादशाह यह सब देखने को उनके महल में पहुँचे और इन सब राजचिह्नों को वहाँ देखकर इनसे उनके वहाँ होने का कारण पूछा। इन्होंने तुरन्त उत्तर दिया कि ये सब वस्तु हुजूर ही के लिए तैयार रखी हैं कि जब बादशाह पधारें तब इनके लिए मुझे दूसरों से मँगनी माँगने की लज्जा न उठानी पड़े। बादशाह यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और चुग़लखोर अपना-सा मुख लेकर रह गये।

४—रहीम के आश्रित कविगण

नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ की गुणग्राहकता इतनी प्रसिद्ध हो गई थी कि दूर दूर देशों के प्रसिद्ध कविगण इनके दरबार में पुरस्कृत होने के लिए आया करते थे। मआसिरुल् उमरा के प्रसिद्ध लेखक नवाब समसमुद्दौला शाह नवाज़ ख़ाँ ने ख़ान-

खानखानाँ की जीवनी में लिखा है कि 'इन्होंने कई बार कवियों को उनके तौल बराबर सुवर्ण देकर पुरस्कृत किया था।.........यह बराबर गुप्त तथा प्रकाश्य रूप से दर्वेशों विद्वानों आदि को बहुत धन देते थे और दूर दूर तक के लोगों को प्रति वर्ष रुपए भेजते थे।' खानखानाँ के आश्रित फ़ारसी के कुछ प्रसिद्ध कवियों का संक्षिप्त उल्लेख यहाँ कर दिया जाता है, जिसके अनंतर हिन्दी के कवियों तथा उनकी प्रशंसात्मक कविताओं पर विचार किया जायगा।

उर्फ़ी—इनका नाम ख्वाजा सैयद था। पहिले यह दक्षिण गए पर वहाँ अच्छा स्वागत न होने के कारण यह खानखानाँ के पास चले आए। इनकी कविता में प्रसाद गुण बहुत था और इसीसे वह कवि के जीवन काल ही में लोक प्रिय हो गई थी। उर्फ़ी की नाज़ुक मिजाज़ी की प्रसिद्धि है। एक बार यह किसी नवाब के दरबार में गए थे। मोमबत्तियाँ जल रही थीं कि कहीं किसी मोम-बत्ती में एक बाल जल उठा, जिसकी चिराइन से आप को बहुत कष्ट हुआ और नाक में रुमाल लगाकर आप महफिल से उठ आए। इनकी छत्तीस वर्ष की अवस्था में सन् १५९१ ई० में मृत्यु हो गई। इन्होंने अपनी रचना का कुल संग्रह, जो लगभग १४००० शैर के था, खानखानाँ ही को दे रखा था, जिन्होंने इनकी मृत्यु पर सिराजा इस्फ़हानी से उसे संपादित कराया था।

मुल्ला हयाती जीलानी पर अकबर की बहुत कृपा रहती थी। जब खानखानाँ दक्षिण गए तब यह उन्हीं के साथ बुर्हानपुर में बहुत दिन रहा। मआसिरे रहीमी की रचना के समय यह जीवित था।

अनीसी शमलू—इसका यूल कुली बेग नाम था और पहिले 'जाही' उपनाम रखता था। यह शिकेबी का मित्र था। यह भारत आकर खानखानाँ के यहाँ पहिले मीर अर्ज और फिर मीर बख्शी

के पद पर कार्य करता रहा। सुहेल हबशी के साथ के युद्ध में इसने बड़ी वीरता दिखलाई। खानखानाँ की प्रशंसा में इसने कई कसीदे लिखे। एक मसनवी और एक दीवान भी लिखा है।

मीर मुग़ीस माहवी हमदानी सुकवि था जिसे शिकेबी, अनीसी आदि गुरुवत् मानते थे। यह खानखानाँ ही से मिलने भारत आया और बहुत धन पाकर प्रसन्न हो एराक़ लौट गया। अमीर रफ़ीउद्दीन हैदर 'राफेई' काशानी ने इसी प्रकार दो तीन बार में खानखानाँ से एक लाख रुपए पाए थे। काशी सब्ज़वारी को खानखानाँ ने इतना पुरस्कार दिया था कि स्वदेश लौटते समय बेचारा इसी धन के लिए हिरात के पास मारा गया। फ़ाहमी उर्मिज़ी भी एक क़सीदा बनाकर खानखानाँ के पास लाया और बहुत कुछ इनाम पाकर स्वदेश लौट गया। मौलाना नज़ीरी नैशापुरी भी खानखानाँ का मित्र तथा प्रशंसक था।

मुल्ला मुहम्मद रज़ा 'नबी' को उसके साक़ीनामा पर खानखानाँ ने दस सहस्र रुपए और एक हाथी पुरस्कार में दिया था। यह खानखानाँ का दरबारी कवि था और बराबर पुरस्कार पाता रहता था। इन लोगों के सिवा हैदर तबरेज़ी, उसका पुत्र सामरी, दाखिली इस्फ़हानी आदि अन्य शायर लोग भी इनके यहाँ से पुरस्कृत हुए थे।

हिंदी के अनेक कवियों को खानखानाँ ने प्रचुर धन देकर उनका सत्कार किया था और इनके विषय में उन कवियों ने भी सुन्दर कविता कर इनके शौर्य तथा औदार्य की अच्छी प्रशंसा की है। कुछ मुख्य मुख्य कवियों का परिचय तथा उनकी कुछ कविताएँ दी जाती हैं।

जाडा—यह महड़ू शाखा का एक चारण था, जो बहुत ही मोटा था और जिसका नाम आसकरन था। इसकी मुटाई के

कारण ही इसे लोग जाडा कह कर पुकारते थे। यह महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई जगमल की ओर से वकील बन कर ख़ानख़ानाँ से मिला था। महाराणा उदयसिंह ने अपने छोटे पुत्र जगमल ही को युवराज बनाया था और उनकी मृत्यु पर यह गद्दी पर बैठ भी गए पर मेवाड़ के सर्दारों ने इस अनुचित कार्य का अनुमोदन न कर उन्हें गद्दी से हटा कर महाराणा प्रताप को उस पर बिठाया था। इस पर जगमल सिसौदिया बादशाह के पास चला आया था। जाडा ने ख़ानख़ानाँ के दरबार में पहुँच कर निम्नलिखित चार दोहे उनकी प्रशंसा में कहे—

ख़ानख़ानाँ नवाब हो मोहि अचंभो एह ।
मायो किम गिरिमेरु मन साढ़ तिहत्थी देह ॥

ख़ानख़ानाँ नवाब रै खाँडै आग खिवंत ।
जलवाला नर प्राजलै तृणवाला जीवंत ॥

ख़ानख़ानाँ नवाब री आदमगीरी धन्न ।
यह ठकुराई मेरु गिर मनी न राई मन्न ॥

ख़ानख़ानाँ नवाब रा अड़िया भुज ब्रह्मंड ।
पूठै तो है चँडिपुर धार तले नव खंड ॥

इनका अर्थ इस प्रकार है—

मुझे यही आश्चर्य है कि ख़ानख़ानाँ का मेरु पर्वत सा मन साढ़े तीन हाथ की देह में कैसे समाया।

ख़ानख़ानाँ की तलवार से आग बरसती है पर पानीदार वीर पुरुष तो जल मरते हैं और तृण मुख में लिए (शरण में आए) हुए नहीं जलते।

ख़ानख़ानाँ का औदार्य धन्य है कि मेरु पर्वत से अपने प्रभुत्व को मन में राई सा भी नहीं मानते।

खानखानाँ की भुजा ब्रह्मांड में जा अड़ी है, जिसकी पीठ पर चंडोपुर अर्थात् दिल्ली है और जिसके तलवार की धार के नीचे नवों खंड हैं।

नवाब साहब इस चारण कवि की इन अद्भुत रस पूर्ण अत्युक्तियों को सुन कर प्रसन्न हुए और उसे प्रति दोहा एक एक लक्ष रुपया देना चाहा पर उस स्वामिभक्त चारण ने रुपये न लेकर उसके बदले अपने स्वामी जगमल को बादशाह से जागीर दिलाने के लिए प्रार्थना की। खानखानाँ की प्रार्थना पर अकबर बादशाह ने जहाजपुर का पर्गना, जिसे मेवाड़ से बादशाह ने छीन लिया था, उन्हें दे दिया। खानखानाँ ने जाडा की तारीफ़ करते हुए एक दोहा कहा था—

धर जड्डी, अंबर जडा, जड्डा महड्डू जोय।
जड्डा नाम अलाहदा, और न जड्डा कोय॥

अर्थ—पृथ्वी बड़ी है, आकाश बड़ा है, महड्डू शाखा का यह चारण बड़ा है और अल्लाह का नाम बड़ा है। इनके सिवा और कोई बड़ा नहीं है।

अकबर, खानखानाँ तथा चारण कवि तीनों ही की उदारता अनुकरणीय है।

केशवदास, महाकवि—बुंदेला-नरेश महाराज वीरसिंह देव तथा उनके अनुज इन्द्रजीतसिंह के आश्रित हिंदी के सुप्रसिद्ध आचार्य कवि केशवदास जी हिंदी प्रेमियों के परिचित हैं। उनके साधारण परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। इन्होंने जहाँगीर जस चंद्रिका नाम की एक पुस्तक की सं० १६६९ वि० में रचना की है, जो। खानखानाँ के पुत्र मिर्ज़ा एरिज शाहनवाज़ खाँ के लिये लिखी गई थी। उसमें खानखानाँ के विषय में यों लिखा है—

बइरम खाँ पुत्र सो हुमायूँ को साहि सिंधु ,
सातो सिंधु पार कीनी कीर्ति करबर की ॥
शील को सुमेर, सुद्ध साँच को समुद्र, रन
रुद्रगति 'केसौदास' पाई हरिहर की ॥
पावक प्रताप जाहि जारि जारी प्रक·········,
·········साहिबी समूल मूल गर की ।
प्रेम परिपूरन पियूष सींचि कल्प बेलि ,
पाल लीनी पातसाही साहि अकबर की ॥
ताको पुत्र प्रसिद्ध महि, सब खानन को खान ।
भयो खानखानाँ प्रगट, जहाँगीर तनु-त्रान ॥

साहिजू की साहिबी को रच्छक अनंत गति ,
कीनो एक भगवंत हनुवंत बीर सों ।
जाको जस "केसौदास" भूतल के आप पास ,
सोहत छबीलो छीर सागर के छीर सों ॥
अमित उदार अति पावन बिचारि चारु ,
जहाँ तहाँ आदरियो गंगा जी के नीर सों ।
खलन के घालिबे को खलक के पालिबे को ,
खानखानाँ एक रामचन्द्र जू के तीर सों ॥

जीते जिन गक्खरी, भिखारी कीने भक्खरी जे ,
खानि खुरासानि बाँधि, खरियो पर के ।
चोरि मारे गोरिया बराह बोरि बारिधि में ,
मृग से बिडारे गुजराती लीने डर के ॥
दच्छिन के दच्छ दीह दंती ज्यों बिडारे बीर ,
'केसौदास' अनायास कीने घर घर के ।
साहिबी के रखवार शोभिजैं सभा में दोऊ ,
खानखानाँ मानसिंह सिंह अकबर के ॥

गंग—'तुलसी गंग दुश्रौ भए सुकविन के सर्दार', दास कवि की यह उक्ति प्रसिद्ध है। गंग वीर रस के विख्यात कवि हो गए हैं। यह अकबर तथा खानखानाँ दोनों ही के आश्रित थे। इनके विषय में विशेष बातें नहीं ज्ञात हैं। इनकी मृत्यु के विषय में यह प्रमाणित होता है कि यह हाथी द्वारा किसी प्रकार मारे गए थे। निम्नलिखित छप्पय पर खानखानाँ ने इन्हें छत्तीस लक्ष रुपये दिए थे—

चकित भँवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन।
अहि फनि-मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन॥
हंस मानसर तज्यो, चक्क चक्की न मिले अति।
बहु सुंदरि पद्मिनी, पुरुष न चहे न करें रति॥
खल भलित सेस कवि 'गंग' भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरम-सुवन जिदिन कोप करि तँग कस्यो॥

इन्हीं की अन्य कुछ कविताएँ नीचे दी जाती हैं—

नवल नवाब खानखानाँ जू तिहारी त्रास,
भागे देसपति धुनि सुनत निसान की
'गंग' कहै तिनहूँ की रानी रजधानी छाँड़ि,
फिरै बिललानी सुधि भूली खान पान की॥
तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरानी,
तिनहूँ की भली भई रच्छा तहाँ प्रान की।
सची जानी करिन, भवानी जानी केहरनि,
मृगन कलानिधि, कपिन जानी जानकी॥

हहर हवेली सुनि सटक समरकंदी,
धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की।
मछम को ठाठ ठठ्यो प्रलय सों पलट्यो "गंग",
खुरासान अस्पहान लगे एक आना की॥

जीवन उबीठे बीठे मीठे-मीठे महबूबा,
हिए भर न हेरियत अबट बहाना की।
तोसखाने, फीलखाने, खजाने, हुरमखाने,
खाने खाने खबर नवाब ख़ानख़ानाँ की॥
कश्यप के तरनि औ तरनि के करन जैसे,
उदधि के इन्दु जैसे, भए यों जिजाना के।
दशरथ के राम और श्याम के समर जैसे,
ईश के गनेश औ कमलपत्र आना के॥
सिंधु के ज्यों सुरतरु, पवन के ज्यों हनुमान,
चंद के ज्यों बुध, अनिरुद्ध सिंह बाना के।
तैसई सपूत खान बैरम के ख़ानख़ानाँ,
वैसई दराब खाँ सपूत ख़ानख़ानाँ के॥
नवल नवाब ख़ानख़ानाँ जू तिहारे डर,
परी है खलक खैल भैल जहूँ तहूँ जू।
राजन की रजधानी डोली फिरें बन बन,
नैंठन को दैठें बैठे भरे बेटी बहू जू॥
चहूँ गिरि राहें परी समुद अथाहें अब,
कहे कबि 'गंग' चक्र बल्ली ओर चहूँ जू।
भूमि चली शेष धरि, शेष चल्यो कच्छ धरि,
कच्छ चल्यो कौल धरि, कौल चल्यो कहूँ जू॥
राजे भाजे राज छोड़ि, रन छोड़ि राजपूत,
राउति छोड़ि राउत रनाई छोड़ि राना जू।
कहे कबि 'गंग' इत समुद के चहूँ कूल,
कियो न करे कबूल तिय खसमाना जू॥
पच्छिम पुरतगाल काश्मीर अबताल,
खक्खर को देस बाढ्यो भक्खर भगाना जू।

रूम-शाम लोम सोम, बलख बदाऊँ सान,
खैल फैल खुरासान खीभे खानखानाँ जू ॥
गंग गोंछ मौंछे जमुन, अधरन सरसुती राग,
प्रकट खानखानाँ भयो, कामद बदन प्रयाग।
धमक निसान सुनि, धमकि तुरान चित्त,
चमक किरान मुल्तान थहराना जू ॥
मारु मरदान काम रुके करवान आदि,
मेवार के रानहि दवान आनमाना जू।
पुर्त्तगाल पछमाध पलटान उत्तराध,
गुजरात देस अरु दच्छिन दबाना जू॥
अरबान हबसान हट्टेलान रूम सान,
खैल भैल खुरासान चढ़े खानखानाँ जू।

हरनाथ—यह महापात्र नरहरि के पुत्र और सुकवि थे तथा बहुत उदार भी थे।

बलि बोई कीरति लता कर्ण कियो द्वै पात।
सींच्यो मान महीप ने जब देखी कुम्हलात॥

इस दोहे पर महाराज मानसिंह ने इन्हें एक लाख रुपया पुरस्कार दिया था। जब यह धन लेकर अपने घर जा रहे थे तब किसी कवि ने एक दोहा कहा, जो इस प्रकार है :—

दान पाय दो ही बढ़े की हरि की हरिनाथ।
उन बढ़ि नीचे कर कियो, इन बढ़ि ऊँचो हाथ॥

इस दोहे को सुन कर यह ऐसे प्रसन्न हुए कि पुरस्कार में पाई हुई सब सम्पति इन्होंने उसे दे डाली। इसी उदार सुकवि ने खानखानाँ की प्रशंसा की है :—

बैरम के तनय खानखानाँ जू के अनुदिन,
दोउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याये हैं।

कहै 'हरिनाथ' सातों दीप कौ दिपति करि,
जोह खंड करताल ताल सों बजाए हैं॥
एतनी भगति दिल्लीपति की अधिक देखी,
पूजत नए को भास तातैं भेद पाए हैं।
अरि सिर साजे जहाँगीर के पगन तट,
टूटे फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए हैं॥

मंडन—यह एक बुंदेलखंडी कवि थे। इन्होंने रसरत्नावली, रस विलास आदि ग्रंथ रचे हैं। इनका एक छंद 'रहीम' की प्रशंसा में यों है :—

तेरे गुन ख़ानख़ानाँ परत दुनी के कान,
तेरे कान यह गुन आपनो धरत है।
तू तो खग्ग खोलि खोलि खलन पै कर लेत,
लेत यह तोपै कर, नेक न डरत है॥
'मंडन सुकवि' तू चढ़त नवखंडन पै,
यह भुज दण्ड तेरे चढ़िए रहत है।
ओहती अटल खान साहब तुरक मान,
तेरी या कमान तोसों तेहु सों करत है॥

प्रसिद्ध—शिवसिंह सरोज के अनुसार यह ख़ानख़ानाँ के आश्रित कवि थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता की निम्नलिखित छंदों में प्रशंसा की है :—

गाजी ख़ानख़ानाँ तेरे धौंसा की धुकार सुनि,
सुत तजि, पति तजि, भाजी बैरी बाल हैं।
कटि लचकत, बार भार न सँभारि जात,
परी बिकराल जहँ सघन तमाल हैं॥
कवि 'परसिद्ध' तहाँ खगन खिजायो आनि,
जल भरि-भरि लेती हगन बिसाल हैं।

बेनी खैंचे मोर, सीस फूल को चकोर खैंचे ,
मुकता की माल ऐंचि खैंचत मराल हैं ॥
सात दीप सात सिंधु थरक थरक करैं ,
जाके उर टूटत अखूट गढ़ राना के ।
कंपत कुबेर बेर मेर मरजाद छाँड़ि ,
एक एक रोम झर पड़े हनुमाना के ॥
धरनि धसक धस, मुसक धसक गई ,
भनत 'प्रसिद्ध' खम्भ डोले खुरसाना के ।
सेस फन फूट फूट चूर चकचूर भए ,
चले पेसखाना जू नवाब खानखानाँ के ॥
जलद चरन संचरहि सबर सोहे सत्पथ गति ।
रुचिर रंग उत्तंग जंग मंडहिं विचित्र अति ।
बैराम-सुवन नित बकसि बकसि हय देत मंगनन ।
करत राग 'परसिद्ध' रोस छंड़हिं न एक छिन ॥
थरहरहिं पलट्टहिं उच्छलहिं, नच्चत धावत तुरँग इमि ।
खंजन जिमि नागरि नैन जिमि,नट जिमि मृग जिमि पवन जिमि ॥

अला क़ुली—यह हिन्दी का मुसलमान कवि 'रहीम' खान-खानाँ की दानशीलता की निम्न प्रकार से प्रशंसा कर रहा है :—

लंका लायो लूट किधौं सिंहन को कूट कूट ,
हाथी घोड़े ऊँट एते पाए तो खजाने हैं ।
'अलाक़ुली' कवि की कुबेर ते मिताई कीनी ,
अनुतुले अनमाए नग औ नगीने हैं ॥
पाई हैं तै खान लच्छ भई पहिचान भूल ,
रह्यो है जहाँ नए समान कह कीने हैं ।
पारस ते पाए किधौं पारा ते कमायो किधौं ,
समुद हूँ ते लायो किधौं खानखानाँ दीन्हें हैं ॥

तारा—इस कवि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। यह खान-खानाँ का आश्रित हो सकता है, जिनके घोड़ों की उसने इस प्रकार प्रशंसा की है :—

जोराबर अब जोर रवि-रथ कैसे जोर,
बने जोर देखे दीठि जोर रहियतु है।
हैन को लिवैया ऐसो, है न को दिवैया ऐसो,
दान खानखानाँ को लहे ते लहियतु है॥
तन मन डारे बाजी द्वै तन सँभारे जात,
और अधिकाई कहौ कासौं कहियतु है।
पौन की बड़ाई बरनत सब 'तारा' कवि,
पूरो न परत याते पौन कहियतु है॥

होल राय—यह अकबर शाह के आश्रित तथा होलपुर बसाने वाले थे। इन्हीं ने गोस्वामी तुलसीदास जी का लोटा माँग लिया था, जो अब तक होलपुर में पूजा जाता है। इन्होंने खानखानाँ की प्रशंसा इस प्रकार की है :—

दिल्ली ते न तख़्त ह्वैहै, बखत ना मुग़ल कैसो,
ह्वैहै ना नगर बढ़ि आगरा नगर ते।
गङ्ग ते न गुनी, तानसेन ते न तानबाज़,
मानते न राजा औ न दाता बीरबर ते॥
खान खानखानाँ ते न, नर नरहरि ते न,
ह्वैहै ना दिवान कोऊ बेडर टडर ते।
नओ खंड सात दीप सातहू समुद्र पार,
ह्वैहै न जलालुदीन शाह अकबर ते॥

मकुंद—इस नाम के दो कवियों का पता चलता है, विशेष ज्ञात नहीं है। खानखानाँ की प्रशंसा में इनके कई छप्पय मिलते हैं जिनमें एक एक निम्नलिखित छंद दिया जाता है।

कमठ पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन ।
फनपति फन पर पुहुमि पुहुमि पर दिपत दीप गन ॥

सप्त दीप पर दीप एक जंबू जग लिक्खिय ।
कवि मुकुंद तहँ भरतखंड उप्परहिं बिसिक्खिय ॥

खानानखान बैरम-तनय तिहिं पर तुव भुज कल्पतरु ।
जगमगहिं खग्ग भुज अग्ग पर, खग्ग अग्ग स्वामित्ति वरु ॥

इन कवियों के सिवा कुछ अन्य छंद भी मिलते हैं जिनमें ख़ानख़ानाँ तथा उनके पुत्रों की प्रशंसा है पर उनके कवियों के नाम तक अज्ञात हैं। वे छंद नीचे दिए जाते हैं।

दक्खिन को जूम ख़ानख़ानाँ जू तिहारो सुनि,
होत है अचम्भो राजा राय उमराइ के ।
एक दिन एक रात और दिन अथए लौं,
आए जो मुकाबिले को गए न बिराइ के ॥
बासर के जूमे ते सुमार ह्वै ह्वै गिरत हैं,
भेदें रविमंडल ते मारे हैं लराइ के ।
जामनी के जूमे सूर सूरज को पैंड़ो देखे,
भोर राहगीर दरवाजे ज्यों सराइ के ॥

नगर ठठा की रजधानी 'धूरधानी कीनी,
धरक्यो खँधारी खान पानी न हलक में ।
छाँड़े हैं तुखार औ बुखार न उपार भरे,
उजबक उजर कै गयो है पलक में ॥
पौरि पौरि परे सेर ठौर ठौर पौरि दई,
ख़ानख़ानाँ ध्याये ते अवाज है खलक में ।
पिय भाजे तिय छाँड़ि, तिया करे पीउ पीउ,
बाबा बाबा बिललात बालक बलक में ॥

मदन-रूप-तन तबल बीर बाहन गल गज्जह ।
बहु सनाह पाखरी द्वार दुंदुभि बहु बज्जह ॥
बहु साहस उत्थपन फेर थप्पन समर्थ बर ।
सहनसाह सिर छत्र ताहि रक्खन समर्थ नर ॥
खानानखान बैरम-सुवन, चित्त सहर रस रत्तयो ।
धन-मद-जोबन-राज मद, एकहि मद्द न मत्तयो ॥
खानखानाँ ना जाँचियों, जहाँ दलिद्र न जाय ।
कूप नीर अट्रे बिना, नीली धरा न पाय ॥
खानखान नवाब तें, वाही खग उल्लाल ।
मुदफर पड़ें न ऊठियो, जैसे अंबा डाल ॥
खानखानाँ नवाब तें, हत्त लगाए एम ।
मुदफर पड़ें न ऊठियो, गए जोबसी जेम ॥
खानखानाँ नवाब हो, तुम धुर खैंचन हार ।
सेरा सेती नहिं खिंचे, इस दरगह का भार ॥
काह रे करजदार झगरत बार बार,
नैक दिल धीर धर जान इतबारी से ।
वेहूँ दर हाल माल, लिखले सवाई साल,
देखना बिहाल मत जानना भिखारी से ॥
सेवा खानखानाँ की उमेदवारी दान कीते,
महर महान की सूँ होत धन धारी से ।
अब घरी पल माँझ, पहर-द्वै-पहर माँझ,
आज-काल आज-काल हरैं द्वै हजारी से ॥
दिए के हुकुम आगे दिये रहे जामिनी कै,
देह के कहन राख्यो देह के चहत हैं ।
बखत के नाम नाम राखत जहान माहिं,
धन के सबद धन-धन जे कहत हैं ॥

खानखानाँजू की अब ऐसी बकसीस भई,
बाकी बकसीस अरु बखसीस हत हैं।
हाथिन के नाम हाथी रहत तबेलन में,
घोरा दिये घोरा सतरंज में रहत हैं॥
काहू की सिकारि स्याल लोमन को खेल होत,
काहू की सिकारि मृग मारि सुख मानो है।
काहू की सिकार साथ सिकरा-सिचान-श्वान,
काहू की सिकार देखो वारुण बखानो है॥
खानखान की सिकार सिंध पैके वार पार,
छंद-बंद-फंद खट बरन को ठानो है।
अब ही सुनोगे मास दोय-तीन-चार माँझ,
कौन ही दिसा को पातशाह बाँधि आनो है॥
दर्प दरबार आयो औचक ही हरबर,
अंबर अनीक बर बरबर कर के।
तरपि तुरकमान साहसी दराब खान,
कीनो कतलाम घमसान उग्र दर कै॥
'मंझन' सुकवि कहै यहै चाह पाई जहाँ,
जीत को नगारौ बाज्यो बीतत समर के।
जौलौं हिमांचल तै लै डमरू बजावै संभु,
तौलौं डाक चौकी डाँकि मार्‌यौ हरिहर कै॥

५—समान भाव

प्रायः प्रत्येक कवि की रचनाओं में, यदि अन्वेषण किया जाय तो पूर्ववर्ती, समकालीन तथा परवर्ती कवियों के भावों का समावेश लक्षित होगा। कभी कभी तो भाव तथा वर्णन-शैली भी मिल जाती है, यहाँ तक कि शब्द योजना भी एक सी पाई जाती है। परवर्ती साधारण कविगण ऐसा भावापहरण कर अपने को निन्द-

नीय बनाते हैं पर वही कार्य सुकवियों द्वारा होने पर श्लाघनीय हो जाता है। वे उस भाव को लेकर उसे इस प्रकार कह डालते हैं कि उसमें कुछ नवीनता आ जाती है, जो पहिले में वांछनीय थी। सुकवि रहीम ने ऐसा किया है, पर उनकी शब्दावली, वर्णन-शैली आदि ऐसी सरल तथा मनोरंजक हैं कि अन्य के भाव भी उनकी निज की संपत्ति हो गई है।

तुलनात्मक समालोचना स्तुत्य है तथा समालोचक की साहित्य-मर्मज्ञता तथा अध्यवसाय की द्योतक है पर जब हठवश कोई महाशय दो सुकवियों की तुलना करते हुये एक की साधारण तथा दूसरे की असाधारण रचनाओं की असमानता दिखला कर एक को बढ़ा देते हैं तभी ऐसी समालोचना निन्द्य हो जाती है। कभी एक या दो पद ही लेकर उसको तुलनात्मक समालोचना के अनुसार किसी कवि को दूसरे से श्रेष्ठतर कह देना अनुचित होता है, क्योंकि उन दोनों की समग्र रचनाओं की तुलना होने पर फल उसके विपरीत भी हो सकता है। इस लिये यहाँ रहीम की रचनाओं का अन्य कवियों की रचनाओं के साथ वैसी ही तुलना की जायगी जहाँ दोनों के भाव एक हों और उनमें केवल वर्णन-शैली, भाव, योजना, भाषा आदि भिन्न हों। रहीम की कविता कितनी लोकप्रिय है यह किसी से भी छिपा नहीं है और जिस प्रकार इनकी कविता पर पूर्ववर्ती कवियों की छाप दिखलाई पड़ती है उसी प्रकार इनकी कविता का प्रभाव भी परवर्ती कवियों पर पड़ा है।

संस्कृत कवि तथा रहीम

संस्कृत साहित्य का हिन्दी पर कहाँ तक प्रभाव पड़ा है, इसकी विवेचना करना व्यर्थ है, क्योंकि यदि परिश्रम किया जाय तो ऐसी

बहुत कम कृतियाँ मिलेंगी जिनका आधार संस्कृत में न मिले। हिन्दी के गण्यमान्य कवियों में सभी संस्कृत कवियों के ऋणी मिलेंगे। संस्कृत मूल है, इस लिये हिन्दी-साहित्य का पोषण उसी से होता रहा है। ऐसी अवस्था में हिन्दी के कवियों के हृदय में संस्कृत कवियों के भावों का प्रस्फुटीकरण नितांत स्वाभाविक है। रहीम संस्कृत के पंडित तथा कवि थे और तदुपरि हिन्दी के सुकवि भी थे। ऐसी हालत में संस्कृत-उक्तियों का हिन्दी में सुचारु रूप से व्यक्त करना उनके लिए सहज था। इनकी शैली ऐसी मधुर, नैसर्गिक तथा सरल थी कि कोरा अनुवाद होने पर भी उसमें कुछ विशेष आनंद की सामग्री एकत्र हो जाती थी।

महर्षि वाल्मीकि जी अपने आदिकाव्य ग्रंथ रामायण में सीता जी के वियोग में ग्रस्त श्रीरामचन्द्र जी से कहला रहे हैं कि—

हारो नारोपित: कण्ठे मया विश्लेषभीरुणा।
इदानीमंतरे जाता: पर्वता सरितो द्रुमा: ॥ +

अर्थात् जिसने मुझसे दूर रहने के डर से गले में हार नहीं पहिरा था आज उसके हमारे बीच में पहाड़, नदी और पेड़ आगए हैं।

रहीम ने इसी भाव को लेकर साधारण रूप में, किसी विशिष्ट घटना के आधार पर नहीं, इस प्रकार कहा है—

रहिमन एक दिन वे रहे बीच न सोहत हार।
वायु जो ऐसी बह गई बीचन परे पहार ॥

ठीक ही है, काल महाबली है, जो न हो जाय सो थोड़ा ही है। देखिए समय बिगड़ने पर मित्रों के भी शत्रु हो जाने का एक कवि यों वर्णन करता है।

+ हनुमन्नाटक के पाँचवे अंक में भी यह श्लोक उद्धृत है।

येनांचलेन सरसीरुहलोचनाया-
स्त्रातः प्रभूतपवनादुदये प्रदीपः।
तेनैव सोऽस्तसमयेऽस्तमयं विनीतः
क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम् ॥

जो दीपक बालते समय कड़ी हवा के वेग से भी कमलनयनी के आँचल से रक्षित हुआ था वही उसीसे बुझाने के समय बुझा दिया गया। दैव-कोप होने पर मित्र भी शत्रु हो जाता है। रहीम इसी भाव को दो दोहों में बड़े ही सरल शब्दों में इस प्रकार दर्शा गए हैं।

जेहि अंचल दीपक दुर्‌यो हन्यो सो ताही गात।
रहिमन कुसमय के परे मित्र शत्रु ह्वै जात॥
जो रहीम दीपक दशा तिय राखत पट ओट।
समय परे ते होत है वाही पट की चोट॥

इसीलिए कहा जाता है कि ईश्वर ही सब का परम मित्र है और सभी को उसके निज कर्मानुसार फल मिलता रहता है। नगरों के महल्ले महल्ले में डाक्टर, वैद्य, हकीम, अस्पताल आदि के रहते हुए भी रोगों की नित्य प्रति उन्नति हो रही है, यहाँ तक कि नए नए रोग, जो कभी देखने सुनने में भी न आए थे, पधारते चले आ रहे हैं। पर दूरस्थ ग्रामों तथा जंगलों में अभी इन महाशयों की कृपा कम ही है क्योंकि इनके रोकने के प्रयत्न कम हो रहे हैं। एक वैज्ञानिक तत्व अंग्रेजी शब्दों में इस प्रकार है कि 'एव्री ऐक्शन हैज रिऐक्शन' अर्थात् कार्य का विरोध होता ही है। एक संस्कृत कवि पूर्वोक्त विचार इस प्रकार व्यक्त करता है।

अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे विनश्यति॥

रहीम इसी भाव को यों कहते हैं—

रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग्य बन, हरि अनाथ के नाथ॥

कुसमय पड़ने पर नीतिज्ञों का कहना है कि अपने भाई बन्धु में न रहना ही उचित है प्रत्युत्—

वरं वनं व्याघ्रगजेंद्रसेवितं द्रुमालयं पक्कफलांबुभोजनम्।
तृणानि शय्या परिधानवल्कलं न बंधुमध्ये धनहीनजीवनम्॥

रहीम इसी बात को इस प्रकार कहते हैं—

वरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न जोग॥

नदी अर्थात् किसी भी जलाशय से डरना चाहिए। तात्पर्य यह कि अपनी गहराई से अधिक दूर साहस करके जाना अपने प्राण से खिलवाड़ करना है। नख वाले तथा सींग वाले पशुओं से भी दूर रहने ही में भला है। सोचिये यदि आप किसी बड़े सींग वाले शिववाहन के पास खड़े हो कर उसकी पीठ सहला रहे हों और खुजली मिटाने के लिये यदि वह सहज स्वभाव ही से अपनी जीभ लपकावे तो उसके सींग भी साथ ही पहुँच कर आपका कल्याण मनाने लगेंगे। स्वयं निःशस्त्र हो कर किसी भी शस्त्रधारी से दूर रहना उचित है। कहीं 'बातहि बात करषि बढ़ि आई' तब दन्त नख की कमी वह हथियार से पूरी कर लेगा। स्त्रियों में जो सहज सुलभ संकोच होता है उसका लाभ उठाने में प्रायः लोग सतत प्रयत्नशील होते हैं और राजवर्ग भी दूसरों की कभी कभी, चाटुकारों की विशेषतः, बातें सुनता है, इसलिये इन दोनों वर्गों का भी पूरा विश्वास न करना चाहिये। कवि कहता है—

नदीनां नखिनां चैव, शृंगिणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च॥

रहीम इसी को कुछ घटा बढ़ाकर कहते हैं कि—

उरग तुरँग नारी नृपति, नीच जाति, हथियार ।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगे न बार ॥

रहीम ने केवल अविश्वास ही का प्रस्ताव पास न कर इनसे सतर्क रहने की चेतावनी दी है। इन लोगों का संपर्क तो रहेगा ही, इससे सावधानता ही ध्येय है।

याचना किसी की भी प्रतिष्ठा को बनी नहीं रहने देती, साधारण पुरुष की क्या कथा जब कि पुरुषोत्तम भगवान तक बलि से प्रार्थना करने के कारण छोटे हो गये। श्लोक इस प्रकार है—

कुर्यान्नीचजनाभ्यर्स्तां न याञ्चां मानहारिणीम् ।
बलिप्रार्थनया प्राप लघुतां पुरुषोत्तमः ॥

रहीम कई दोहों में इसी भाव को लाये हैं। जैसे—

माँगे घटत रहीम पद कितो करो बढ़ि काम ।
तीन पैंड़ बसुधा करी तऊ बावनै नाम ।

सुभाषितरत्नभांडागारं के पृ० ४७ पर निम्नलिखित श्लोक दिया है—

विकृतं नैव गच्छंति संगदोषेण साधवः ।
प्रावेष्टितं महासर्पैश्चंदनं न विषायते ॥

इसी का ठीक अनुवाद रहीम का निम्नलिखित दोहा है—

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग ।
चंदन बिष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग ॥

उसी ग्रंथ के पृ० १७५ पर एक श्लोक इस प्रकार है—

उपकर्तुं यथा स्वल्पः समर्थो न तथा महान् ।
प्रायः कूपस्तृषां हन्ति सततं न तु वारिधिः ॥

रहीम इस भाव को यों व्यक्त करते हैं कि—

धनि रहीम जल कूप को लघु जिय पियत अघाय ।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पिआसो जाय ॥

दुःख सुख, संपत्ति विपत्ति में बड़े लोग समान रूप में रहते हैं, न कभी विशेष प्रसन्न होते हैं और न कभी विशेष शोक ही करते हैं। सूर्य पर पूर्वोक्त विचार घटा कर एक कवि कहता है कि—

उदेति सविता रक्तो रक्तश्चास्तमने तथा।
संपत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥ (सुभा०)

रहीम कहते हैं कि—

ऊगत जाही किरन सों अथवत ताही कांति।
ज्यों रहीम सुख दुःख सबै सहत एक ही भाँति॥

रहीम ने इसी भाव को चंद्र पर भी घटा कर कहा है—

यों रहीम सुख दुःख सहत, बड़े लोग सह सांति।
उवत चंद जिहि भाँति सों अथवत ताही काँति॥

मृदंग पर पिसान की लोई लगाने से मधुर ध्वनि होती है, इस पर एक कवि कहता है—

को न याति वशं लोके मुखं पिंडेन पूर्यते।
मृदंगो मुखलेपेन करोति मधुरध्वनिम्॥

रहीम इस प्रकार कहते हैं—

चारा प्यारा जगत में छाला हित करि लेय।
ज्यों रहीम आटा लगे त्यों मृदंग स्वर देय॥

सत्संग और कुसंग के फल पर रहीम ने कई दोहे रचे हैं। एक श्लोक है—

दुर्वृत्तसंगतिरनर्थपरम्पराया
हेतुः सतां भवति किं वचनीयमत्र॥
लंकेश्वरो हरति दाशरथेः कलत्रं
आप्नोति बंधनमसौ किल सिंधुराजः॥

रहीम ने यही भाव यों कहा है—

बसि कुसंग चाहत कुसल यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की रावन बस्यो परोस ॥

इसी प्रकार जलघड़ी को लेकर कुसंगति का फल दिखलाया गया है—

सच्छिद्रनिकटे वासः कर्त्तव्यो न कदाचन।
घटी पिबति पानीयं झल्लरी तेन ताड्यते ॥

रहीम इस को यों कह गये हैं—

रहिमन नीच प्रसंग ते नित प्रति लाभ विकार।
नीर चुरावै संपुटी मारु सहत घरिआर।

रहीम ने निम्नलिखित श्लोकों का अनुवाद ही किया है। कुछ उदाहरण साथ साथ दिये जाते हैं।

पिबंति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादंति फलानि वृक्षाः।
पयोमुचाम्भः क्वचिदस्ति पास्यं परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

तरुवर फल नहिं खात हैं सरवर पयहिं न पानि।
कहि रहीम पर काज हित संपत सँचहिं सुजान ॥

जीवनग्रहणे नम्राः गृहीत्वा पुनरुन्नताः।
किं कनिष्ठाः किमु ज्येष्ठा घटीयंत्रस्य दुर्जनाः ॥

रहिमन घरिया रहँट की त्यों ओछे की दीठि।
रीतिहि सनमुख होति है भरी दिखावै पीठि ॥

फ़ारसी कवि तथा रहीम

रहीम मुसलमान थे और फ़ारसी, अरबी तथा तुर्की भाषाओं के पूर्ण विद्वान थे। इन्होंने फ़ारसी काव्य-साहित्य का पूरा परिशीलन किया था और स्वयं फ़ारसी के सुकवि तथा सुलेखक थे। ऐसी अवस्था में फारसी के कवियों के भावों का इनकी हिंदी रचनाओं में मिलना स्वाभाविक ही है। उदाहरण रूप में दो तीन

शैरों के भाव यहाँ दे दिए जाते हैं। प्रसिद्ध कवि खुसरो कहते हैं—

अश्कम बेरूँ मीअफगंद राज़ दरून पर्दह: रा।
आर शिकायत हा बूवद मेहमान बेरूँ कर्द: रा॥

पर्दे में छिपे भेद को आँसू बाहर निकाल देते हैं अर्थात् खोल देते हैं। मेहमान को बाहर निकाल देने पर उसे शिकायत होती ही है। इसी भाव को रहीम इस प्रकार कहते हैं।

रहिमन अँसुआ नैन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कहि देइ॥

क्यों न कहे ? जब अपमान ही हुआ तो कोई क्यों बात छिपावे। मानव प्रकृति ही ऐसी है। तब भी मनुष्य ही की शरीर है, जो सब सह लेती है। किसी ने कहा है—

बर सरे फ़र्ज़ंदे आदम हरचे आयद बे गुज़रद।

रहीम इसी भाव को यों कहते हैं—

जैसी परे सो सहि रहे कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है सीत घाम औं मेह॥

शेख़ सादी का एक शैर प्रसिद्ध है कि

अगर शह रोज़ रा गोयद शबस्त ईं।
बेबायद गुफ्त ईनक माहो परवीं॥

अगर बादशाह दिन को रात्रि बतलावे तो यही कहना चाहिये कि वह चन्द्रमा और रोहिणी हैं। रहीम ने इसी भाव को यों कहा है—

रहिमन जो रहिबो चहै कहै वाहि के दाँव।
जो बासर को निसि कहै तो कचपची दिखाव॥

रहीम तथा कबीर

विनोद में कबीर का समय सं० १४७५ दिया हुआ है। तात्पर्य यह कि ये रहीम के पूर्ववर्ती एक प्रसिद्ध कवि हो गए हैं। इनकी रचना में बहुत से दोहे हैं, जिनमें से कुछ रहीम के दोहों से बिल्कुल मिलते हैं। केवल भाव मात्र ही नहीं प्रत्युत् शब्दावली तक मिलती है। इन दोनों ही कवियों की रचनाओं के जितने संग्रह छपे हैं, वे किसी ऐसी प्राचीन प्रतियों के आधार पर नहीं संगृहीत हुए हैं, जिनसे उन सबका निश्चयतः उन्हीं कवियों का होना सिद्ध समझा जाय। यह साधारण पुरुषों की एक प्रथा है कि अपनी रचना को प्राचीन कवि के नाम पर बनाकर उसे प्रसिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। अभी कल के चरखे की बात को लेकर ही 'कहै कबीर सुनो भाई साधो' कह डालने से वह कबीर की नहीं हो सकती। कबीर, रहीम, तुलसी आदि कवियों के उपनाम चार चार मात्रा के हैं। जिसे जिस कवि का कुछ पक्षपात सा हुआ उसने जिस पद को पाया उसमें एक के स्थान पर दूसरे का उपनाम बैठा दिया ऐसा कभी कभी अनजान में भी होता रहता है, इस लिये एक ही दोहे के दो तीन सुप्रसिद्ध कवियों की रचनाओं में मिलने से एक पर दूसरे की कृति के अपहरण का दोष लगाना अन्याय कार्य है। यहाँ कुछ दोहे दिए जाते हैं जो कबीर दास द्वारा रचित कहे जाते हैं, पर इस संग्रह में भी मौजूद हैं। पहिला नम्बर कबीर बचनावली का और दूसरा इस संग्रह का है।

भजूँ तो को है भजन को तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में सो कबीर मन मान॥ १३१। २६८॥

साधू ऐसा चाहिए जैसा रूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे थोथा देय उड़ाय॥ ७८। २१९॥

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर॥ ३३१। ८८॥
जो बिभूति साधुन तजी तेहि बिभूति लपटाय।
जौन बमन करि डारिया स्वान स्वाद सों खाय॥ ३६४। ८३॥
जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु है हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी तामें दो न समाहिं॥ १०६। १७७॥
हेरत हेरत हेरिया रहा कबीर हिराय।
बूँद समानी समुद में सो कित हेरी जाय॥ २२५। २३७॥
मान बडाई जगत में कूकर की पहिचानि।
मीत किये मुख चाटई बैर किये तन हानि॥ ५१४। १८२॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागै अति दूर॥ ११५। २७०॥

इनके सिवा ऐसे बहुत से और दोहे भी मिलते हैं, पर स्थानाभाव से अधिक नहीं दिये जाते।

रहीम और तुलसी

गोस्वामी तुलसीदासजी तथा रहीम की मित्रता के विषय में अन्यत्र लिखा जा चुका है। दोनों ही सुप्रसिद्ध सुकवि हो गए हैं। इसलिए एक ही भाव का दोनों की रचना में मिलना संयोग मात्र है। बरवै छंद में तो रहीम की देखादेखी ही गोस्वामीजी ने बरवै रामायण बनाई थी और उनके ग्रन्थों का रहीम की रचना पर भी प्रभाव पड़ सकता है। यहाँ दोनों ही महाकवियों के कुछ सदृश भाव के नमूने उदाहरणार्थ दिये जाते हैं। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी ग्रंथावली के द्वितीय भाग में संकलित दोहावली की संख्या भी पाठकों की सुविधा के लिए दे दी जाती है।

(१) तुलसी जाने सुनि समुझि कृपासिंधु रघुराज।
महँगे मनि कंचन किए सौंघे जग जल नाज ॥ १४९ ॥
मनि मानिक महँगे किये सहँगे तृन जल नाज।
रहिमन याते कहत हैं राम गरीबनेवाज ॥

(२) जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिए दस माथ।
सो संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ ॥ १६३ ॥
माँगे मुकरि न को गयो केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो ते रहीम रघुनाथ ॥

(३) नीच निचाई नहिं तजै सज्जनहू के संग।
तुलसी चंदन बिटप बसि बिनु बिष भये न भुअंग ॥ ३३७ ॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन बिष ब्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग ॥

(४) बिनु प्रपंच छल भीख भलि लहिय न दिये कलेस।
बावन बलि सो छल कियो दियो उचित उपदेस ॥ ३९४ ॥
परि रहिबो मरिबो भलो सहिबो कठिन कलेस।
बामन ह्वै बलि को छल्यो भलो दियो उपदेस ॥

(५) आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोय।
तुलसी अंबुज अंबु बिन तरनि तासु रिपु होय ॥ ५६४ ॥
जब लगि वित्त न आपने तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु रवि नाहिंन हित होय ॥

(६) पात पात को सींचिबो बरी बरी को लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न ? ॥ ४४८ ॥
पात पात को सींचिबो बरी बरी को लोन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को कहो बरैगो कौन ? ॥

(७) तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं हमैं पूछिहै कौन ? ॥ ५६४ ॥

पावस देखि रहीम मन कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए हमको पूछत कौन ? ॥

रहीम और बिहारी

'सतसैया के दोहरे' के रचयिता सुकवि बिहारी लाल का परिचय इतना ही बहुत है कि हिन्दी-साहित्य में दोहों की रचना में यह अद्वितीय हो गये हैं। यह हिन्दी कविता-कामिनी के शृङ्गारिक वर्णन करनेवाले अग्रगण्य कवियों में परिगणित हैं। कहीं कहीं नीति के भी दोहे इन्होंने कहे हैं। ऐसे ही सुकवि की कुछ रचना रहीम की रचना के साथ सदृश भाव के नाते नीचे दी जाती हैं। बिहारी के दोहों की जो संख्याएँ दी गई हैं, वह बिहारी-रत्नाकर की हैं; जिसका पाठ प्रायः आज तक के प्रकाशित सभी संस्करणों से अधिक शुद्ध है।

(१) कैसे छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़्यो दमामो जात क्यों कहि चूहे कै चाम ॥ १३१ ॥
रहिमन छोटे नरनु तें होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमामो ना बनै सौ चूहे के चाम ॥ १८९ ॥

(२) सगति सुमति न पावही परे कुमति कै धध।
राखौ मेलि कपूर में हींग न होहि सुगंध ॥ २२८ ॥

(३) बढ़त बढ़त सपति सलिलु मन सरोजु बढ़ि जाय।
घटत घटत फिरि ना घटै बरु समूल कुम्हिलाय ॥ २६५ ॥
ससि, सँकोच, साहस, सलिल, मान, सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं घटत घटत घटि सीम ॥

(४) बिषम बृषादिक की तृषा जिये मतीरनु सोधि।
अमित अपार अगाध जलु मारौ मूड़ पयोधि ॥ ३७७ ॥
धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाय ॥

(५) दोऊ चोर मिहीचनी खेलु न खेलि अघात।
दुरत हियैं लपटाइ कै छुवत हियैं लपटात॥ ५३०॥
खेलत जानिसि टोलिया नन्दकिसोर।
छुइ बृषभानु कुँअरिया ह्वै गा चोर॥

(६) क्यों बसियै क्यों निबहियै नीति नेह पुर नाहिं।
लगालगी लोयन करैं नाहक मन बँधि जाहिं॥ ४०७॥
कुटिलन संग रहीम कहि साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें उरज उमेठे जाहिं॥

रहीम और मतिराम

हिन्दी-साहित्य के नव सर्वोत्तम कवियों में परिगणित सुविख्यात कवि मतिराम रहीम के परवर्ती कवि हैं। इनकी रचनाओं में रसराज, ललितललाम, सतसई आदि उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। मतिराम की कविता पर रहीम की कविता का काफ़ी प्रभाव पड़ा है। रहीम का बरवै नायिकाभेद तथा मतिराम के रसराज को साथ पढ़ने से इसका विशेष रूप से स्पष्टीकरण हो जाता है। दोनों में दिये हुए बहुत से उदाहरणों का भाव एक है और कहीं कहीं शब्द-योजना तक मिलती हुई है। इसके दो तीन ही उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

(अनुकूल नायक)

करत न हिय अपरधवा सपनेहु पीय।
मान करन की बिरियाँ रहिगो हीय॥ (रहीम)
सपनेहू मन भावतो करत नाहिं अपराध।
मेरे मन ही में रही सखी मान की साध॥ (मतिराम)

भाव एक और प्रायः शब्द भी सब एक ही हैं। एक कहती है कि हमारा मान करने का अवसर ढूँढना हमारे मन ही में रह गया और दूसरी कहती है कि हमारे मान करने की साध मन

ही मन में रह गई। बात एक ही है। माधुर्य तथा स्वाभाविकता दोनो ही में प्राय: एक सी है।

सुभग बिछाय पलँगिया अँग सिंगार।
चितवत चौंकि तरुनियाँ दै दृग द्वार॥ (रहीम)
सुंदरि सेज सँवारि कै साजे सबै सिंगार।
दृग-कमलन के द्वार में बाँधे बंदनवार॥ (मतिराम)

मतिराम जी ने रहीम के भाव ही को अपनाया है और अपनाकर एक साहित्य-मर्मज्ञ के अनुसार 'अपनी योग्यता का परिचय अपूर्व रीति से दिया है।' आपके अनुसार द्वार पर बंदनवार बँधवा देने से शुभ अवसर, स्वागत तथा कार्य में सफलता आदि सभी का निर्देश होता है। और एक बात भी सुन लीजिये। 'नायिका द्वारा शय्या का तथा अपने शृङ्गार का सामञ्जस्य भी इसी बंदनवार में है।' बंदनवार बँधा हुआ है द्वार पर और सामञ्जस्य हो रहा है शय्या तथा शरीर के शृङ्गार में। बंदनवार के साथ साथ कहीं शहनाई भी बजती होती तो कार्य-साफल्य अवश्य ही होता, इन्तजारी अधिक न करनी पड़ती और प्रिय दौड़ा हुआ आ पहुँचता। रहीम का यह भाव नहीं है और न उन्होंने अपने बरवै को अस्वाभाविक होने दिया है। एक नायिका अपने महल में पति की प्रतीक्षा कर रही है। लज्जाशीला नायिका केवल उतनी ही तैयारी करेगी जिसे वह या उसका पति देख सके। अन्य कोई भी उसकी तैयारी देख ले, यह वह कभी न चाहेगी। इसी लिये ऐसी अवस्था में बंदनवार बँधवाना लज्जा की मर्यादा का उल्लंघन करना है। विवाहादि अवसरों ही में, जब खूब ढोल पिटती है, बंदनवार शुभ माना जाता है, एकांत रमणी के प्रिय की प्रतीक्षा के समय नहीं। शृङ्गार करते हुये या उसके बाद प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा में द्वार की ओर चुपचाप दृष्टि जमाए रखना ही वास्तव में स्वाभाविक

है। किसी प्रकार का खटका होने से चौंक पड़ना कवि के बढ़े चढ़े अनुभव का द्योतक है। मेरी सम्मति में मतिराम जी रहीम का भाव लेते हुये भी उनसे बढ़ना दूर बराबर भी नहीं रह सके हैं। दो एक अन्य उदाहरण भी लीजिये।

मो हित हरबर आवत भा पथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा औ तन स्वेद॥ (रहीम)
कहत तिहारो रूप है सखी पैंड को खेद।
ऊँची लेन उसास है कलित सकल तन स्वेद॥(मतिराम)
जनि मरु रोइ दुलहिया करि मन ऊन।
सघन कुंज ससुररिया औ घर सून॥ (रहीम)
केलि करै मधुमत्त जहँ घन मधुपन के पुंज।
सोच न कर तुव सासुरे सखी सघन बन कुंज॥ मतिराम)

रहीम और व्यास

व्यासजी बुन्देलखंड निवासी कवि थे, जो मथुरा में आ बसे थे। इन्होंने वैष्णव होने पर बहुत से पद कहे और इनकी साखी में लगभग सवा सौ के दोहे हैं। इनमें भक्ति तथा बृन्दावन-माहात्म्य पर अधिक दोहे हैं। दो तीन समान भाव के दोहे नीचे दे दिए जाते हैं।

रहिमन जगत-बड़ाइ की कूकर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई बैर करै तन हानि॥ (रहीम)
व्यास बड़ाई लोक की कूकर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई बैर करै तन हानि॥ (व्यास)
व्यास आस करि माँगिबो हरिहू हरुबो होइ।
बावन ह्वै बलि कै गए जानत है सब कोइ॥ (व्यास)
परि रहिबो मरिबो भलो सहिबो कठिन कलेस।
बावन ह्वै बलि को छल्यो भलो दियो उपदेश॥ (रहीम)

रहीम और वृन्द

विक्रमाब्द अठारहवीं शताब्दी का मध्य ही वृन्द कवि का रचना-काल है। इन्होंने तीन चार ग्रंथ बनाए हैं। इनकी सतसई नीतिपूर्ण है और बहुत अच्छी है। यह एक उच्च कोटि के सुकवि हो गए हैं। इनके तथा रहीम के समान भाव के कुछ दोहे उदाहरणार्थ नीचे दिए जाते हैं।

१ कैसे निबहें निबल जन करि सबलन सों बैर।
जैसे बसि सागर बिषे करत मगर सों गैर॥
केवल जैसे के स्थान पर "रहिमन" पाठ है।

२ जान बूझ अजगुन करै तासों कहा बसाय।
जागत ही सोवत रहै, कैसे ताहि जगाय॥ (वृंद)
अनकीन्हीं बातें करै सोवत जागै जोय।
ताहि सिखाय जगायबो रहिमन उचित न होय॥ (रहीम)

३ बिधि के बिरचे सुजनहू दुरजन सम ह्वै जात।
दीपहि राखे पवन तें अंचल वहै बुझात॥ (वृंद)
जेहि अंचल दीपक दुर्यो हन्यो सो ताही गात।
रहिमन दुरदिन के परे मित्र शत्रु ह्वै जात (रहीम)

४ दुष्ट निकट बसिये नहीं बसि न कीजिये बात।
कदली बेर प्रसंग तें छिदे कंटकन पात॥ (वृंद)
कहु रहीम कैसे निभे बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने उनके फाटत अंग॥ (रहीम)

५ भले बुरे सब एक से जौलौं बोलत नाहिं।
जानि परत हैं काक पिक रितु बसंत के माहिं॥ (वृंद)
केवल 'भले बुरे सब एक से' के स्थान पर 'दोनों रहिमन एक से' पाठ है।

६ दुर्जन के संसर्ग ते सज्जन लहत कलेस।

ज्यों दसमुख अपराध तें बंधन लह्यो जलेस ॥ (वृंद)
बसि कुसंग चाहत कुशल यह रहीम जिय सोस ।
महिमा घटी समुद की रावन बस्यो परोस ॥ (रहीम)

पाठकगण देखें कि भाव एक होते भी उसके प्रकट करने में दोनों की शब्दावली में कितनी भिन्नता है। रहीम की शैली की सादगी तथा प्रसाद गुण कितना बढ़ कर है।

रहीम और रसनिधि

पृथ्वीसिंह दीवान दतिया के एक जागीरदार थे, जिनका उपनाम रसनिधि था। इनका एक ग्रंथ रतनहजारा छपा है और कुछ स्फुट पद भी प्राप्त हैं। खोज में इनके लगभग एक दर्जन ग्रंथों का नाम दिया गया है। यह एक सुकवि हो गए हैं और इनका रचना-काल सं० १७६० है।

१ याके बल वह लेत है पावक चिनगी खाइ ।
चंदहि जो जारन लगे तो चकोर कित जाइ ॥ (रसनिधि)
अनुचित उचित रहीम लघु करहिं बड़न के जोर ।
ज्यों ससि के संयोग ते पचवत आगि चकोर ॥ (रहीम)

२ बढ़त आपनो गोत को और सबै अनखाहिं ।
सुहृद नैन नैना बड़े देखत हियो सिहाहिं ॥ (रसनिधि)
रहिमन यों सुख होत है बढ़त देखि निज गोत ।
ज्यों बड़री आँखियाँ निरखि आँखिन को सुख होत ॥

३ तोय मोल में देत हों छीरहिं सरिस बढ़ाइ ।
आँच न लागन देत वह आप पहिल जरि जाय ॥
जलहि मिलाय रहीम ज्यों कियो आपु सम छीर ।
अँगवहि आपुहि आपु त्यों सकल आँच की भीर ॥

रहीम और अन्य कविगण

विस्तार-भय से अन्य कवियों के सदृश भावों की रचना को अलग अलग न देकर कुछ ही उदाहरण यहाँ एक साथ देकर संतोष करना पड़ता है। ऐसे भी भाव मिलते हैं, जिन पर एक नहीं आधे दर्जन कवियों ने अपना काव्य-कौशल दिखलाया है, पर ऐसी खोज करने के लिये विशेष अध्यवसाय तथा समय वांछित है, इस कारण ऐसे भाव नहीं दिये गए हैं। आशा है कि अगले संस्करण में ऐसा किया जा सके।

१ सुन्दर जिन अमृत पियौ सोई जानै स्वाद।
बिन पीयै करतौ फिरै जहाँ तहाँ बकवाद ॥(सुन्दर)
रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहिं ॥(रहीम)

२ पुरुष पूजे देवरा तिय पूजे रघुनाथ।
कहि रहीम दोउ न बने पड़ो बैल को साथ ॥ (रहीम)
खसम जो पूजै देहरा भूत पूजनी जोय।
एकै घर में द्वै मता कुसल कहाँ तें होय ॥ (भारतेंदु)

३ अहमद गति अवतार की सबै कहत संसार।
बिछुरे मानुस फिर मिले यहै जान अवतार ॥ (अहमद)
रहिमन सुधि सब तें भली मिले जो बारम्बार।
बिछुरे मानुस फिर मिलें यहै जान अवतार ॥ (रहीम)

४ रहिमन दुरदिन के पड़े बड़ेन कियो घटि काज।
पाँच रूप पांडव भए रथवाहक नलराज ॥ (रहीम)
साँई अवसर के पड़े को न सहै दुःख दंद।

... ...

फिरे तपस्वी बेष बड़े अर्जुन बलधारी ॥
कह गिरिधर कविराय रसोई भीम बनाई।

को न करै घटि काम पड़े अवसर के साँई ॥
५ साँई एकै गिर धर्यो गिरधर गिरिधर होय।
हनूमान बहु गिरि धरे गिरिधर कहत न कोय ॥
... ...
थोरे ही जस होय जसी पुरुषन को साँई ॥ गिरिधर)
थोरो किये बड़ेन की बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को गिरिधर कहै न कोय ॥ (रहीम)

६ आलोचना

"जब कि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्त-वृत्ति का स्थायी प्रतिबिंब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्त-वृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।" अर्थात् देश के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांप्रदायिक परिवर्तनों तथा परिस्थितियों के अनुसार जनता की परिवर्तित चित्त-वृत्ति के साथ वहाँ के साहित्यिक वातावरण में भी परिवर्तन होते रहते हैं, यहाँ तक कि अन्य देश से आकर बस गये हुये साहित्यिक गण भी उस देश की ऐसी परिस्थितियों से प्रभावान्वित होते रहते हैं। भारत से विशाल देश में अनेक भाषायें प्रचलित हैं, पर राजनीतिक परिस्थितियों के साथ जितना परिवर्तन हिंदी भाषा में लक्षित होता है उतना किसी भी अन्य भाषा में नहीं होता। इसी प्रकार की एक परिस्थिति में पड़कर, हिंदी से भिन्न एक भाषा कहलाती हुई, उर्दू नाम की हिंदी ही अलग हो पड़ी। हिंदी ही में, चाहे वह प्रचलित खड़ी बोली रही हो चाहे काव्य परंपरा की भाषा रही हो, आज प्रायः एक सहस्र वर्ष से राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होते रहने का स्पष्ट दिग्दर्शन हो रहा है। मुसलमानों का भारत में आगमन, भारत में अधिकार करने का प्रयत्न, साम्राज्य फैलाना,

समग्र देश में फैलकर यहीं का निवासी हो रहना, धार्मिक उदारता तथा कट्टरता आदि जिस प्रकार इस साहित्य में व्यक्त हो रही हैं उसी प्रकार इसी काल के बीच के हुए धार्मिक तथा सामाजिक विप्लवों का भी उससे पूरा पता चल रहा है। यही हिंदी की राष्ट्रीयता है, जिसे आज कुछ लोग नई समझते हैं, पर यह बहुत प्राचीन है और यह उसे अपनी माता से, सबसे बड़ी संतान होने के कारण, पैतृक रूप में मिला है। नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ान-ख़ानाँ अपने समय के मुग़ल साम्राज्य के प्रधान मंत्री, उच्चकोटि के सर्दार, प्रसिद्ध भाषा-विद्, सुविख्यात साहित्य-सेवी तथा भारत के सुविशाल प्रांतों के अध्यक्ष रह चुके थे और हिमालय के उत्तुंग शिखरों से गोदावरी तक और काबुल से बंगाल तक खूब पर्यटन भी कर चुके थे। इनकी नसों में शुद्ध तुर्की रक्त प्रवाहित हो रहा था पर अपनी मातृ-भाषा तथा अपने सम्राट् के दरबार की फारसी भाषा को छोड़कर इन्होंने अपने विचार, अनुभवादि को हिंदी ही में व्यक्त कर इसकी राष्ट्रीयता का पूर्ण समर्थन किया है। जिस राजनीतिक क्षेत्र में इनका यौवन तथा प्रौढ़ अवस्था व्यतीत हुई थी, वह जटिल क्षेत्र बड़ी ही कुशलता से एक प्रसिद्ध मुग़ल सम्राट् द्वारा निर्मित हुआ था। उसका साहित्यिक वातावरण भी असाधारण था। फारसी के फैज़ी, सनाई, हुज्नी, काही, उर्फ़ी, ग़िज़ाली आदि से सुप्रसिद्ध कवि जब एक ओर अपनी 'नौह:गरी' से श्रोताओं के हृदय व्यथित कर रहे थे तब दूसरी ओर स्वयं सम्राट्, नवाब अब्दुर्रहीम ख़ाँ ख़ानख़ानाँ, राजा बीरबल, राजा टोडरमल आदि हिंदी में अपने अपने अनुभवों को कविता-बद्ध कर रहे थे। तात्पर्य यह कि उस समय मुग़ल दरबार में हिंदी को पूरा आदर मिल चुका था और 'रहीम' अकबर ही द्वारा पालित तथा शिक्षित होने के कारण हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि हो गये हैं।

जिस प्रकार अकबर में 'तअस्सुब या हठधर्मी' भाषा के लिए नहीं थी उसी प्रकार उसके धर्म या समाज के विचारों में भी नहीं थी; प्रत्युत् उसकी धार्मिक तथा सामाजिक उदारता आज कल के सुशिक्षित मुसलमानों के लिये आदर्श बनी हुई है। उसके दर्बार में एक ओर कट्टर धर्मांध मुल्लाओं का ज़ोर था और दूसरी ओर उदार मुसलमानों तथा हिन्दुओं का जमघट था। अन्य धर्म के ज्ञाता लोग भी निमन्त्रित होकर आते थे और स्वमत के तथ्यों की बादशाह के सामने विवेचना करते थे। बादशाह स्वयं उदार था, इस लिये प्राय: उदार-दल ही का प्रभाव बढ़ कर था। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार सारे भारत में उस समय कुछ ऐसी हवा उड़ रही थी जिसमें धार्मिक तथा सामाजिक उदारता ही की सुगंधि विस्तारित हो रही थी।

रहीम की धार्मिक प्रवृत्ति

मआसिरुल्उमरा में लिखा है कि 'यद्यपि इनके पिता इमामिया थे पर यह अपने को सुन्नी कहते थे। लोग इनके इस कथन पर शंका करते थे। इनके पुत्र गण कट्टर सुन्नी थे।' तात्पर्य यह कि ये मुसलमान थे और इनके सुन्नी होने ही की विशेष सम्भावना है। मुसलमान धर्म के विषय में बहुत ही संक्षेप में कुछ लिखना यहाँ आवश्यक ज्ञात होता है। आज तेरह शताब्दी पहिले अरब में इस्लाम धर्म का आरम्भ हुआ। वहाँ के निवासियों की धार्मिक प्रवृत्ति बदल रही थी और वे अपने पहिले के धर्म से कुछ विरक्त हो रहे थे। ईसाई और यहूदी धर्म अपने पाँव फैला रहे थे कि हीर: की गुफा से मुहम्मद ने अपनी आवाज ऊंची उठाई कि 'सिवा एक परमेश्वर के और कोई देवता नहीं है और मुहम्मद उसका रसूल है।' अरब के पहले धर्म के पंडों ने इसका

विरोध किया, मुहम्मद के उपदेशों की हँसी उड़ाई गई, पर अन्त में तलवार के जोर से इस्लाम धर्म फैलने लगा। इस्लाम की जड़ जम जाने पर सफलता के उत्साह, धार्मिक उत्तेजना तथा राजनीतिक विचारों ने, जो स्यात् उस समय की जनता की रुचि के अनुकूल थी, उस व्यापक धर्म को दबा दिया, जिसे लेकर मुहम्मद साहब उठे थे और उसमें असहिष्णुता, कट्टरपन तथा एकदेशीयता बढ़ने लगी। रोज़े, तेहवार आदि बढ़ाये गये और ज्ञान-कांड की कमी के साथ कर्मकांड की अधिकता होने लगी। हज्ज, ज़ियारत आदि की पवित्रता तथा फलदायकता बतलाई जाने लगी। अस्तु, इस प्रकार सन् ६३२ ई० में मुहम्मद की मृत्यु तक इस्लाम का सारे अरब में धार्मिक तथा सांसारिक प्रभुत्व पूर्णतया फैल गया।

मुहम्मद के निस्संतान मरने पर अबू बकर, उमर तथा उसमान क्रमशः खलीफा हुये। अंतिम की मृत्यु पर मुहम्मद के दामाद अली खलीफा हुये। इसी समय मुसलमानों के दो जत्थे हो गये, जिनमें एक शीआ (इमामिया) तथा दूसरा सुन्नी कहलाया। प्रथम तीन खलीफों को पहिला जत्था अनधिकारी मानता है और अली से खिलाफत का आरम्भ लेता है। दूसरा जत्था समाज के चुनाव को सर्वोपरि समझता है और वंश-परंपरा के अधिकार को नहीं मानता। सन् ६६० ई० में अली मारे गये और छ:महीने बाद उनका बड़ा पुत्र हसन भी अपनी ही स्त्री द्वारा विष दिये जाने पर मर गया। करबला युद्ध में दूसरा पुत्र हुसेन भी मारा गया। इसके बारह पुत्रों में से केवल एक बच गया था, जिससे शीओं के इमामों का वंश चला। इन दो विभागों के सिवा और भी कई जत्थे हो गये हैं, जिनमें सूफी, वहाबी, दरवेश आदि मुख्य हैं। 'रहीम' इसी इस्लाम मत के अवलंबी थे, पर इन पर सूफियों

की पुस्तकों तथा अकबर के दरबार के उदार वातावरण का ऐसा प्रभाव पड़ा था, जिससे काव्य-रचना-जगत में इनका मुसलमान से अधिक हिंदू होना ही विशेष संभव ज्ञात होता है। इनकी हिंदी की कोई रचना उठा कर देखिये, उसकी प्रतिपंक्ति में आपको भारतीय प्रेम, भक्ति, दान, अनुभव, सभ्यता आदि का निदर्शन मिलेगा। उपमाएँ, कथानक, प्राकृतिक दृश्य आदि जो कुछ हैं, सभी में हिंदुत्व भरा हुआ है। यह रहीम ही से पुरुष का कार्य था जो एक धर्म के अनुयायी होते हुए दूसरे धर्म के प्रति इतनी उदारता दिखला सके हैं कि वे उस धर्म के अनुयायी से ज्ञात होने लगे। पर ऐसे उदार आदर्श का बहुत कम लोगों ने अनुकरण किया।

उर्दू साहित्य के कवियों की रचनाएँ—उसके आरम्भकाल से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक की—एक एक कर देखिये पर आपको भारत की गङ्गा सी नदी का नाम भी न मिलेगा, जिसके जल वायु में वे पले थे, पर फारस आदि की नदियों की बेहद प्रशंसा मिलेगी, जिन्हें उन कवियों ने आँखों से भी न देखा होगा। इसका कारण हठधर्मी मात्र कहा जा सकता है। अब देखिए कि रहीम गङ्गा जी का कितने सम्मानपूर्वक उल्लेख कर रहे हैं।

अच्युतचरणतरङ्गिणि शशिशेखरमौलिमालतीमाले।
मम तनुवितरणसमये हरता देया न मे हरिता॥

विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होने वाली और महादेव जी के मस्तक पर मालती माला के समान शोभित होने वाली हे गंगे! मुझे तारने के समय महादेव बनाना न कि विष्णु।

गंगा जी के माहात्म्य का यहाँ तक आदर किया है कि दूसरे जन्म में भी महादेव जी का रूप धारण कर उसे मस्तक ही पर धारण करना चाहते हैं।

ईश्वरोन्मुख प्रेम अर्थात् भक्ति

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, सोलहवीं शताब्दी तक वैष्णवों का भक्ति-मार्ग भारत में अच्छी प्रकार फैल गया था। मुसलमानों में भी सूफी मत का प्रचार बहुत पहिले से हो चुका था और भारत में भी उसका प्रभाव फैल रहा था। राम और रहीम की एकता का नानक, कबीर आदि बहुत से महात्मा उपदेश कर चुके थे और कुछ कर रहे थे, जो भारत की साधारण जनता में, पंडितों तथा मुल्लाओं को छोड़िये, विशेष रुचि से सुना जा रहा था। निराकार परमेश्वर को छोड़ कर साकार अवतारों की ओर विशेष झुकाव हो रहा था। जो ईश्वर हमीं लोगों के स्वरूप में हमारे ही बीच रह कर हमारे दुःख सुख का साथी रहा, हमारे सहस्रों दोषों को क्षमा करता था, उसका ध्यान जितना सहज साध्य है, उतना उसका नहीं जो अज्ञेय, अध्येय आदि गुणों से विभूषित है। निर्गुण भक्तों की बानियों पर भी जनता की रुचि विशेष न ठहरने पाई और भक्ति के व्यापक रूप में पुनः आ प्रतिष्ठित हुई। 'रहीम' इसी भागवत-सम्प्रदाय के अवलम्बी हुये थे और धार्मिक कट्टरता से दूर रहे। रहीम थे तो मुसलमान पर 'कर्रू मैं सिज्द: बुतों के आगे तू ऐ बिरहमन खुदा खुदा कर' की नीति को मानने वाले थे। वे सारे संसार का क्या, सारी अनंतसृष्टि का एक ही स्रष्टा मानते थे— अरब का खुदा, भारत का परमेश्वर और योरोप का गॉड अलग अलग नहीं। उसी एक स्रष्टा को वे राम तथा रहीम दोनों ही नाम से संबोधित करते थे। यही कारण है कि इन्होंने कृष्ण तथा राम के प्रति अपनी अनन्य भक्ति दिखलाई है। देखिए, रहीम अपने हृदय की बात आपही कहते हैं।

कमल-दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं सखी मो मन तें मंद मंद मुसुकानि ।।
यह दसननि दुति चपलाहू तें महा चपल चमकानि।
बसुधा की बसकरी मधुरता सुधा पगी बतरानि ।।
चढ़ी रहे चित उन बिसाल की मुकुतमाल थहरानि।
नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि ।।
अनुदिन श्रीबृन्दाबन ब्रजतें आवन आवन जानि।
अब रहीम चित तें न टरति है सकल स्याम की बानि ।।१३।।

'बसुधा की बसकरी मधुरता' की क्या कोई उपेक्षा कर सकता है पर उसके आस्वादन करने की पात्रता तो हो। श्रीकृष्ण जी का वर्णन करते हुए कहते हैं।

यह सरूप निरखै सोई जानै इस 'रहीम' के हाल की।

इस दशा तक पहुँचने में कितनी अनन्यता, कितना सच्चा प्रेम चाहिए, यह अवर्णनीय है। यही देखकर भारतेन्दु जी ने लिख डाला था कि "इन मुसलमान भक्तन पर कोटिन हिन्दू वारि डारौं।" मदनाष्टक ही में जिस श्याम का वर्णन है, उसके एक एक अंग का, उसकी छरी तथा मूंदरी तक का कितने प्रेम के साथ वर्णन किया गया है। प्रिय की प्रत्येक वस्तु प्रिय होती है।

रहीम को अपने ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास था। वे कहते हैं कि—

'रहिमन' को कोउ का करै ज्वारी चोर लबार।
जो पतिराखनहार है माखन-चाखन-हार ।।

वह यहाँ तक कहते हैं कि—

रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकले राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ।।

ईश्वर दया की खानि है, समुद्र है, वह बहुत ही शीघ्र प्रसन्न

होकर क्षमा याचना के पहिले ही क्षमा कर देता है। ऐसे ही दीन-बन्धु के प्रति रहीम अपने मन को प्रेरित करते हैं कि—

तै रहीम मन आपनो कीन्हों चारु चकोर।
निसि बासर लागो रहे कृष्णचन्द्र की ओर॥

सत्य ही, यदि मन लग जाय तो फिर मनचाहा हो ही रहता है। अकबर ही के दरबार में एक भक्त वैष्णव थे, जो सदा कृष्ण नाम जपा करते थे। एक बार बादशाह ने उनसे कहा कि इस प्रकार नाम जपते रहने से क्या परमेश्वर आवेंगे। वह भक्त उस समय मौन रह गया और दूसरे ही दिन राजधानी से कुछ हटकर एक राजमार्ग के किनारे सूअर की खाल ओढ़ कर जा बैठा तथा ऊँचे स्वर से 'अकबर अकबर' जपने लगा। क्रमशः यह समाचार बादशाह तक पहुँचने लगा कि कोई मनुष्य इस हालत में बैठा हुआ आपका नाम जप रहा है। बादशाह ने पहिले यह सुन कर अनसुनी कर दी; पर जब उसने कई दिन यह बात सुनी तब उसे पूरा वृत्तांत जानने की उत्सुकता हुई। वह भक्त सिवा नाम जप के किसी से कुछ बोलता नहीं था, इससे बादशाह स्वयं उसके पास गये। उसके कहने पर अपनी छड़ी से उसकी खाल जब हटा दिया तब वह भक्त उठ खड़ा हुआ और कहने लगा कि हुजूर, दस दिन के नाम जप करने से जब आप राजसिंहासन छोड़ कर यहाँ आये और अस्पृश्य खाल तक हटाया, तब क्या वह परमेश्वर जन्म भर मन लगा कर याद करने से भी हमारे पास नहीं आवेगा।

रहिमन मनहि लगाइ कै देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा नारायण बस होय॥

प्रेम

रहीम ने प्रेम का अच्छा वर्णन किया है। प्रेम मार्ग कितना

कठिन है यह बतलाते हुये वह उस मार्ग पर अग्रगामी होने वाले को बार बार सचेत करते हैं। वह कहते हैं कि जो यात्री मोम के बने घोड़े पर चढ़ कर आग में चलने को तैयार हो उसे ही इस मार्ग में आना चाहिये।

रहिमन मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माँहि।
प्रेम पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं॥

सत्य ही, इस मार्ग में जो जाता है उसे उस पथ से न डिगना चाहिए और 'जो डिगिहै तो फिर कहूँ नहिं धरने को पाँव।' प्रेम वह अग्नि है, जो हृदय में सुलगती रहती है पर बाहर धुँआ तक नहीं प्रकट होने पाता। इसके मजा को या कष्ट को वही समझता है जिस पर बीत रही हो।

अंतर दाँव लगी रहे धुँआ न प्रकटै सोय।
कै जिय जानै आपनो जा सिर बीती होय॥

साथ ही इस प्रेमाग्नि में यह भी विचित्रता है कि कभी बुझती नहीं प्रत्युत् बुझती हुई सी मालूम होते हुये भी फिर सुलग उठती है।

जे सुलगे ते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं॥

प्रेम मार्ग पर ऐरे-गैरे निठल्लुओं को चलते देख कर आप कैसी चुनौती लेते हैं।

रहिमन पैंडा प्रेम का निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपीलिका, लोग लदावत बैल॥

इसे भी मानों बंजारों तथा व्यापारियों के लद्दू पशुओं का मार्ग मान लिया है। यह क्या कोई व्यापार है जहाँ जितना लेना उतना ही देना आवश्यक है। जी नहीं।

यह न रहीम सराहिये, लेन देन की प्रीत।
प्रानन बाज़ी राखिये, हारि होय कै जीत॥

प्रेम एकांगी तथा पारस्परिक दोनों प्रकार का होता है, यदि दूसरा हुआ तो समझिये कि भाग्य ही खुल गया और कहीं पहिला हुआ तब उर्दू कविता के नौहागरों के साथ मिल कर 'कोरस' गाइये। पहिले में अर्थात् पारस्परिक प्रेम होते हुये भी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ इस मार्ग में मिलती हैं। इस प्रकार सचेत करते हुये भी कवि ने प्रेम की महत्ता ही दिखलाई है, हाँ, इस मार्ग के यात्री को कहाँ तक दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिए, इसका विश्लेषण अवश्य किया है।

आत्मसम्मान

यह शब्द अंग्रेजी के सेल्फ़रेस्पेक्ट का अनुवाद सा ज्ञात होता है, पर यह है प्राचीन शब्द। सुना था कि किसी अंग्रेज़ अफ़सर ने किसी रईस से कहा कि तुम लोगों के यहाँ सेल्फ़रेस्पेक्ट के लिये कोई भी शब्द नहीं है। वे रईस महाशय चुप हो रहे, क्योंकि स्यात् वे हिन्दी को उस समय ग्रामीण भाषा समझते रहे हों, नहीं तो वे इस शब्द को अवश्य बतलाकर अपनी मान-रक्षा करते। अस्तु, नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ में आत्माभिमान की मात्रा पूरी थी और वे कहते भी हैं कि—

मान सहित विष खाय के, शम्भु भय जगदीस।
बिना मान अमृत पिये, राहु कटायो सीस॥

इसी लिये इनका कहना था कि जहाँ मनुष्य की प्रतिष्ठा तथा मर्यादा बनी रहे वहीं जाना चाहिये और वैसा ही काम भी करना चाहिये।

रहिमन मोहिं न सुहाय अमी पियावै मान बिनु।
बरु बिष देय बुलाय मान सहित मरिबो भलो॥

इसी मान-प्रियता के कारण यह आत्मश्लाघा तथा चापलूसी को भी हेय समझते थे। इस दोहे में उपदेश के साथ आत्मश्लाघा को निंद्य कहा है—

बड़े बड़ाई नहिं करैं बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल॥

ओछे ही अपनी प्रशंसा आप करते हैं। जो महान हैं वे कभी ऐसा कार्य नहीं करते, प्रत्युत निन्दनीय समझते हैं।

ये रहीम फीके दुओं, जानि महासंतापु।
ज्यों तिय कुच आपुन गहै, आप बड़ाई आपु॥

चापलूसी के विषय में आपने स्पष्ट ही लिखा है कि लोग स्वार्थ ही के लिये बड़ों के छोटे से काम को बढ़ाकर वर्णन करते हैं और उससे बहुत बढ़कर काम करने वाले का उल्लेख मात्र भी नहीं करते। जिस पर्वत-शृंग को लेकर हनुमान जी हिमालय से लंका को गये थे, उसका एक टुकड़ा मार्ग में टूट कर वृन्दावन में गिर गया था और गोवर्धन पर्वत कहलाया था। इसी गोवर्धन पर्वत को श्रीकृष्ण भगवान ने उठाकर गोप-गोपियों की मेघ-वर्षा से रक्षा की थी और गिरिधारी कहलाये थे। इसी कथानक को लेकर रहीम कहते हैं कि—

ओछे किये बड़ेन की बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को गिरिधर कहै न कोय॥

सत्य ही, क्यों कहें? हनुमान जी सेवक हैं, उनसे कहीं अधिक उनके सेव्य स्वामी से प्राप्त हो सकता है, तब स्वामी ही की प्रशंसा क्यों न की जाय?

दानशीलता

दान शब्द से दो पक्ष का ज्ञान होता है—एक ओर याचना का और दूसरी ओर देने का। रहीम ने दोनों ही पक्ष के लिये अपनी सम्मति दी है। वे भीख माँगने को नितांत निंदनीय समझते हैं, पर किसके लिये? उसके लिये जो बिना माँगे भी अपना काम चला सकता है। जैसे—

रहिमन माँगत बड़ेन की लघुता होत अनूप ।
बलि-मख माँगन हरि गये धरि बावन को रूप ॥

इसी बात को यही कथानक लिये हुये कई प्रकार से कहा है। इसके विपरीत जिन बेचारों को उद्योग करने पर भी याचना ही का आधार रह जाना है, तो उनके विषय में आपका यही कहना है कि—

कोउ रहीम जनि काहु के द्वार गये पछिताय ।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय ॥

आपका यह कहना भी अनुभव पूर्ण है और सब काल के लिये समानरूपेण लागू है कि—

संपति संपतिवान् को सब कोऊ बसु देत ।
दीनबंधु बिनु दीन की को रहीम सुधि लेत ॥

साधारणत: देखने में आता है कि मोटे मोटे अमीर पाधा, पंडा, साधू, बाबाओं को, जो सरस्वती के शत्रु हैं, लोग खूब पूजते हैं और यथार्थत: योग्य पात्र के सामने आने तथा पात्रता समझने पर भी उसकी इच्छा पूर्ण करना अनुचित समझते हैं। नवाब खानखानाँ की दानशीलता का परिचय तो उनकी जीवनी में बराबर मिलेगा। ऐसे दानी पर भी विपत्ति पड़ती है और सब प्रकार के कष्ट उठाने को उसका हृदय दृढ़ रहता है, पर विपत्ति के मारे याचक को लौटाना उसे मरण-कष्ट से भी बढ़कर शोक पहुँचाता है।

तब ही लों जीबो भलो दीबो होय न धीम ।
जग में रहिबो कुचित गति उचित न होय रहीम ॥

इसी प्रकार एक बार रहीम पर जहाँगीर के समय विपत्ति आई थी और इन्हीं के एक दोहे के अनुसार याचकों ने इन्हीं को आ घेरा। इस पर इन्होंने किसी नरेश को एक दोहा लिखकर

भेजा और उनसे प्राप्त हुये एक लक्ष मुद्रा से इन्होंने याचकों की इच्छा पूर्ति की। दोनों दोहे इस प्रकार हैं—

रहिमन दानि दरिद्रतर तऊ जाँचिबे योग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुँआ खनावत लोग॥
चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध-नरेश।
जा पर बिपदा पड़त है सो आवत यहि देश॥

दानशक्ति होते हुए न देना भी एक पक्ष है, जिस पर 'रहीम' ने लिखा है कि—

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं॥

याचना तो बुरी ही है, भले आदमी को मृत्यु से बढ़ कर कष्ट-कर है पर ऐसे याचकों का तिरस्कार करना उससे भी बढ़ कर है। जिन मनुष्यों का भीख माँगना व्यापार है, उनके लिये रहीम ने नहीं लिखा है और न उनके ही लिये जिनमें दानशक्ति नहीं है। नवाब खानखानाँ के दानों का वृत्तान्त पढ़ कर निम्नलिखित दोहे का पढ़ लेना भी आज कल के दाताओं के लिये उपदेशमय होगा।

देनहार कोउ और है भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरैं याते नीचे नैन।

रहीम की नीति

रहीम के सम्राट् अभिभावक अकबर की नीति आरम्भ से अन्त तक राज्यविस्तार करने की रही। पानीपत के द्वितीय युद्ध के समय अकबर के पास दिल्ली तथा आगरे के बीच का प्रांत मात्र था, पर उसकी मृत्यु के समय वह छोटा सा राज्य एक वृहत्काय साम्राज्य में फैल गया, जिसकी सीमा पूर्व-पश्चिम हिरात से लेकर ब्रह्मपुत्र नदी तक और दक्षिणोत्तर काश्मीर के उत्तुंग शिखरों से लेकर गोदावरी नदी तक थी। अकबर की राज्य-लिप्सा

या राज्य-तृष्णा वृद्धता बढ़ने के साथ साथ बढ़ती ही गई और केवल मृत्यु ही उसका अंत कर सकी।

रहीम के पिता तथा अकबर के अभिभावक बैराम खाँ खानखानाँ भी इसी नीति के पोषक थे और यही उन्होंने अपने शिष्य को सिखलाया था। इन दोनों ही की राज्यविस्तारक नीति में कुछ यह भी खूबी थी कि वे पुराने राज्यों को यथासाध्य हड़प जाने ही की इच्छा रखते थे और केवल जब ऐसा करने में किसी प्रकार की विशेष अड़चन देखते तभी उसे अधीनस्थ राज्य बना लेते थे। रहीम अकबर के संस्थापित इसी राज्य के एक कर्णधार, वज़ीर, भारी मंसबदार तथा सेनापति थे, पर इनकी नीति सर्वदा यही रही कि किसी राज्य का अंत न कर उसे सम्राट् की छत्रच्छाया में फलने फूलने का अवसर दिया जाय। वे कहते हैं कि—

रहिमन राज सराहिये ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है तपै तरैयन खोय॥

कहावत है कि एक कम्मल में दो साधु अपना निर्वाह कर सकते हैं, पर एक राज्य में भी दो राजे अपना कालयापन नहीं कर सकते। सत्य ही एक मियान में दो तलवारें नहीं रखी जा सकतीं क्योंकि दोनों ही लौहनिर्मित हैं। जो सूर्य के समान तप रहा है उसकी ओर कोई देखता भी नहीं, देखकर अपना दीदा क्यों फोड़े, पर चन्द्र-ज्योत्स्ना को सभी कितने प्रेम, प्रसन्नता तथा आनन्द से देखते हैं और उसकी शोभा पर मुग्ध होते हैं। साथ ही रहीम अकर्मण्यता भी नहीं सिखलाते।

संगति का फल

अंग्रेज़ी की एक कहावत है कि जिस का जैसा संग साथ रहता है वैसा ही लोग उसे समझते हैं। 'तुख़्म तासीर सुहबत असर' भी ऐसी ही कुछ एक मसल है। तात्पर्य यह कि सत् या

असत् जैसा संग रहेगा वैसा ही उसका फल भी होगा। सत्संग का अच्छे तथा बुरे मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है या नहीं और यदि पड़ता है तो कैसा पड़ता है? इसी प्रकार कुसंग के विषय में कई पक्ष हो सकते हैं। रहीम ने इन सब पर अपने अनुभव के अनुसार प्रकाश डाला है। पहिले तो कुसग करना ही नहीं चाहिए, यह बार बार इन्होंने कहा है। दो तीन दोहे लीजिए—

बसि कुसंग चाहत कुशल यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की रावन बस्यो परोस॥
रहिमन उजली प्रकृति को नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग॥
ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरे पै कारो लगै॥

'ओछे को सतसग' कैसी मीठी चुटकी है। साथ ही ओछे पुरुप के प्रसन्न होने या क्रुद्ध होने पर दोनों ही हालतों में उसका साथ हानिकारक है। उपमा भी कैसी अच्छी खोज निकाली है। कोयला जब ठंढा है तब तक कालिख तो अवश्य ही पोतता है अर्थात् दुष्ट के साथ रहने से दुष्ट तो बनना ही पड़ता है और यदि कोयला तप्त है तो छूते ही तत्काल संसर्ग का फल मिलेगा अर्थात् दुष्ट अपनी दुष्टता का तुरत परिचय देगा। इस प्रकार कुसंग न करने का उपदेश देकर कहा है कि यदि दुष्ट जन सुपुरुप को घेरे भी रहें तो उस पर उनका कुछ भी असर नहीं पड़ता और उसी प्रकार विशेपतः दुष्टों पर भी सत्पुरुप का प्रभाव नहीं पड़ता।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियतहू, साँप सहज धरि खाय॥

अनुभव

इनकी जीवनी पढ़ने ही से ज्ञात हो जाता है कि संसार के सभी प्रकार के दुःख सुख आदि का इनका अनुभव कितना बढ़ा चढ़ा हुआ रहा होगा। इसी अनुभव के फल स्वरूप अंत में इन्होंने कहा ही है कि—

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥

कहावत भी है कि 'घी खाना शक्कर से दुनिया चलाना मक्कर से' पर मक्कर से ईश्वर का मिलना ही सभव नहीं है। यह इनके अनुभव का सार है और यही कारण है संसार विरक्त ईश्वर के प्रेमी उसे एकांत में बैठ कर खोजते हैं। ऐसे साधुओं की जमाति नहीं चलती। इसी लिए रहीम लोगों को उपदेश देते हैं कि—

धन दारा अरु सुतन सों, लगो रहै नित चित्त।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त॥

उनका आशय यह नहीं है कि इन लोगों को छोड़ कर संसार से विरक्त हो वनचर हो जाय, पर उनका यही तात्पर्य है कि सांसारिक कार्य चलाते हुए यथाशक्ति अपना मन स्त्री पुत्रादि से हटाए हुए ईश्वर की ओर लगाए रहे। मनुष्य में अपने बन्धुओं के प्रति विरक्तिभाव, प्रायः देखा जाता है कि, तभी उत्पन्न होता है जब वे अवसर पर उसके काम नहीं आते।

सब को सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिये, जब कछु अटकै काम॥

कहीं कहीं सत्य बातें बड़ी सरल रीति से कह डाली गई हैं जो संसार को ऐसी पसन्द आई कि वे कहावत के रूप में लोगों के मुँह पर सदा रहा करती हैं। इनमें काव्य-नैपुण्य कम हो, भाष-सौन्दर्य उच्चकोटि का न हो, पर जो है वह उसी प्रकार सर्वप्रिय है।

छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उत्पात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥
काज परै कछु और है, काज सरै कछु और।
रहिमन भँवरी के भये, नदी सिरावत मौर॥
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जात।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय।
रहिमन तीन प्रकार तें, हित अनहित पहिचानि।
परबस परे परोस बस, परे मामिला जानि॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि॥

यदि अपने कोई मित्र, बंधु किसी कारण वश अपने से उदासीन हो जायँ तो उन्हें बार बार प्रयत्न करके अपने प्रति उनकी उदासीनता दूर करना चाहिए। पर ध्यान रहे कि ऐसे भाई बंधु मित्र दोस्त सुजन हों तभी ऐसा करना चाहिये। दुष्ट से तो दूर रहना ही चाहिए और यदि सौभाग्य से वह आप ही दूर हो जाय तो ईश्वर को इस अनचाही सहायता के लिये धन्यवाद देना चाहिये। रहीम ने इसी बात को दृष्टान्त से पुष्ट करते हुये इस प्रकार कहा है—

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार॥

आँख

शरीर रूपी राज्य का राजा मन है, यह काव्य-जगत को पूर्णतया परिचत है और नेत्र इसी के प्रधान अमात्य हैं। यह कहना भी लोक-ज्ञान-सम्मत है कि राजा के पास पहुँचने वाले को इन्हीं दीवान साहब ही की सेवा में पहिले जाना होता है। यदि ये प्रसन्न हो गये तो राजा साहब को अपना ही समझिये,

दीवान की सहायता से उन्हें दीवाना तक कर सकते हैं। कवि कहता है कि—

मन सो कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान॥

आँखों की उपमा कविगण कमल से देते हैं, मीन से देते हैं। ये दोनों ही जल में होते हैं और प्रधान जलाशय सागर खारा है। इसी खारेपन के संयोग से कवियों ने जब अधर की मिठास का वर्णन किया है तब नेत्रों के सलोनेपन ही का वर्णनकरते हैं। इन्हीं दो बातों को लेकर रहीम ने एक अनूठी उक्ति सहज मानव-प्रकृति के उल्लेख से परिपुष्ट करते हुए कह डाली है—

नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन॥

अब ये नेत्र इसी कवि के अनुसार कैसे होने चाहियें सो सुनिये—

तरल तरंनि सी हैं तीर सी नोकदारैं।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारैं॥
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखें।
बिलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखें।

इन दृगों की दुष्टता पर भी कवि की दृष्टि गई है। वह कहता है कि ये इतने दुष्ट हैं कि इनके साथ रहने वालों को भी इनकी दुष्टता का फल मिलता है। ये अपनी चंचलता छोड़ेंगे ही नहीं, चाहे पास वाले लुटें पिटें या नोचे वकोटे जाँय। इसीलिये कवि जी कुसंग के कुफल पर बहुत कुछ कह गये हैं। नेत्र ऐसे दुष्ट हैं कि इनसे दूर रहने वाले विरक्त गण भी इन्हीं के भाई बंद के कारण इनके फेर में फँस जाते हैं।

कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं॥

कहि रहीम जग मारियो, नैन-बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन कमल की ओट ॥

जल से उत्पन्न वस्तुओं तथा अग्नि खाने वाले खंजन से उपमित ये नेत्र भी उलटा कार्य करते हैं। देखिये—

गये हेरि हरि सजनी बिहँसि कछूक।
तब ते लगनि अगनि की उठत भभूक ॥

कवि का नाम है 'रहीम' (दयावान) पर आप आँखों के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। सुनिये नेत्रों की कुछ और बुराई सुनिये। शान देकर तेज किये हुये ये नुकीले नेत्र विष के बुझाये हुये हैं, हृदय में स्नान कर, डुबकियाँ लगा लगा कर लाल हो स्वयं निकल आते हैं। पर जिसके हृदय बेध कर चले आते हैं वही बेचारा उसे समझ सकता है। 'बौरी बाँझ न जाने ब्यावर पीर'। देखिये—

अति अनियारे मनो सान दै सुधारे,
महा बिष के बिषारे ये करत परघात हैं।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै,
साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं ॥
बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भये,
तो हू तो 'रहीम' थोड़े बिधि ना सकात हैं।
घाइक घनेरे दुखदाइक हैं मेरे नित,
नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं ॥१॥

कवि ने अपने नाम के अनुसार आँखों के साथ समवेदना भी प्रकट की है तथा उनके दुःख पर दुःख प्रकट किया है। पहिले ये नेत्र प्रेम लगाना सहज समझते हैं, न जाने किससे प्रेम लगाना सीख लेते हैं। प्रेमांकुर जम जाने पर प्रिय को देखने के लिये उत्कंठित होते हैं, पर भाग्य से उसके सामने आ जाने पर भी

लोक लज्जा उन्हें धर दबाती है, जिससे उन्हें मरण कष्ट होता है। सुनिये—

कौन धौं सीख रहीम इहाँ इन नैन अनोखिये नेह की नाँधनि।
प्यारे सों पुन्यन भेंट भई यह लोक की लाज बड़ी अपराधनि॥
श्याम सुधानिधि आनन कों मरिये सखि सूधे चितैबे की साधनि।
ओट भये रहते न बनै कहते न बनै बिरहानल बाधनि॥

भाषा तथा सौष्ठव

रहीम की कविता पढ़ने से 'भाव अनूठो चाहिये भाषा कैसिहु होय' का स्पष्टीकरण विशेष रूप से होता है। एक। साहित्य-मर्मज्ञ गोस्वामी तुलसीदास और गंग को सुकवियों का सर्दार मानने का कारण इस प्रकार देते हैं—

जिनकी कविता में मिली भाषा विविध प्रकार॥

अब यह देखना है कि हिन्दी-साहित्य की काव्य-भाषा की कितनी प्रधान शाखाएँ हैं और उनमें किन किन का प्रयोग रहीम की कविता में हुआ है। सौर काल के पूर्व रासो आदि ग्रन्थों के कारण हिन्दी-साहित्य में राजपुतानी या डिंगल भाषा की प्रधानता थी, पर उस काल में तथा उसके अनन्तर बराबर ब्रज-भाषा तथा अवधी की प्रधानता बढ़ती गई और अब तक वह दिखलाई पड़ रही है। हाँ, कुछ दिनों से अब खड़ी बोली अर्थात् बोल-चाल की भाषा का कविता में विशेष प्रयोग होने लगा है। चारणों के वीर-गाथा-काल में राजपूतों की वीरता का वर्णन विशेषतः राजपुतानी या डिंगल भाषा में होता रहा था और उसके समाप्त होने पर अर्थात् भारत में मुसलमानों के आधिपत्य के जम जाने पर भारतीय वीरों के इतस्ततः कभी दर्शन हो जाते थे, इसलिये कविता के लिये वीर नायकों की प्राप्ति की निराशा ने कवियों को उस पथ की ओर फेरा जिसे भक्ति-पथ या प्रेम-पथ कहा जाता है। निराशा

मनुष्य को परमाशा रूपी परमेश्वर की ओर ले जाती है। रामानुज, वल्लभाचार्य आदि महानुभावों ने जिस भक्ति रस का अविरल स्रोत तैयार किया था उससे कितने सागर, मानस आदि भर गये, ताल तलैयों की गिनती ही नहीं। इस आशा के आदर्श रूप कृष्ण और राम हुए तथा उनकी जन्मभूमि की भाषा के अनुसार काव्य भाषा की दो विरल धाराएँ बह चलीं। कृष्ण-भक्ति-पूर्ण कविता ब्रज-भाषा में और राम-भक्ति-पूर्ण कविता अवधी-भाषा में प्रस्फुटित हो चली। फारसी के सूफ़ी मत के भावों से पूर्ण मसनवियों (प्रेमगाथाओं) की चाल पर कुतबन, जायसी आदि मुसलमान कवियों ने प्रेम-पथ के सुन्दर वर्णन से साहित्य-प्रेमियों का मन आकर्षित किया। इनकी भाषा तथा छंद का आदर्श विशेषतः मानस रहा है। अब आधुनिक काल में खड़ी बोली की प्रधानता बढ रही है। यह उचित तथा समयानुकूल है, जब कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होने जा रही है। हिन्दी काव्य भाषा पर इस निबंध के लिये इतना ही अलम् है। अब देखना है कि 'रहीम' की कविता में ये सब मिलती हैं या नहीं।

वीर गाथा-काल समाप्त हो चुका था, सुप्रसिद्ध अकबर दिल्ली के तख़्त पर सुशोभित था और सौर-काल जगमगा रहा था। ऐसे समय डिंगल भाषा की कविता की क्या आवश्यकता थी, पर विभिन्नता-प्रिय 'रहीम' के लिये दो एक अवसर आ ही गया। प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप की वीरता पर अकबर, रहीम आदि सच्चे वीर शत्रु भी मुग्ध थे और ख़ानख़ानाँ तो उन्हें अपना मित्र ही समझते थे। महाराणा अमरसिंह ने मुग़लों की अनेकों चढ़ाइयों को विफल कर दिया था, पर नित्य की लड़ाई से अपने छोटे से राज्य की दुर्दशा देखकर घबड़ा उठे और अपने पिता के मित्र राजनीति-कुशल ख़ानख़ानाँ से सम्मति माँगी, जिसके उत्तर में ख़ानख़ानाँ ने लिखा था—

धर रहसी रहसी धरम खप जासी खुरसाण।
अमर विशंभर ऊपरे राखो नहचो राण॥

इससे इनकी दूरदर्शिता और धर्म-प्रियता भी ज्ञात होती है। वास्तव में 'खुरसाण' साम्राज्य खप गया, पर महाराणा अमरसिंह का राजवंश अभी तक वर्तमान है और उनका राज्य भी ज्यों का त्यों ही बना हुआ है।

रहीम के दोहे, सवैये, कवित्त, छप्पय आदि ब्रजभाषा में हैं, जिनके उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। इनके सभी बरवै अवधी भाषा में हैं। इनकी कविता में इन्हीं दोनों काव्य-भाषाओं का आधिक्य है। खड़ी बोली की कविता भी इन्होंने की है। मदनाष्टक खड़ी बोली में है, जिसमें शुद्ध संस्कृत, फ़ारसी तथा बोलचाल के शब्दों का प्रयोग है। जैसे—

जरद बसन वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुतियुत चपला से कुंडलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै झूमते थे॥

इस प्रकार देखा जाता है कि हिन्दी-काव्य-भाषा की चारों प्रधान शाखाओं में इन्होंने कविता की है। इसके अतिरिक्त संस्कृत, तुर्की, फारसी, पश्तो आदि कई भाषाओं के यह अच्छे ज्ञाता थे। अपने समय के प्रसिद्ध भाषाविदों के यह अग्रणी थे। इस भाषा-ज्ञान ने इनके वैचित्र्य-प्रिय हृदय को कई भाषा मिश्रित कविता करने को बाध्य किया है। यहाँ तक कि एक श्लोक में इन्होंने आठ दस भाषाओं का मेल किया है। वह छंद इस प्रकार है—

भर्ता प्राची गतो मे बहुरि न बगदे शूँ करूँ रे हवे हूँ,
संο प्राο गुο

माँझी कर्माचि गोष्ठी अब पुन शुर्णसि गाँठ धेलो न ईठे ॥
म० मा० रा०

म्हारी तीरा सुनोरा० ख़र्च बहुत है ईहगा टाबरा रो,
रा० ख० पं०

दिट्ठी टैंडी दिलों दी इश्क इल फ़िदा ओ डिपो बच्च नाहू ॥
पं० फा० नै०

'खेट-कौतुक-जातम्' ग्रन्थ में भी संस्कृत-फ़ारसी मिश्रित तथा संस्कृत-हिन्दी-फ़ारसी मिश्रित कविता की है जैसे—

यदा मुश्तरी केन्द्रखाने त्रिकोणे,
यदा वक्तखाने रिपौ आफताबः।
अतारिद् विलग्ने नरो बख़्तपूर्णः,
तदा दीनदारोऽथवा बादशाहः ॥

इतनी भाषाओं का उपयोग होने पर भी इनकी कविता की भाषा सर्वत्र सरल और सुसङ्गठित है। माधुर्य और प्रसाद गुण प्रचुरता से पाए जाते हैं। भाषा पर इनका कहाँ तक अधिकार था यह इनके किसी एक पद को पढ़ने ही से स्पष्ट ज्ञात हो जायगा। भाव को पूर्णतया प्रकट करने की सामर्थ्य अच्छी भाषा की प्रधान कसौटी है, पर साथ ही यह भी है कि पाठक भी उसे सहज में समझ ले, कवि का अभिप्राय उसके लिए सहज ही समझ में आने योग्य हो। इसके साथ यह भी गुण होना वांछनीय है कि थोड़े शब्दों में अधिक अर्थ भरा हो। यह दुर्गुण है कि बहुत कुछ बक जाने पर मतलब की बात थोड़ी सी निकले। सुकवियों के एक एक शब्द में सारे काव्य सागर का कभी कभी आस्वादन मिल जाता है, जो उनका वैदग्ध्यपूर्ण प्रयोग मात्र है। भाषा में कृत्रिमता लाने वाले कविगण की रचनाएँ भी मानव-प्रकृति के लिए अस्वाभाविक रहेंगी और उनका कभी भी लोक में प्रचार न होगा।

भाषा में वह गुण रहना आवश्यक है जिसे उर्दू में जिंद: दिली (सजीवता) कहते हैं। यह सब प्रकार के बंधन से मुक्त नैसर्गिक विचारों का प्रस्फुटन है, जिसमें सारल्य, चंचलता तथा सौकुमार्य सभी का सम्मिलन है। इससे उस भाषा के पढ़ने वाले पर अच्छा असर पड़ता है। भाषा कवि की अनुवर्तिनी होनी चाहिये। जिस समय उसके हृदय में करुण रस पूर्ण भाव का उद्रेक हो, उस समय उसको तथा जब रौद्र रस पूर्ण भाव उमड़े तब उसको प्रकट करने की उस भाषा में सामर्थ्य रहना चाहिये। काव्य-कौशल दिखलाते हुए भी भाषा के स्वच्छंद प्रवाह में वाधा न डालनी चाहिये, नहीं तो कलकल निनादिनी धारा खड़खड़ाहट से ही कान फोड़ने लगेगी। कविता-कामिनी को अलंकारों से सजाना ही प्रत्येक सहृदय कवि का ध्येय होना चाहिए, उसे अलंकारों का भारी पिटारा ढोने वाली नहीं। कविगण अवश्य ही निरंकुश होते हैं और होना भी चाहिए, पर यह तभी तक गुण में परिगणित हो सकता है जब तक भाषा के सौष्ठव को बनाए रखता है। विशेष व्याख्या न करते हुये कुछ अवतरण नीचे दे दिए जाते हैं।

जाति हुती सखि गोहन में मन मोहन को लखि कै ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नँदलाल को रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरिकै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक में फिर तीर सों मारि लैजात निसानो॥
पुतरी अतुरीन कहूँ मिलि कै लगि लागि गयो कहुँ काहु करैटो।
हिरदै दहिबै सहिबै ही को है कहिबै को कहा कछु है गहि फेटो॥
सूधे चितै तन हाहा करें हू 'रहीम' इतो दुख जात क्यों मेटो।
ऐसे कठोर सों औ चितचोर सों कौन सी हाय घरी भइ भेंटो॥

रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधों शालिग्राम, रूपे के अरघा धरे॥

प्रौढ़ा लक्षण

निज पति सों रस केलि की, सकल कलानि प्रवीन।
तासों प्रौढ़ा कहत हैं, जे कविता रस लीन॥ (मति०)

उदाहरण

भोरहिं बोल कोइलिया, बढ़वत ताप।
घरी एक भरि अलिआ, रहु चुप चाप॥
सीस नवाइ नवेलिया, निचवा जोइ।
छिति खनि छोर छिगुनिआ, सुसुकन रोइ॥४४॥
पिय-मूरति चितसरिया, देखत बाल।
बितवत औंध बसरवा, जपि जपि माल॥

उपसंहार

प्रायः छ वर्ष के ऊपर हुए कि 'रहीम' कवि कृत रचनाओं का एक संग्रह रहिमन विलास के नाम से सम्पादित कर साहित्य सेवा-सदन काशी द्वारा प्रकाशित कराया था। उस समय वही संग्रह सब से बड़ा और टिप्पणी आदि संयुक्त होने से अधिक उपयोगी समझा गया था। खोज ने इस बीच रहीम की बहुत सी अन्य कविताएँ ढूँढ निकाली और इधर उधर इन कविताओं के अनेक संग्रह भी निकल चुके। अपने प्रथम प्रयास को 'अपटूडेट' करने की मैं भी कोशिश करता रहता था, जिसके फल स्वरूप यह संस्करण आज पाठकों के सम्मुख उपस्थित है।

नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ मुग़ल साम्राज्य के अग्रगण्य सर्दारों में से थे तथा अकबरी नवरत्न के बहुमूल्य मणि थे। उसी प्रकार यह हिन्दी कविरत्नमाला के भी एक अमूल्य मणि हैं। इस संस्करण में खानखानाँ की जीवनी कुछ विस्तृत कर दी गई है, जिससे लगभग साठ वर्ष के इनके सांसारिक अनुभवों का कुछ चित्रण हो जाता है, जो इनकी कविता में जगह जगह

प्रदर्शित होता है। इस जीवनी से उन सज्जनों को भी कुछ उपदेश मिल सकता है, जो समय के अभाव ही के लिए भीखते रहते हैं। वे देखेंगे कि एक बृहत् साम्राज्य के वकील-मुतलक़ होकर तथा अशांतिमय प्रांतों के अध्यक्ष होकर वहाँ लड़ते झगड़ते और शान्ति स्थापित करते हुए भी इन उद्योगी पुरुष ने साहित्य की कितनी सेवा की है। सांसारिक वैभव तथा सुखों की अनस्थिरता भी दर्शनीय है। अकबर इन्हें पुत्र से भी बढ़कर मानता था और जहाँगीर इन्हें गाली देने तथा इनके पुत्र को प्राणदण्ड देने में भी न हिचका। इस संस्करण में संक्षिप्त आलोचना-खंड भी जोड़ दिया गया है जिससे इनकी रचनाओं का कुछ मर्म विशेष रूप से खुल गया है। इनकी कविता तथा चरित्र में कहाँ तक सामञ्जस्य है और वह कहां तक स्वानुभूति का फल है, यह भी प्रस्फुटित हो जाता है। चित्र वही है जो जोधपुर के राज्य की चित्रशाला में मुं० देवीप्रसाद जी की कृपा से प्राप्त हुआ था।

पहिले संस्करण में जो टिप्पणी दी गई थी वह कम थी और कई दोहों के अर्थ तो स्वयं न समझ सकने के कारण नहीं से दिए गए थे। अनेक सज्जनों तथा विद्वानों ने कुछ दोहों के बारे में पूछ-ताछ भी की थी, इससे इस बार टिप्पणियों को भी बढ़ाया गया है और यथासाध्य सभी के अर्थ खोलने का पूरा प्रयत्न किया गया है। पाठांतर पाद टिप्पणियों में दिए गए हैं। इस संस्करण को सुचारु रूप से निकालने का श्रेय प्रकाशक महोदय को है, जो हिन्दी जगत में प्रसिद्ध हैं। आशा है कि पाठकगण इस संस्करण को भी देखकर त्रुटियों से सूचित कर मुझे अनुगृहीत करेंगे।

मार्गशीर्ष पूर्णिमा
सं० १९८६

ब्रजरत्न दास

द्वितीय संस्करण की भूमिका

इसका प्रथम संस्करण सं० १९८६ में प्रकाशित हुआ था। ईश्वरेच्छा से अब वह समाप्त हो गया और उसके द्वितीय संस्करण का अवसर आ गया। इस बीच रहीम की कविता के विषय में कोई नया प्रकाश नहीं पड़ा है और न कोई नई कविता ही प्राप्त हुई है, इसलिए यह संस्करण प्रायः उसी रूप में प्रकाशित हो रहा है।

रंगभरी एकादशी
सं० २००४

विनीत

संकलन तथा संपादन-सामग्री

१—रहिमन-शतक—सं० पं० रामलाल दीक्षित, हिंदी प्रभा प्रेस लखीमपुर द्वारा सन् १८९८ ई० में प्रकाशित।

२—रहिमन शतक—सं० पं० सूर्यनारायण दीक्षित।

३— ,, —सं० लाला भगवानदीन।

४— ,, —प्र० ज्ञानभास्कर प्रेस बाराबंकी।

५— ,, —प्र० शारदा प्रेस कानपुर।

६— ,, —प्र० बंबई भूषण यंत्रालय, मथुरा।

७—रहीम रत्नाकर—सं० पं० उमरावसिंह त्रिपाठी।

८—रहिमन-विलास—बा० राधाकृष्णदास रचित दोहों पर कुंडलियाँ।

९—रहीम की दोहावली—मिश्रबंधु की हस्तलिखित प्रति।

१०—रहीम—सं० पं० रामनरेश त्रिपाठी।

११—भड़ौआ—सं० पं० नकछेदी तिवारी।

१२—बरवै नायिका भेद— ,,

१३—विजय हज़ारा—मौ० अबुलहक़, संकलनकर्त्ता।

१४—रहीम कवितावली—सं० पं० सुरेंद्रनाथ तिवारी।

१५—रहिमन चन्द्रिका—सं० पं० रामनाथलाल सुमन।

१६—कविता-कौमुदी, भाग १—सं० पं० रामनरेश त्रिपाठी।

१७—बरवै नायिका भेद—सं० पं० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल० एल० बी०।

१८—रहीम रत्नावली—सं० पं० मायाशंकर याज्ञिक बी० ए०।

१९—शिवसिंह सरोज—सं० शिवसिंह सेंगर।

२०—भक्तमाल—नाभादास और प्रियादास।
२१—खानखानाँ नामा—मुं० देवीप्रसाद जोधपुर।
२२—खेटकौतुकम्—'रहीम' कृत प्र० वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।
२३—मिश्रबन्धु विनोद—मिश्रबन्धु-त्रय।
२४—हिंदी शब्दसागर की भूमिका—ले० पं० रामचन्द्र शुक्ल।
२५—तुलसी ग्रंथावली भाग० ३—प्र० काशी नागरी प्रचारिणी सभा।
२६—मतिराम ग्रन्थावली—सं० पं० कृष्णबिहारी मिश्र।
२७—समालोचक—भा० १ अं० २।
२८—माधुरी—व० ३ खं० २ सं २: व० ६ खं० २ सं० ६।
२९—मनोरमा—मई १९२५ और व०३ भा० १ पृ० ४।
३०—विविध संग्रह—सं० मलसीर ठाकुर भूरिसिंह।
३१—सम्मेलन पत्रिका भा० १२ अं० १ और २।
३२—मआसिरुल् उमरा—नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ।
३३—सुभाषितरत्नभांडागारम्।

रहिमन विलास

दोहावली

मंगलाचरण

तैं [1] रहीम मन आपुनो, कीन्हों चारु चकोर ।
निसि बासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥१॥

दोहा

अच्युत-चरण-तरंगिणी, शिव-सिर-मालति-माल ।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजो इंदव-भाल ॥२॥
अधम बचन काको फल्यो, बैठि ताड़ की छाँह ।
रहिमन काम न आइहैं, ये नीरस जग माँह ॥३॥
अनकीन्ही बातैं करै, सोवत जागै जोय ।
ताहि सिखाय जगायबो,[2] रहिमन उचित न होय ॥४॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर ।
ज्यों ससि के संजोग तें, पचवत आगि चकोर ॥५॥
अनुचित बचन न मानिए, जदपि गुराइसु गाढ़ि ।
है रहीम रघुनाथ तें, सुजस भरत को बाढ़ि ॥६॥
अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥७॥

पाठान्तर १—जिहि ।

पाठान्तर २—जानि अनेती जो करै जागत ही रह सोय ।
ताहि जगाय बुझायबो ॥

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥८॥

अमृत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस ।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥९॥

अरज गरज मानैं नहीं, रहिमन ए जन चारि ।
रिनियाँ, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि ॥१०॥

असमय परे रहीम कहि, माँगि जात तजि लाज ।
ज्यों लछमन माँगन गये, पारासर के नाज ॥११॥

आदर घटे नरेस ढिग, बसे रहे कछु नाहिं ।
जो रहीम कोटिन मिले, धिग जीवन जग माहिं ॥१२॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल [1] ।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़[2] बबूल ॥१३॥

आवत काज रहीम कहि, गाढ़े बंधु सनेह ।
जीरन होत न पेड़ ज्यौं, थामे बरै बरेह ॥१४॥

उरग, तुरँग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथियार ।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार ॥१५॥

ऊगत जाही किरन सों, अथवत ताही काँति ।
त्यौं रहीम सुख दुख सबै, बढ़त एक ही भाँति ॥१६॥

एक उदर दो चोंच है, पंछी एक कुरंड ।
कहि रहीम कैसे जिये, जुदे जुदे दो पिंड ॥१७॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
रहिमन मूलहिं सींचिबो[3], फूलै फलै अघाय ॥१८॥

पाठान्तर १—छाया दल फल मूल । २—कूर ।
पाठा० ३—जो तू सींचै मूल को ।

ए रहीम दर दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िये, वे रहीम अब नाहिं ॥ १९ ॥

ओछो[1] काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहै न कोय ॥ २० ॥

अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय ॥२१॥

अंड न बौड़ रहीम कहि, देखि सचिक्कन पान।
हस्ती-ढक्का, कुल्हड़िन, सहैं ते तरुवर आन ॥ २२ ॥

अंतर दाव लगी रहै, धुआँ न प्रगटै सोय।
कै जिय जाने आपुनो, कै जा सिर बीती होय ॥ २३ ॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥ २४ ॥

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होय ॥ २५ ॥

कमला थिर न रहीम कहि, लखत अधम जे कोय।
प्रभु की सो अपनी कहै, क्यों न फजीहत होय ॥ २६ ॥

करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन[2] हजूर।
मानहु टेरत बिटप चढ़ि, मोहि समान को कूर[3] ॥ २७ ॥

करम हीन रहिमन लखो, धँसो बड़े घर चोर।
चिंतत ही बड़ लाभ के, जागत ह्वैगो भोर ॥ २८ ॥

पाठान्तर १—आछो।

(२४) इसी भाव का सूर का एक दोहा यों है—

सीप गयो मुकता भयो, कदली भयो कपूर।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति को फल सूर ॥

पाठा० २—गुनी। ३—यहि प्रकार हम कूर।

कहि रहीम इक दीप तें, प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग दीपक जरु दोय॥ २९॥
कहि रहीम धन[1] बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात॥ ३०॥
कहि रहीम या जगत तें, प्रीति गई दै टेर।
रहि रहीम नर नीच में, स्वारथ स्वारथ हेर॥ ३१॥
कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे, ते ही साँचे मीत॥ ३२॥

कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय॥ ३३॥
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥ ३४॥
कहु रहीम कैसे बनै, अनहोनी ह्वै जाय।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय॥ ३५॥

कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत बाय॥ ३६॥
काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर॥ ३७॥
काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ॥ ३८॥
काह करौं बैकुंठ लै, कल्प बृच्छ की छाँह।
रहिमन दाख सुहावनो, जो गल पीतम बाँह॥ ३९॥

पाठा० १—निधि।

(२९) यह अहमद के नाम सरोज आदि कई ग्रंथों में मिलता है।

एक दीप तें गेह को, प्रगट सबै दुति होय।
मन को नेह कहाँ छिपै, दृग दीपक जहँ दोय॥

काह कामरी पामरी, जाड़ गए से काज ।
रहिमन भूख बुताइए, कैस्यो मिलै अनाज ॥ ४० ॥
कुटिलन संग रहीम कहि, साधू बचत नाहिं ।
ज्यों नैना सैना करें, उरज उमेठे जाहिं ॥ ४१ ॥
कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर ।
रहिमन बसि सागर विषे, करत मगर सों बैर ॥ ४२ ॥
कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गये पछिताय ।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय ॥ ४३ ॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि[1], गंग नाम भो धीम ।
केहि की प्रभुता नहिं घटी[2], पर घर गये रहीम ॥ ४४ ॥
खरच बढ़्यो, उद्यम घट्यो, नृपति निठुर मन कीन ।
कहु रहीम कैसे जिए, थोरे जल की मीन ॥ ४५ ॥
खीरा सिर तें काटिए, मलियत[3] नमक बनाय ।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय ॥ ४६ ॥
खैंचि चढ़नि, ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।
आज काल मोहन गही, बंस दिया की रीति ॥ ४७ ॥
खैर, खून[4], खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान ।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान ॥ ४८ ॥

पाठान्तर (४१) रहिमन ओछे संग बसि, सुजन बाचते नाहिं ।
(४२) यह दोहा वृन्द विनोद में भी है और रहिमन के स्थान पर ' जैसे ' है ।

पाठा० १—जाय समानी उदधि में ।
पाठा० २—काकी महिमा नहिं घटी ।
पाठा० (४५) रहिमन वे नर क्या करें, ज्यों थोरे जल मीन ।
पाठा० ३—भरिए ।
पाठा० ४—इश्क, मुश्क ।

गरज आपनी आपसों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलबधू, पर घर जात लजाय॥ ४९॥

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछू उपाव॥ ५०॥

गुन तें लेत रहीम जन, सलिल कूप तें काढ़ि।
कूपहु तें कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि॥ ५१॥

गुरुता फबै रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं, अनत बतौरी आहि॥ ५२॥

चरन छुए मस्तक छुए, तेहु नहिं छाँड़ति पानि।
हियो छुवत प्रभु छोड़ि दै, कहु रहीम का जानि॥ ५३॥

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेय।
ज्यों रहीम आटा लगे, त्यों मृदंग स्वर देय॥ ५४॥

चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, वे साहन के साह॥ ५५॥

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध-नरेस।
जापर बिपदा पड़त है, सो आवत यहि देस॥ ५६॥

चिंता बुद्धि परेखिए, टोटे परख त्रियाहि।
सगे कुबेला परखिए, ठाकुर गुनो किआहि॥ ५७॥

छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥ ५८॥

छोटेन सो सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख॥ ५९॥

पाठान्तर (५६) आए राम रहीम कवि, किए जती को भेष।
जाको विपता परति है, सो कटती तुव देस॥

जब लगि जीवन जगत में, सुख दुख मिलन अगोट ।
रहिमन फूटे गोट ज्यों, परत दुहुँन सिर चोट ॥ ६० ॥
जब लगि बित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय ।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिंन हित होय[1] ॥ ६१ ॥

ज्यों नाचत कठपूतरी, करम नचावत गात ।
अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ ॥ ६२ ॥
जलहिं मिलाय रहीम ज्यों, कियो आपु सम छीर ।
अँगवहि आपुहि आप त्यों, सकल आँच की भीर ॥ ६३ ॥

जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यह रहीम जग जोय ।
मँड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय ॥ ६४ ॥
जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह ।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह ॥ ६५ ॥

जे गरीब पर हित करैं[2], ते रहीम बड़ लोग ।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥ ६६ ॥
जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि ।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि ॥ ६७ ॥
जे सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं ।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं ॥ ६८ ॥

पाठा० १—रवि ता कर रिपु होय ॥

(६५) यह दोहा कुछ हेर फेर के साथ 'अहमद' के नाम भी मिलता है ।

पाठा० २—को आदरें ॥

(६७) तुलसी सतसई में इसी भावार्थ का यह दोहा भी है ।
होहिं बड़े लघु समय सह, तो लघु सकहिं न काढ़ि ।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि ॥

जेहि अंचल दीपक दुर्यो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥ ६९॥

जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन॥ ७०॥

जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताको बुरो न मानिए, लेन कहाँ सो जाय॥ ७१॥

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती पर ही परत है, शीत घाम औ मेह॥ ७२॥

जैसी[1] तुम हमसों करी, करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर॥ ७३॥

जो अनुचितकारी तिन्हैं, लगै अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख स्याम॥ ७४॥

जो घरही में घुस रहे, कदली सुपत सुडील।
तो रहीम तिनतें भले, पथ के अपत करील॥ ७५॥

जो पुरुषारथ तें कहूँ, संपति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम॥ ७६॥

जो बड़ेन को लघु कहे, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥ ७७॥

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगै पार तें, सो रहीम बहि जाय॥ ७८॥

पाठान्तर १—रहिमन।

पाठा० (७८) तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमरि चलै जल पार तें, तौ रहीम बहि जाय॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन बिष ब्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥ ७९ ॥
जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय[1]।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय[2] ॥ ८० ॥

जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को इहै हवाल।
तौ काहे कर पर धर्‌यौ, गोवर्धन गोपाल[3] ॥ ८१ ॥
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे, बढ़े अँधेरो होय ॥ ८२ ॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बड़ो उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय ॥ ८३ ॥
जो रहीम जग मारियो, नैन बान की चोट।
भगत भगत कोउ बचि गये, चरन कमल की ओट ॥ ८४ ॥

जो रहीम दीपक दसा, तिय राखत पट ओट।
समय परे तें होत है, वाही पट की चोट ॥ ८५ ॥
जो रहीम पगतर परो, रगरि नाक अरु सीस।
निठुरा आगे रोयबो, आँस गारिबो खीस ॥ ८६ ॥

जो रहीम तन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं ॥ ८७ ॥
जो रहीम होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ ॥ ८८ ॥

जो विषया सतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात ॥ ८९ ॥

पाठा० (८०) १—छोटो बढ़ै, बढ़त करत उतपात।
(८०) २—तिरछो तिरछो जात।
पाठा०—३—तौ कत मातहिं दुख दियो, गिरवर धरि गोपाल।

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार ॥ ९० ॥

तन रहीम है कर्म बसं, मन राखो ओहि ओर।
जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर ॥ ९१ ॥

तबही लौं जीबो भलो, दीबो होय न धीम।
जग में रहिबो कुचित गति, उचित न होय रहीम ॥ ९२ ॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान ॥ ९३ ॥

तासों ही कछु पाइए, कीजै जाकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझै पियास ॥ ९४ ॥

तैं रहीम अब कौन है, एती खैंचत बाय।
खस कागद को पूतरा, नमी माँहि खुल जाय ॥ ९५ ॥

थोथे बादर क्वाँर के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करै पाछिली बात ॥ ९६ ॥

थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय[1]।
ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरधर कहत न कोय ॥ ९७ ॥

दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माँहि।
रहिमन चातक रटनि हू, सरवर को कोउ नाहिं ॥ ९८ ॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीनबन्धु से बन्धु ॥ ९९ ॥

पाठान्तर १—रहीम ने हनुमानजी के पहाड़ उठाने पर दूसरा भाव भी घटाया है जैसे—

ओछो काम बड़ो करै, तौ न बड़ाई होय।
इसमें हनुमानजी को बड़प्पन दिया है ॥

दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय ।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय[1] ॥१००॥

दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं ।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं ॥१०१॥

दुख नर सुनि हाँसी करै, धरत रहीम न धीर ।
कही सुनै सुनि सुनि करै, ऐसे वे रघुबीर ॥१०२॥

दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि ।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥१०३॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब[2] पहिचानि ।
सोच नहीं वित हानि को, जो न होय हित हानि[3] ॥१०४॥

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन ।
लोग भरम हम पै धरैं, याते नीचे नैन ॥१०५॥

दोनों रहिमन एक से, जौलौं बोलत नाहिं ।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं ॥१०६॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात ।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँह समात ॥१०७॥

धन दारा अरु सुतन सों, लगो रहे नित चित्त ।
नहिं रहीम कोऊ लख्यो, गाढ़े दिन को मित्त[4] ॥१०८॥

पाठान्तर १—रहिमन भली मो दीनता नरौ देवता होय ।
२—विकल सबै ।
३—कछुक सोच धन हानि को, बहुत सोच हित हानि ।
(१०६) वृन्द विनोद में भी यह दोहा है जिसमें केवल इतना पाठान्तर है—भले बुरे सब एक से ।
४—सों, रहत लगाए चित्त । क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त ॥

धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जिअत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को भाय ॥१०९॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पिअत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत[1] पिआसो जाय ॥११०॥
धरती की सी रीत है, सीत घाम औ मेह।
जैसी परे सो सहि रहै, त्यों रहीम यह देह[2] ॥१११॥
धूर धरत नित सीस पै[3], कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज ॥११२॥
नहिं रहीम कछु रूप गुन, नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए, भ्रमत भूख ही लाग ॥११३॥
नात नेह दूरी भली, लों रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥११४॥
नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु से अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥११५॥
निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥११६॥
नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन ॥११७॥
पन्नग बेलि पतिव्रता, रति सम सुनो सुजान।
हिम रहीम बेली दही, सत जोजन दहियान ॥११८॥
परि रहिबो मरिबो भलो, सहिबो कठिन कलेस।
बामन है बलि को छल्यो, भलो दियो उपदेस ॥११९॥

पाठा० १—पील।
२—इसी संग्रह का ७२ वाँ दोहा देखिए।
३—गजरज ढूढ़त गलिन में।

पसा॰ पत्र झंपहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी को मीत ॥१२०॥
पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि को, कहो बरैगो कौन ॥१२१॥
पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन ॥१२२॥
पिय वियोग तें दुसह दुख, सूने दुख ते अंत।
होत अंत ते फिर मिलन, तोरि सिधाए कंत ॥१२३॥
पुरुष पूजें देवरा, तिय पूजैं रघुनाथ।
कहे रहीम दोउन बनै, पँड़ो-बैल को साथ ॥१२४॥
[1]प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिर जाय[2] ॥१२५॥
फरजी साह न ह्वै सकै, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सीधे चालसों, प्यादो होत वजीर ॥१२६॥
बड़ माया को दोप यह, जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जियै बलाय ॥१२७॥
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥१२८॥

---

(१२१) 'तुलसी सतसई' का यह दोहा इसी आशय का है।
पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
तुलसी खोटे चतुरपन, कलि डहके कहु कौन ॥
(१२२) तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमहिं पूछिहैं कौन ॥
पाठा० १—मोहन। २—ज्यों, पथिक आय फिरि जाय ॥
पाठा० (१२८) अरज सुने लरजै तुरत, गरज मिटाई आनि।
कहि रहीम का दिन हुतो, हरि हाथी पहिचानि

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि ॥१२९॥

बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥१३०॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मेरो मोल ॥१३१॥

बढ़त रहीम धनाढ्य धन, धनौ धनी को जाइ।
घटै बढ़ै वाको कहा, भीख माँगि जो खाइ ॥१३२॥

बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस ॥१३३॥

बाँकी चितवन चित चढ़ी, सूधी तौ कछु धीम।
गाँसी ते बढ़ि होत दुख, काढ़ि न कढ़त रहीम ॥१३४॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ॥१३५॥

बिपति भए धन ना रहे, रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं, ज्यों रहीम भए भोर ॥१३६॥

भजौं तो काको मैं भजौं, तजौं तो काको आन।
भजन तजन ते बिलग हैं, तेहि रहीम तू जान ॥१३७॥

भलो भयो धर ते छुट्यो, हँस्यो सीस परि खेत।
काके काके नवत हम, अपन[1] पेट के हेत ॥१३८॥

---

(१३३) वृंद का एक दोहा इसी आशय का है।
दुर्जन के संसर्ग तें, सज्जन लहत कलेस।
ज्यों दशमुख अपराध तें, बंधन लह्यो जलेस ॥

पाठा० १—अपत।

भार झौंकि के भार में, रहिमन उतरे पार।
पै बूड़े मझधार में, जिनके सिर पर भार ॥१३९॥
भावी काहू ना दही, भावी दह भगवान।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान ॥ १४० ॥
भावी या उनमान की, पंडव बनहि रहीम।
जदपि गौरि सुनि बाँझ है, बरु[1] है संभु अजीम ॥१४१॥
भीत गिरी पाखान की, अररानी वहि ठाम।
अब रहीम धोखो यहै, को लागै केहि काम ॥१४२॥
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरि तें भूमि लौं, लखौ तो एकै रूप ॥१४३॥
मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय[2] ॥१४४॥
मनसिज माली की उपज, कहि रहीम नहिं जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर आय ॥१४५॥
मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सो कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान ॥१४६॥
मंदन के मरिहू गये, औगुन गुन न सिराहिं।
ज्यों रहीम बाँधहु बँधे, मरहा ह्वै अधिकाहिं ॥१४७॥
महि नभ सर पंजर कियो, रहिमन बल अवसेष।
सो अर्जुन बैराट घर, रहे नारि के भेष ॥ १४८ ॥
माँगे घटत रहीम पद, कितौ करौ बढ़ि काम।
तीन पैग बसुधा करी, तऊ बावनै नाम ॥ १४९ ॥

---

(१३९) पाठा०—जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस ?
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥

१—डरु ।

२—'शंकर' सो बहुमोल जो भीर परे ठहराय ॥

माँगे मुकरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥ १५० ॥

मान सरोवर ही मिले, हंसनि मुक्ता भोग ।
सफरिन भरे रहीम सर, बक बालकनहिं जोग ॥ १५१ ॥

मान सहित विष खाय कै, संभु भये जगदीस ।
बिना मान[1] अमृत पिये, राहु कटायो सीस ॥ १५२ ॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और ।
त्यों रहीम जग जानियै, छुटे आपुने ठौर ॥ १५३ ॥

मुकता कर करपूर कर, चातक जीवन जोय[2] ।
एतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन विष होय[3] ॥ १५४ ॥

मुनि नारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग ।
तीनों तारे राम जू, तीनों मेरे अंग ॥ १५५ ॥

मूढ़ मंडली में सुजन, ठहरत नहीं बिसेषि ।
स्याम कचन में सेत ज्यों, दूरि कीजिअत देखि ॥ १५६ ॥

यद्यपि अवनि अनेक हैं, कूपवंत[4] सरिताल ।
रहिमन मानसरोवरहिं[5], मनसा करत मराल ॥ १५७ ॥

पाठान्तर १—बिन आदर अमृत भख्यो ।

२—चातक तृष्न हर सोय । ३—कुथल परे विष होय ।

इसी भाव का सूरदास जी का एक दोहा है—

सीप गयो मुकता भयो, कदली भयो कपूर ।
अहिफन गयो तो विष भयो, संगति को फल सूर ॥

४—तोयवंत । ५—एकै मानसर ।

(१५७) इसी आशय का तुलसीदास जी का एक दोहा यह है ।

जद्यपि अवनि अनेक सुख, तोय तासु रस ताल ।
संतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहिं मराल ॥

यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीति।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीति ॥१५८॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत होत ही होय ॥१५९॥

यह रहीम मानै नहीं, दिल से नवा जो होय।
चीता, चोर, कमान के, नये ते अवगुन होय ॥१६०॥

यातें जान्यो मन भयो, जरि बरि भस्म बनाय।
रहिमन जाहि लगाइये, सो रूखो ह्वै जाय ॥१६१॥

ये रहीम फीके दुवौ, जानि महा संतापु।
ज्यों तिय कुच आपुन गहे, आप बड़ाई आपु ॥१६२॥

यों रहीम गति बड़ेन की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥१६३॥

यों रहीम तन हाट में, मनुआ गयो बिकाय।
ज्यों जल में छाया परे, काया भीतर नाँय ॥१६४॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह साँति।
उवत चंद जेहि भाँति सो, अथवत ताही भाँति ॥१६५॥

रजपूती चाँवर भरी, जो कदाच घटि जाय।
कै रहीम मरिबो भला, कै स्वदेश तजि जाय ॥१६६॥

रन, बन, ब्याधि, बिपत्ति में, रहिमन मरै न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गये कि सोय ॥१६७॥

रहिमन अती न कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सैंजन अति फूलै तऊ, डार पात की हानि ॥१६८॥

---

(१६८) रहिमन बहुत न फूलिये, वित्त आपनो जानि।
अति फूले से सहिजनी।

रहिमन अपने गोत को, सबै चहत उत्साह ।
मृग उछरत आकाश को, भूमी खनत बराह ॥१६९॥

रहिमन अपने[1] पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय ।
जो तू अन खायें रहे, तो सों को[2] अनखाय ॥१७०॥

रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर ।
बागन बिच बिच देखिअत, सेंहुड़, कुंज, करीर ॥१७१॥

रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय ।
बधिक बधै मृग बानसों, रुधिरै देत बताय ॥१७२॥

रहिमन अँसुआ नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देइ ॥१७३॥

रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति ।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति ॥१७४॥

रहिमन उजली प्रकृत को, नहीं नीच को संग ।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥१७५॥

रहिमन एक दिन वे रहे, बीच न सोहत हार ।
वायु जो ऐसी बह गई, बीचन परे पहार ॥१७६॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति ।
काटे चाटै स्वान के, दोऊ भाँति विपरीति ॥१७७॥

रहिमन कठिन चितान तें, चिंता को चित चेत ।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत ॥१७८॥

रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेस ।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत सेस ॥१७९॥

रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक ।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥१८०॥

पाठान्तर १—मैं या । २—का काहू ।

(१७६) यह सम्मन का भी कहा जाता है ।

रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ ॥१८१॥
रहिमन कुटिल कुठार ज्यों, करि डारत द्वै टूक।
चतुरन के कसकत रहे, समय चूक की हूक ॥१८२॥
रहिमन को कोउ का करै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पति-राखनहार हैं, माखन चाखनहार ॥१८३॥
रहिमन खोजे ऊख में, जहाँ रसन की खानि।
जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति में हानि ॥१८४॥
रहिमन खोटी आदि की, सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराय ॥१८५॥
रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ॥१८६॥
रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सनमुख होत है, भरी दिखावै पीठ ॥१८७॥
रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ ॥१८८॥
रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ॥१८९॥
रहिमन छोटे नरन सों, होत बड़ो नहीं काम।
मढ़ो दमामो ना बने, सौ चूहे के चाम ॥१९०॥

पाठान्तर (१८१)। कहि रहीम या पेट तें, दुहु बिधि दीन्ही पीठि।
भूखे भीख मँगावई, भरे डिगावे डीठि ॥

(१९०) बिहारी का एक दोहा इसी भाव का यों है—
कैसे छोटे नरनु ते, सरत बड़ेन को काम।
मढ़यो दमामो जात क्यों, कहि चूहे के चाम ॥

रहिमन जगत बड़ाइ की, कूकुर की पहिचानि।
प्रीति करै मुख चाटई, बैर करै तन हानि ॥१९१॥

रहिमन जग जीवन बड़े, काहु न देखे नैन।
जाय दशानन अछत ही, कपि लागे गथ लैन ॥१९२॥

रहिमन जाके बाप को, पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल अकाश लौं, क्यों न कालिमा होय ॥१९३॥

रहिमन जा डर निसि परै, ता दिन डर सिर कोय।
पल पल करके लागते, देखु कहाँ धौं होय ॥१९४॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही, जूती खात कपाल ॥१९५॥

रहिमन जो तुम कहत थे, संगति ही गुन होय।
बीच उखारी रसरा, रस काहे ना होय ॥१९६॥

रहिमन जो रहिबो चहै, कहै वाहि के दाँव।
जो बासर को निस कहै, तौ कचपची दिखाव ॥१९७॥

रहिमन ठठरी धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गाँठ युक्ति की खुलि गई, अंत धूरि को धूरि ॥१९८॥

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥१९९॥

रहिमन तीन प्रकार तें, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥२००॥

रहिमन तीर की चोट तें, चोट परे बचि जाय।
नैन बान की चोट ते, चोट परे मरि जाय ॥२०१॥

पाठा० (१९१) व्यास, बड़ाई जगत की। यह दोहा व्यास जी की साखी की हस्तलिखित प्रति में दिया है।

रहिमन थोरे दिनन को, कौन करे मुँह स्याह।
नहीं छलन को परतिया, नहीं करन को ब्याह ॥२०२॥
रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाँचबे योग।
ज्यों सरितन सूखा परे, कुँआ खनावत लोग ॥२०३॥
रहिमन दुरदिन के परे, बड़ेन किए घटि काज।
पाँच रूप पांडव भए, रथवाहक नल राज ॥२०४॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करे तलवारि ॥२०५॥
रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय[1]।
टूटे से फिर ना मिले, मिले गाँठ परि जाय ॥२०६॥
रहिमन धोखे भाव से, मुख से निकसे राम।
पावत पूरन परम गति, कामादिक को धाम ॥२०७॥
रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय ॥२०८॥
रहिमन निज संपति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय ॥२०९॥
रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि ॥२१०॥

पाठान्तर १ — चटकाय।

(२१०) वृन्द ने इस भाव को यों कहा है।

जिहि प्रसंग दूखन लगै, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ॥

(२०८) तुलसीदास जी ने इसे इस प्रकार कहा है—

तुलसी पर घर जाइकै
अपनी लाज गवाइहौ बाँटि न लैहै कोय॥

रहिमन नीच प्रसंग तें, नित प्रति लाभ विकार।
नीर चोरावै संपुटी, मारु सहै घरिआर ॥२११॥

रहिमन पर उपकार के, करत न यारी बीच।
माँस दियो शिवि भूप ने, दीन्हों हाड़ दधीच ॥२१२॥

रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुष, चून ॥२१३॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥२१४॥

रहिमन पैंडा प्रेम को, निपट सिलसिली गैल।
बिछलत पाँव पिपीलिका, लोग लदावत बैल ॥२१५॥

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सफेदी चून ॥२१६॥

रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाय बजाय ॥२१७॥

रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ ॥२१८॥

रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहिं ॥२१९॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, तऊ बावनै नाम ॥२२०॥

---

(२१७) फूले फूले फिरत हैं, आज हमारो ब्याउ।
तुलसी गाय बजाय के, देत काठ में पाँउ ॥

(२१८) राम भरोसे जे रहें, परबत पर हरियायँ।
तुलसी बिरवा बाग के, सींचेहु पै मुरझायँ।

रहिमन भेषज के किए, काल जीति जो जात।
बड़े बड़े समरथ भए, तौ न कोउ मरि जात ॥२२१॥
रहिमन मनहिं लगाइ कै, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायन बस होय ॥२२२॥
रहिमन मारग प्रेम को, मत मतिहीन मभाव।
जो डिगिहै तो फिर कहूँ, नहिं धरने को पाँव ॥२२३॥
रहिमन माँगत बड़ेन की, लघुता होत अनूप।
बलि मख माँगन को गए, धरि बावन को रूप ॥२२४॥
रहिमन याचकता गहे, बड़ो छोट ह्वै जात।
नारायन हू को भयो, बावन आँगुर गात ॥२२५॥
रहिमन या तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुए राखि बटोर ॥२२६॥
रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥२२७॥
रहिमन रजनी ही भली, पिय सों होय मिलाप।
खरो दिवस किहि काम को, रहिबो आपुहि आप ॥२२८॥
रहिमन रहिबो वा भलो, जौ लौं सील समूच।
सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिए कूच ॥२२९॥
रहिमन रहिला की भली, जो परसै चित लाय।
परसत मन मैला करे, सो मैदा जरि जाय ॥२३०॥
रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयन खोय ॥२३१॥
रहिमन राम न उर धरै, रहत बिषय लपटाय।
पसु खर खात सवाद सों, गुर गुलियाए खाय ॥२३२॥

पाठान्तर (२३२) राम नाम नहिं लेत है, रह्यौ बिषय लपटाय।
घास चरै पसु आप सौं, गुड़ गास्यो ही खाय ॥

रहिमन रिस को छाँड़ि कै, करौ गरीबी भेस।
मीठो बोलो नै चलो, सबै तुम्हारो देस ॥२३३॥
रहिमन रिस सहि तजत नहिं, बड़ प्रीति की पौरि।
मूकन मारत आवई, नींद बिचारी दौरि ॥२३४॥
रहिमन रीति सराहिए, जो घट गुन सम होय।
भीति आप पै डारि कै, सबै पिआवै तोय ॥२३५॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हू, साँप सहज धरि खाय ॥२३६॥
रहिमन वहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत।
हम तन ढारत ढेकुली, सींचत अपनो खेत ॥२३७
रहिमन वित्त अधर्म को, जरत न लागै बार।
चोरी करि होरी रची, भई तनिक में छार ॥२३८॥
रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम, जस, दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पसु बिनु पूछ बिपान ॥२३९॥
रहिमन विपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥२४०॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मुये, जिन मुख निकसत नाहिं ॥२४१॥
रहिमन सुधि सबतें भली, लगै जो बारंबार॥
बिछुरे मानुप फिर मिलें, यहै जान अवतार ॥२४२॥
रहिमन सो न कछू गनै, जासों लागे नैन।
सहि कै सोच बेसाहियो, गयो हाथ को चैन ॥२४३॥
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावण साथ।
जो रहीम भावी कतहूँ, होत आपुने हाथ ॥२४४॥

---

(२३४) रहिमन बड़े निरादरै, तजिय न ताकी पौरि।

राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा में हानि ।
कहि रहीम क्यों मानिहैं, जम के किंकर कानि ॥२४५॥
राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपाधि ।
कहि रहीम तिहिं आपुनो, जनम गँवायो बादि ॥२४६॥
रीति प्रीति सब सों भली, बैर न हित मित गोत ।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न संगति होत ॥२४७॥
रूप, कथा, पद, चारु, पट, कंचन, दोहा[1] लाल ।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्मगति, मोल रहीम बिसाल ॥२४८॥
रूप बिलोकि रहीम तहँ, जहँ जहँ मन लगि जाय ।
थाके ताकहिं आप बहु, लेत छोड़ाय छोड़ाय ॥२४९॥
रोल बिगाड़े राज नै, मोल बिगाड़े माल ।
सनै सनै सरदार की, चुगल बिगाड़े चाल ॥२५०॥
लालन[2] मैन तुरंग चढ़ि, चलिबो पावक माँहिं ।
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन, सब कोउ निबहत नाहिं ॥२५१॥
लिखी रहीम लिलार में, भई आन की आन ।
पद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगरु-स्थान ॥२५२॥
लोहे की न लोहार की, रहिमन कही बिचार ।
जो हनि मारे सीस में, ताही की तलवार ॥२५३॥
वरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग ।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग ॥२५४॥
वहै प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिलो हेत ।
घटत घटत रहिमन घटै, ज्यों कर लीन्हें रेत ॥२५५॥
बिरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत ।
ज्यों रहीम भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥२५६॥

पाठान्तर १—दूवा
२—रहिमन

वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग।
बाँटनवारे को लगे, ज्यों मेंहदी को रंग ॥२५७॥
सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम।
रहिमन या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम ॥२५८॥
सब को सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम ॥२५९॥
सबै कहावैं लसकरी, सब लसकर कहँ जाय।
रहिमन सेल्ह[१] जोई सहै, सो जागीरैं खाय ॥२६०॥
समय दसा कुल देखि कै, सबै करत सनमान।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥२६१॥
समय परे ओछे बचन, सब के सहै रहीम।
सभा दुसासन पट गहे, गदा लिए रहे भीम ॥२६२॥
समय पायं फल होत है, समय पाय झरि जाय।
सदा रहे नहिं एक सी, का रहीम पछिताय ॥२६३॥
समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक ॥२६४॥
सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥२६५॥
सर सूखे पच्छी उड़ैं, औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥२६६॥
स्वारथ रचत रहीम सब, औगुनहू जग माँहि।
बड़े बड़े बैठे लख्यौ, पथ रथ कूबर छाँहि ॥२६७॥
स्वासह तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचल चित्त।
पूत परा घर जानिए, रहिमन तीन पवित्त ॥२६८॥

पाठान्तर १—सैल।

साधु सराहै साधुता[1], जती जोखिता जान।
रहिमन[2] साँचे सूर को, बैरी करै बखान ॥२६९॥
सौदा करो सो करि चलौ, रहिमन याही बाट।
फिर सौदा पैहौ नहीं, दूरि जान है बाट ॥२७०॥
संतत संपति जानि कै, सब को सब कछु देत[3]।
दीनबंधु बिनु दीन की, को रहीम सुधि लेत ॥२७१॥
संपति भरम गँवाइ कै, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है, दिवस अकासहिं माँहिं ॥२७२॥
ससि की सीतल चाँदनी, सुंदर सबहिं सुहाय।
लगे चोर चित में लटी, घटि रहीम मन आय[4] ॥२७३॥
ससि, सुकेस, साहस, सलिल, मान, सनेह रहीम[5]।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटि सीम ॥२७४॥
सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रबि को कहा, जो घटि लखै उलूक ॥२७५॥
हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥२७६॥
हरी हरी करुना करी, सुनी जो सब ना टेर।
जग डग भरी उतावरी, हरी करी की बेर ॥२७७॥
हित रहीम इतऊ करै, जाकी जिती बिसात।
नहिं यह रहै न वह रहै, रहै कहन को बात ॥२७८॥
होत कृपा जो बड़ेन की, सो कदाचि घटि जाय।
तौ रहीम मरिबो भलो, यह दुख सहो न जाय ॥२७९॥

पाठान्तर १—सो सती। २—रज्जब।
३—संपति संपतिवान को, संपति वारो देत।
४—घटी रहीम न।
५—सुकेस के स्थान पर सकोच और मान के स्थान पर साज।

होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़िहू सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर ॥२८०॥

सोरठा

ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरो पै कारो लगै ॥२८१॥
रहिमन कीन्हीं प्रीति, साहब को भावै नहीं।
जिनके अगनित मीत, हमैं गरीबन को गनै ॥२८२॥
रहिमन जग की रीति, मैं देख्यो रस ऊख में।
ताहू में परतीति, जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं ॥२८३॥
रहिमन नीर पखान, बूड़ै[1] पै सीझै नहीं।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं ॥२८४॥
रहिमन बहरी बाज, गगन चढ़े फिर क्यों तिरै।
पेट अधम के काज, फेर आय बंधन परै ॥२८५॥
रहिमन मन की भूल, सेवा करत करील की।
इनतें चाहत फूल, जिन डारन पत्ता नहीं ॥२८६॥
रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पिआवै मान बिनु।
वरु विष देय बुलाय, मान सहित मरिबो भलो ॥२८७॥
बिंदु मों सिंधु समान, को अचरज कासों कहै।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपुने आप तें ॥२८८॥
चूल्हा दीन्हो बार, नात रह्यो सो जरि गयो।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥२८९॥

(२८१) यह भाव अहमद ने यों कहा है।

अहमद तजै अँगार ज्यों, छोटे को सँग साथ।
सीरो कर कारो करै, तातो जारै हाथ॥

पाठान्तर १—भीगै (भीजै)।

नगर शोभा

आदि रूप की परम दुति, घट घट रही समाइ।
लघुमति ते मो मन रसन, अस्तुति कही न जाइ॥ १॥
नैन तृप्ति कछु होतु है, निरखि जगत की भाँति।
जाहि ताहि में पाइयै, आदि रूप की काँति॥ २॥
उत्तम जाती ब्राह्मनी, देखत चित्त लुभाय।
परम पाप पल में हरत, परसत वाके पाय॥ ३॥
परजापति परमेश्वरी, गंगा रूप-समान।
जाके अंग-तरंग में, करत नैन अस्नान॥ ४॥
रूप-रंग-रति-राज में, खतरानी इतरान।
मानों रची बिरंचि पचि, कुसुम कनक में सान॥ ५॥
पारस पाहन की मनो, धरै पूतरी अंग।
क्यों न होइ कंचन वहू, जो बिलसै तिहि संग॥ ६॥
कबहुँ दिखावै जौहरिन, हँसि हँसि मानिक लाल।
कबहूँ चख ते च्वै परै, टूटि मुकुत की माल॥ ७॥
जद्यपि नैननि ओट है, बिरह चोट बिन घाइ।
पिय उर पीरा ना करै, हीरा सी गड़ि जाइ॥ ८॥
कैथिनि कथन न पारई, प्रेम-कथा मुख बैन।
छाती ही पाती मनो, लिखै मैन की सैन॥ ९॥
बरुनि-बार लेखनि करै, मसि काजरि भरि लेइ।
प्रेमाक्षर लिखि नैन ते, पिय बाँचन को देइ॥ १०॥
चतुर चितेरिन चित हरै, चख खंजन के भाइ।
द्वै आधौ करि डारई, आधौ मुख दिखराइ॥ ११॥
पलक न टारै बदन तें, पलक न मारै नित्र।
नेकु न चित तें ऊतरै, ज्यों कागद में चित्र॥ १२॥

सुरँग बरन बरइन बनी, नैन खवाये पान।
निसि दिन फेरै पान ज्यों, बिरही जन के प्रान॥ १३॥
पानी पीरो अति बनी, चन्दन खौरे गात।
परसत बीरी अधर की, पीरी कै ह्वै जात॥ १४॥
परम रूप कंचन बरन, सोभित नारि सुनारि।
मानों साँचे ढारि कै, बिधिना गढ़ी सुनारि॥ १५॥
रहसनि बहसनि मन हरै, घेरि घेरि तन लेहि।
औरन को चित चोरि कै, आपुन चित्त न देहि॥ १६॥
बनिआइन बनि आइ कै, बैठि रूप की हाट।
पेम पेक तन हेरि कै, गरुए टारत बाट॥ १७॥
गरब तराजू करत चख, भौंह मोरि मुसक्यात।
डाँड़ी मारत बिरह की, चित चिन्ता घटि जात॥ १८॥
रँगरेजिन के संग में, उठत अनंग तरंग।
आनन ऊपर पाइयतु, सुरत अंत के रंग॥ १९॥
मारति नैन कुरंग तें, मो मन मार मरोरि।
आपुन अधर सुरंग तें, कामिहिं काढ़ति बोरि॥ २०॥
गति गरूर गजराज जिमि, गोरे बरन गँवारि।
जाके परसत पाइयै, घनवा की उनहारि॥ २१॥
घरो भरो धरि सीस पर, बिरही देखि लजाइ।
कूक कंठ तैं बाँधि कै, लेजू ज्यों लै जाइ॥ २२॥
भाटा बरन सुकौंजरी, बेचै सोवा साग।
निलजु भई खेलत सदा, गारी दै दै फाग॥ २३॥
हरी भरी डलिया निरखि, जो कोई नियरात।
झूठे हू गारी सुनत, साँचेहू ललचात॥ २४॥
रनजारी झुमकत चलत, जेहरि पहिरै पाइ।
वाके जेहरि के सबद, बिरही जिय हर जाइ॥ २५॥

और बनज ब्यौपार को, भाव बिचारै कौन।
लोइन लोने होत हैं, देखत वाको लौन ॥२६॥
उर बाँके माटी भरे, कौरी बैस कुम्हारि।
द्वै उलटे सरवा मनौ, दीसत कुच उनहारि ॥२७॥
निरखि प्रान घट ज्यों रहै, क्यों मुख आवै बाक।
उर मानौं आबाद है, चित्त भ्रमै जिमि चाक ॥२८॥
बिरह अगिन निसि दिन धवै, उठै चित्त चिनगारि।
बिरही जियहिं जराय कै, करत लुहारि लुहारि ॥२९॥
राखत मो मन लोह-सम, पारि प्रेम घन टोरि।
बिरह अगिन में ताइकै, नैन नीर में बोरि ॥३०॥
कलवारी रस प्रेम कों, नैनन भरि भरि लेति।
जोबन मद माती फिरै, छाती छुवन न देति ॥३१॥
नैनन प्याला फेरि कै, अधर गजक जब देइ।
मतवारे की मत हरै, जो चाहै सो लेइ ॥३२॥
परम ऊजरी गूजरी, दह्यो सीस पै लेइ।
गोरस के मिस डोलही, सो रस नेकु न देइ ॥३३॥
गाहक सों हँसि बिहँसि कै, करति बोल अरु कौल।
पहिले आपुन मोल कहि, कहति दही को मोल ॥३४॥
काछिनि कछू न जानई, नैन बीच हित चित्त।
जोबन जल सींचति रहै, काम कियारी नित्त ॥३५॥
कुच भाटा, गाजर अधर, मूरा से भुज भाइ।
बैठी लौका बेचई, लेटी खीरा खाइ ॥३६॥
हाथ लिये हत्या फिरै, जोबन गरब हुलास।
धरै कसाइन रैन दिन, बिरही रकत पियास ॥३७॥
नैन कतरनी साजि कै, पलक सैन जब देइ।
बरुनी की टेढ़ी छुरी, लेह छुरी सो टेइ ॥३८॥

हियरा भरै तवाखिनी, हाथ न लावन देत।
सुरवा नेक चखाइ कै, हड़ी भारि सब देत ॥३९॥
अधर सुघर चख चीकनै, दूभर हैं सब गात[1]।
वाको परसो खात हू, बिरही नहिंन अघात ॥४०॥
बेलन तिली सुबासि कै, तेलिन करै फुलेल।
बिरही दृष्टि फिरौ करै, ज्यों तेली को बैल ॥४१॥
कबहूँ मुख रूखौ किये, कहै जीय की बात।
वाको करुओ बचन सुनि, मुख मीठो ह्वै जात ॥४२॥
पाटम्बर पटइन पहिरि, सेंदुर भरे ललाट।
बिरही नेकु न छाँड़ही, वा पटवा की हाट ॥४३॥
रस रेसम बेंचत रहै, नैन सैन की सात।
फूँदी पर को फोंदना, करै कोटि जिय घात ॥४४॥
भठियारी अरु लच्छमी, दोऊ एकै घात।
आवत बहु आदर करै, जात न पूछै बात ॥४५॥
भठियारी उर मुँह करै, प्रेम-पथिक के ठौर।
द्यौस दिखावै और की, रात दिखावै और ॥४६॥
करै गुमान कमाँगरी, भौंह कमान चढ़ाइ।
पिय कर गहि जब खैंचई, फिरि कमान सी जाइ ॥४७॥
जोगति है पिय रस परस, रहै रोस जिय टेक।
सूधी करत कमान ज्यों, बिरह-अगिन में सेंक ॥४८॥
हँसि हँसि मारै नैन-सर, बारत जिय बहु पीर।
बेझा ह्वै उर जात है, तीरगरिन के तीर ॥४९॥
प्रान सरीकन साल दै, हेरि फेरि कर लेत।
दुख संकट पै काढ़ि के, सुख सरेस में देत ॥५०॥

१—पाठ यों था—अधर सुधर चख चीकँने, वे भर हैं तन गात।

छीपिन छापौ अधर को, सुरँग पीक भरि लेइ।
हँसि हँसि काम कलोल में, पिय मुख ऊपर देइ ॥५१॥
मानों मूरति मैन की, धरै रंग सुरतंग।
नैन रँगीले होतु हैं, देखत वाको रंग ॥५२॥
सकल अंग सिकलीगरिन, करत प्रेम औसेर।
करै बदन दर्पन मनों, नैन मुसकिला फेरि ॥५३॥
अंजन चख, चंदन बदन, सोभित सेंदुर मंग।
अंगनि रंग सुरंग कै, काढ़ै अंग अनंग ॥५४॥
करै न काहू की सँका, सक्किन जोबन रूप।
सदा सरम जल तें भरी, रहै चिबुक को कूप ॥५५॥
सजल नैन वाके निरखि, चलत प्रेम रस फूटि।
लोक लाज डर धाक तें, जात मसक सी छूटि ॥५६॥
सुरँग बसन तन गाँधिनी, देखत दृग न अघाय।
कुच माजू कुटली अधर, मोचत चरन न आय ॥५७॥
कामेश्वर नैननि धरै, करत प्रेम की केलि।
नैन माहिं चोवा नरै, चिहुरन माहिं फुलेल ॥५८॥
राज करत रजपूतनी, देस रूप की दीप।
कर घूँघट पट ओट कै, आवत पियहि समीप ॥५९॥
सोभित मुख ऊपर धरै, सदा सुरत मैदान।
छूटी लटैं बँदूकची, भौहैं रूप कमान ॥६०॥
चतुर चपल कोमल बिमल, पग परसत सतराइ।
रस ही रस बस कीजियै, तुरकिन तरकि न जाइ ॥६१॥
सीस चूँदरी निरखि मन, परत प्रेम के जार।
प्रान इजारो लेत है, वाको लाल इजार ॥६२॥
जोगिन जोग न जानई, परै प्रेम रस माहिं।
डोलत मुख ऊपर लिये, प्रेम जटा की छाँहि ॥६३॥

मुख पै बैरागी अलक, कुच सिंगी बिष बैन।
मुदरा धारै अधर कै, मूँदि ध्यान सों नैन ॥६४॥
भाटिन भटकी प्रेम की, हटकी रहै न गेह।
जोबन पर लटकी फिरै, जोरत तरकि सनेह ॥६५॥
मुक्त माल उर दोहरा, चौपाई मुख-लौन।
आपुन जोबन रूप की, अस्तुति करै न कौन ॥६६॥
लेत चुराये डोमनी, मोहन रूप सुजान।
गाइ गाइ कछु लेत है, बाँकी तिरछी तान ॥६७॥
नेकु न सूधे मुख रहै, झुकि हँसि मुरि मुसक्याइ।
उपपति की सुन जात है, सरबस लेइ रिझाइ ॥६८॥
चेरी माती मैन की, नैन सैन के भाइ।
संक भरी जँभुवाइ कै, भुज उठाइ अँगराइ ॥६९॥
रंग रंग राती फिरै, चित्त न लावै गेह।
सब काहू तें कहि फिरै, आपुन सुरत सनेह ॥७०॥
बाँस चढ़ी नट-नंदनी, मन बाँधत लै बाँस।
नैन मैन की सैन तें, कटत कटाछन साँस ॥७१॥
अलबेली अद्भुत कला, सुध बुध लै बरजोर।
चोरि चोरि मन लेत है, ठौर ठौर तन तोर ॥७२॥
बोलनि पै पिय मन बिमल, चितवनि चित्त समाय।
निसि बासर हिंदू तुरुक, कौतुक देखि लुभाय ॥७३॥
लटकि लेइ कर दाइरौ, गावत अपनी ढाल।
सेत लाल छबि दीसियतु, ज्यों गुलाल की माल ॥७४॥
कंचन से तन कंचनी, स्याम कंचुकी अंग।
भाना भामै भोरही, रहै घटा के संग ॥७५॥
नैननि भीतर नृत्य कै, सैन देत सतराय।
छबि तैं चित्त छुड़ावही, नट के भाय दिखाय ॥७६॥

हरि गुन आवज केसवा, हिंसा बाजत काम।
प्रथम बिभासै गाइके, करत जीत संग्राम॥ ७७॥
प्रेम अहेरी साजि कै, बाँध पर्‌यो रस तान।
मन मृग ज्यों रीझै नहीं, तोहि नैन के बान॥ ७८॥
मिलत अंग सब अंगना, प्रथम माँगि मन लेइ।
घेरि घेरि उर राख ही, फेरि फेरि उर देइ॥ ७९॥
बहु पतंग जारत रहै, दीपक बारै देह।
फिर तन-गेह न आवही, मन जु चैटुवा लेह॥ ८०॥
प्रान-पूतरी पातुरी, पातुर कला निधान।
सुरत अंग चित चोरई, काय पाँच रसवान॥ ८१॥
उपजावै रस में बिरस, बिरस माँहिं रस नेम।
जो कीजै विपरीत रति, अतिहि बढ़ावत प्रेम॥ ८२॥
कहै आनकी आन कछु, बिरह पीर तन ताप।
औरै गाइ सुनावई, औरै कछू अलाप॥ ८३॥
जुँकिहारी जोबन लये, हाथ फिरै रस देत।
आपुन मास चखाइ कै, रकत आन को लेत॥ ८४॥
बिरही के उर में गड़ै, स्याम अलक की जोंक।
बिरह पीर पर लावई, रकत पियासी जोंक॥ ८५॥
बिरह बिथा खटकिन कहै, पलक न लावै रैन।
करत कोप बहु भाँति ही, धाइ मैन की सैन॥ ८६॥
बिरह बिथा कोई कहै, समुझै कछू न ताहि।
वाके जोबन रूप की, अकथ कथा कछु आहि॥ ८७॥
जाहि ताहि के उर गड़ै, कुंदिन बसन मलीन।
निस दिन वाके जाल में, परत फँसत मन मीन॥ ८८॥
जो वाके अँग संग में, धरै प्रीत की आस।
वाको लागै महमही, बसन बसेधी बास॥ ८९॥

सबै अंग सबनीगरनि, दीसत मन न कलंक ।
सेत बसन कीने मनो, साबुन लाइ मतंग ॥ ९० ॥
बिरह बिथा मन की हरै, महा बिमल है जाइ ।
मन मलीन जो धोवई, वाकौ साबुन लाइ ॥ ९१ ॥
थोरे थोरे कुच उठी, थोपिन की उर सींव ।
रूप नगर में देत है, मैन मँदिर की नींव ॥ ९२ ॥
करत बदन-सुख-सदन पै, घूँघट नितरन छाँह ।
नैननि मूँदे पग धरै, भौंहन आरै माँह ॥ ९३ ॥
कुन्दन सी कुन्दीगरिन, कामिनि कठिन कठोर ।
और न काहू की सुनै, अपने पिय के सोर ॥ ९४ ॥
पगहि मौगरी सी रहै, पैम बञ्र बहु खाइ ।
रँग रँग अंग अनंग के, करै बनाइ बनाइ ॥ ९५ ॥
धुनियाइन धुनि रैन दिन, धरै सुरति की भाँति ।
वाको राग न बूझही, कहा बजावै ताँति ॥ ९६ ॥
काम पराक्रम जब करै, छुवत नरम हो जाइ ।
रोम रोम पिय के बदन, रूई सी लपटाइ ॥ ९७ ॥
कोरिन कूर न जानई, पेम नेम के भाइ ।
बिरही वाके भौन में, ताना तनत बजाइ ॥ ९८ ॥
बिरह भार पहुँचै नहीं, तानी बहै न पेम ।
जोबन पानी मुख धरै, खैंचे पिय के नेम ॥ ९९ ॥
जोबन युत पिय दबगरिन, कहत पीय के पास ।
मो मन और न भावई, छाँड़ि तिहारी बास ॥ १०० ॥
भरी कुपी कुच पीन की, कंचुक में न समाइ ।
नव-सनेह-असनेह भरि, नैन कुपा ढरि जाइ ॥ १०१ ॥
घेरत नगर नगारचिन, बदन रूप तन साजि ।
घर घर वाके रूप को, रह्यो नगारा बाजि ॥ १०२ ॥

पहनै जो बिछुवा खरी, पिय के सँग अँगरात।
रतिपति की नौबत मनो, बाजत आधी रात ॥ १०३ ॥
मन दलमलै दलालिनी, रूप अंग के भाइ।
नैन मटकि मुख की चटकि, गाँहक रूप दिखाइ ॥ १०४ ॥
लोक लाज कुलकानि तैं, नहीं सुनावति बोल।
नैननि सैननि में करै, बिरही जन को मोल ॥ १०५ ॥
निसि दिन रहै ठठेरिनी, साजे माजे गात।
मुकता वाके रूप को, थारी पै ठहरात ॥ १०६ ॥
आभूषण बसतर पहिरि, चितवति पिय मुख ओर।
मानों गढ़े नितंब कुच, गडुवा ढार कठोर ॥ १०७ ॥
कागद से तन कागदिन, रहै प्रेम के पाइ।
रीझी भीजी मैन जल, कागद सी सिथलाइ ॥ १०८ ॥
मानों कागद की गुड़ी, चढ़ी सु प्रेम अकास।
सुरत दूर चित खैंचई, आइ रहै उर पास ॥ १०९ ॥
देखन के मिस मसिकरिन, पुनि भर मसि खिन देत।
चख टौना कछु डारई, सूझै स्याम न सेत ॥ ११० ॥
रूप जोति मुख पै धरै, छिनक मलीन न होत।
कच मानो काजर परै, मुख दीपक की जोति ॥ १११ ॥
बाजदारिनी बाज पिय, करै नहीं तन साज।
बिरह पीर तन यौं रहै, जर झकिनी जिमि बाज ॥ ११२ ॥
नैन अहेरी साजि कै, चित पंछी गहि लेत।
बिरही प्रान सचान को, अधर न चाखन देत ॥ ११३ ॥
जिलेदारिनी अति जलद, बिरह अगिन कै तेज।
नाक न मोरै सेज पर, अति हाजर महिमेज ॥ ११४ ॥
औरन को घर सघन मन, चलै जु घूँघट माँह।
वाके रंग सुरंग की, जिलेदार पर छाँह ॥ ११५ ॥

सोभा अंग भँगेरिनी, सोभित माल गुलाल।
पता पीसि पानी करै, चखन दिखावै लाल॥ ११६॥
काहू अधर सुरंग धरि, प्रेम पियालो देत।
काहू की गति मति सुरत, हरुवैई हरि लेत॥ ११७॥
बाजीगरिन बजार में, खेलत बाजी प्रेम।
देखत वाको रस रसन, तजत नैन ब्रत नेम॥ ११८॥
पीवत वाको प्रेम रस, जोई सो बस होइ।
एक खरे घूमत रहै, एक परे मत खोइ॥ ११९॥
चीताबानी देखि कै, बिरही रहे लुभाय।
गाड़ी को चीतो मनो, चलै न अपने पाय॥ १२०॥
अपनी बैसि गरूर तें, गिनै न काहू मित्त।
लाँक दिखावत ही हरै, चीता हू को चित्त॥ १२१॥
कठिहारी उर की कठिन, काठ पूतरी आहि।
छिनक न पिय सँग ते टरै, बिरह फँदै नहिं ताहि॥ १२२॥
करै न काहू को कह्यो, रहे किये हिय साठ।
बिरही को कोमल हियो, क्यों न होइ जिमि काठ॥ १२३॥
घासिन थोरे दिनन की, बैठी जोबन त्यागि।
थोरे ही बुझि जात है, घास जराई आग॥ १२४॥
तन पर काहू ना गिनै, अपने पिय के हेत।
हरबर बेड़ो बैस को, थोरे ही को देत॥ १२५॥
रीझी रहै डफालिनी, अपने पिय के राग।
ना जानै संजोग रस, ना जानै बैराग॥ १२६॥
अनमिल बतियाँ सब करै, नाहीं मलिन सनेह।
डफली बाजै बिरह की, निसि दिन वाके गेह॥ १२७॥
बिरही के उर में गड़ै, गड़िबारिन को नेह।
शिव-बाहन सेवा करै, पावै सिद्धि सनेह॥ १२८॥

पैम पीर वाकी जनौ, कंटकहू न गड़ाइ।
गाड़ी पर बैठे नहीं, नैननि सों गड़ि जाइ ॥१२९॥

बैठी महत महावतिन, धरै जु आपन अंग।
जोबन मद में गलि चढ़ी, फिरै जु पिय के संग ॥१३०॥

पीत काँछि कंचुक तनहि, बाला गहे कलाब।
जाहि ताहि मारत फिरै, अपने पिय के ताब ॥१३१॥

सरवानी बिपरीत रस, किय चाहै न डराइ।
दुरै न बिरही को दुर्यौ, ऊँट न छाग समाय ॥१३२॥

जाहि ताहि कौ चित हरै, बाँधे प्रेम कटार।
चित आवत गहि खैंचई, भरि कै गहै मुहार ॥१३३॥

नालबंदिनी रैन दिन, रहै सखिन के नाल।
जोबन अंग तुरंग की, बाँधन देइ न नाल ॥१३४॥

चोली माँहि चुरावई, चिरवादारिनि चित्त।
फेरत वाके गात पर, काम खरहरा नित्त ॥१३५॥

सारी निसि पिय सँग रहै, प्रेम अंग आधीन।
मूठी माहिं दिखावही, बिरही को कटि खीन ॥१३६॥

धोबिन लुबधी प्रेम की, ना घर रहै न घाट।
देत फिरै घर घर बगर, लुगरा धरै लिलार ॥१३७॥

सुरत अंग मुख मोरि कै, राखै अधर मरोरि।
चित्त गदहरा ना हरै, बिन देखे वा ओर ॥१३८॥

चोरति चित्त चमारिनी, रूप रंग के साज।
लेत चलायें चाम के, दिन द्वै जोबन राज ॥१३९॥

जावै क्यों नहिं नेम सब, होइ लाज कुल हानि।
जो वाके संग पौढ़ई, प्रेम अधोरी तानि ॥१४०॥

हरी भरी गुन चूहरी, देखत जीव कलंक।
वाके अधर कपोल को, चुवौ परै जिमि रंग ॥१४१॥
परमलता सी लहलही, धरै पैम संयोग।
कर गहि गरै लगाइयै, हरै बिरह को रोग ॥१४२॥

इति

बरवै नायक-भेद

[दोहा]

कवित कह्यो दोहा कह्यो, तुलै न छप्पय छंद।
बिरच्यो यहै बिचार कै, यह बरवै रस कंद ॥ १ ॥

[मंगलाचरण]

बंदौं देवि सरदवा, पद कर जोरि।
बरनत काव्य बरैवा, लगै न खोरि ॥ २ ॥

[उत्तमा]

लखि अपराध पियरवा, नहिं रिस कीन।
बिहँसत चनन चउकिया, बैठक दीन ॥ ३ ॥

[मध्यमा]

बिनु गुन पिय-उर हरवा, उपट्यो हेरि।
चुप ह्वै चित्र पुतरिया, रहि मुख फेरि ॥ ४ ॥

[अधमा]

बेरिहि बेर गुमनवा, जनि करु नारि।
मानिक औ गजमुकता[१], जौ लगि बारि ॥ ५ ॥

[स्वकीया]

रहत नयन के कोरवा, चितवनि छाय।
चलत न पग-पैजनियाँ, मग अहटाय ॥ ६ ॥

[मुग्धा]

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥७ ॥

पाठा० १—मानुष औ गज मोतियाँ।

लागे आन नवेलियहिं, मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान॥ ८ ॥

[अज्ञातयौवना]

कवन रोग दुहुँ छतिया, उपजे आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय[१] ॥ ९ ॥

[ज्ञातयौवना]

औचक आइ जोबनवाँ, मोहि दुख दीन।
छुटिगा संग गोइअवाँ, नहिं भल कीन ॥१०॥

[नवोढ़ा]

पहिरति चूनि चुनरिया, भूपन भाव।
नैननि देत कजरवा, फूलनि-चाव ॥११॥

[विश्रब्ध नवोढ़ा]

जंघन जोरत गोरिया, करत कठोर।
छुअन न पावै पियवा, कहुँ कुच-कोर ॥१२॥

[मध्यमा]

ढीलि आँख जल अँचवत, तरुनि सुभाय।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय ॥१३॥

[प्रौढ़ा रतिप्रीता]

भोरहि बोलि कोइलिया, बढ़वति ताप।
घरी एक घरि अलवा[२], रह चुपचाप ॥१४॥

[परकीया]

सुनि सुनि[३] कान मुरलिया, रागन भेद।
गैल न छाँड़त गोरिया, गनत न खेद ॥१५॥

पाठान्तर १—लाय।
२—घरि एक घरि अलिया।
३—धुनि।

[ऊढ़ा]

निसु दिन सासु ननदिया, मुहि घर हेर[1]।
सुनन न देत मुरलिया, मधुरी[2] टेर ॥१६॥

[अनूढ़ा]

मोहि बर जोग कन्हैया, लागौं पाय।
तुहु कुल पूज देवतवा[3], होहु सहाय ॥१७॥

[भूत सुरति-संगोपना]

चूनत फूल गुलबवा, डार कटील।
टुटिगा बंद अँगियवा, फट पट नील ॥१८॥
आयेसि कवनेउ ओरवा[4], सुगना सार।
परिगा दाग अधरवा, चोंच चोटार ॥१९॥

[वर्तमान सुरति-गोपना]

मैं पठयेउँ जिहि कमवाँ, आयेस साध।
छुटिगा सीस को जुरवा, कसि के बाँध ॥२०॥
मुहि तुहि हरबर आवत, भा पथ खेद।
रहि रहि लेत उससवा, बहत प्रसेद ॥२१॥

[भविष्य सुरति-गोपना]

होइ कत आइ बदरिया, बरखहि पाथ।
जैहौं घन अमरैया, सुगना[5] साथ ॥२२॥
जैहौं चुनन कुसुमियाँ, खेत बड़ि दूर।
नौआ[6] केर छोहरिया, मुहि सँग कूर ॥२३॥

[क्रिया-विदग्धा]

बाहिर लै के दियवा, बारन जाय।
सासु ननद ढिग पहुँचत, देत बुझाय ॥२४॥

पाठान्तर १—घेर। २—नाधुन। ३—तुमको पुज देवतवा। ४—अब नहिं तोहिं पढ़ावों। ५—संग न। ६—तोरेसि।

[वचन-विदग्धा]

तनिक सी[१] नाक नथुनिया, मित हित नीक ।
कहति नाक पहिरावहु, चित दै सींक ॥२५॥

[लक्षिता]

आजु नैन के कजरा,[२] औरै भाँत ।
नागर नेह नबेलिया, मुदिने[३] जात ॥२६॥

[अन्य-सुरति-दुःखिता]

बालम अस मन मिलियउँ, जस पय पानि ।
हंसिनि भइल सवतिया, लइ बिलगानि ॥२७॥

[प्रेमगर्विता]

आपुहि देत जवकवा,[४] गूँदत हार ।
चुनि पहिराव चुनरिया, प्रानअधार ।२८॥
अवरन पाय जवकवा, नाइन दीन ।
मुहि पग आगर गोरिया, आनन कीन[५] ॥२९॥

[रूप-गर्विता]

खीन. मलिन बिखभैया, औगुन तीन ।
मोहि कहत बिधुबदनी, पिय मतिहीन[६] ॥३०॥
दाँतुल भयसि सुगरुवा[७], निरस पखान ।
यह मधु भरल अधरवा, करसि गुमान ॥३१॥

पाठान्तर १—थोरेसि । २—कोरवा । ३—मूँदि न । ४—कजरवा ।
५—तुम्हें अगोरत गोरिया, न्हान न कीन । ६—पिय कह
चन्द बदनिया, हियमति हीन । ७—गातुल भयेसि मुँगउवा ।

[प्रथम अनुशयाना, भावी-संकेतनष्टा]

धीरज धरु किन गोरिया, करि अनुराग।
जात जहाँ पिय देसवा, घन[1] बन[2] बाग ॥३२॥
जनि मरु रोय दुलहिया, कर मन ऊन।
सघन कुंज ससुररिया, औ घर सून ॥३३॥

[द्वितीय अनुशयाना, संकेत विघट्टना]

जमुना तीर तरुनिअहिं, लखि भा सूल।
झरिगा रूख बेइलिया, फुलत न फूल ॥३४॥
ग्रीषम दवत दवरिया, कुंज कुटीर।
तिमि तिमि तकत तरुनिअहिं, बाढ़ी पीर[3] ॥३५॥

[तृतीय अनुशयाना, रमणागमना]

मितवा करत बँसुरिया, सुमन सपात।
फिरि फिरि तकत तरुनिया, मन पछतात ॥३६॥
मित उत तें फिरि आयेउ, देखु न राम।
मैं न गई अमरैया, लहेउ न काम ॥३७॥

[मुदिता]

नेवते गइल ननदिया, मैके सासु।
दुलहिन तोरि खबरिया, आवै आसु ॥३८॥
जैहों काल नेवतवा, भा[4] दुख दून।
गाँव करेसि रखवरिया, सब घर सून ॥३९॥

[कुलटा]

जस मद मातल हथिया, हुमकत जात[5]।
चितवत जात तरुनिया, मन मुसकात[6] ॥४०॥

पाठान्तर १—धन। २—घर। ३—पीत। ४—भव। ५—जाय।
६—मुहु मुसकाय।

चितवत ऊँच अटरिया, दहिने बाम।
लाखन लखत बिछियवा, लखी[1] सकाम ॥४१॥

[सामान्या, गणिका]

लखि लखि धनिक नयकवा[2], बनवत भेष।
रहि गइ हेरि अरसिया, कजरा रेख[3] ॥४२॥

[मुग्धा प्रोषितपतिका]

कासो कहौं संदेसवा, पिय परदेसु।
लागेहु चइत[4] न फूले, तेहि बन[5] टेसु ॥४३॥

[मध्या प्रोषितपतिका]

का तुम जुगुल तिरियवा, झगरति आय[6]।
पिय बिन मनहुँ अटरिया,[7] मुहि न सुहाय[8] ॥४४॥

[प्रौढ़ा प्रोषितपतिका]

तैं अब जासि[9] बेइलिया, बरु[10] जरि मूल।
बिनु पिय सूल करेजवा, लखि तुअ फूल ॥४५॥
या झर में घर घर में, मदन हिलोर।
पिय नहिं अपने कर में, करमै खोर ॥४६॥

[मुग्धा खंडिता]

सखि सिख मान[11] नवेलिया, कीन्हेसि मान।
पिय बिन[12] कोपभवनवा, ठानेसि ठान ॥४७॥
सीस नवाय नवेलिया, निचवइ जोय।
छिति खनि छोर छिगुनिया, सुसुकति रोय[13] ॥४८॥

पाठान्तर १—लखत बिदेसिया ह्वै बस। २—धनिअवा। ३—नेख। ४—रातुल ह्वै। ५—उहि बिन। ६—मंजु मलतिया झलरति जाय। ७—हुकरैया। ८—सुहाति। ९—जाइ। १०—बरि। ११—सीखि। १२—लखि। १३—रोइ।

[मध्या खंडिता]

गिरि गइ पीय पगरिया[1], आलस पाइ ।
पवढ़हु जाइ बरोठवा, सेज डमाइ ॥ ४९ ॥
पोछहु अधर[2] कजरवा, जावक भाल ।
उपजेउ[3] पीतम छतिया, बिनु गुन माल ॥ ५० ॥

[प्रौढ़ा खंडिता]

पिय आवत अँगनैया, उठि कै लीन ।
साथे[4] चतुर तिरियवा, बैठक दीन ॥ ५१ ॥
पवढ़हु पीय पलँगिया, मींजहुँ पाय ।
रैनि जगे कर निंदिया, सब मिटि जाय ॥ ५२ ॥

[परकीया खंडिता]

जेहि लगि सजन सनेहिया[5], छुटि घर बार ।
आपन हित परिवरवा[6], सोच परार ॥ ५३ ॥

[गणिका खंडिता]

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल ।
लियेसि काढ़ि बइरिनिया, तकि मनिमाल ॥ ५४ ॥

[मुग्धा कलहांतरिता]

आयेहु अबहिं गवनवा, जुरुते मान ।
अब रस लागिहि[7] गोरिअहि, मन पछतान ॥ ५५ ॥

[मध्या कलहांतरिता]

मैं मतिमंद तिरियवा, परिलिऊँ भोर ।
तेहि नहिं कंत मनउलिउँ, तेहि कछु खोर ॥ ५६ ॥

पाठान्तर १—ठकि गौ पीय पलँगिया । २—अनख । ३—उपज्यौ । ४—बिहँसत । ५—सनेहआ । ६—अपने हित पियरवा । ७—लागा ।

[प्रौढ़ा कलहांतरिता]

थकि गा करि मनुहरिया[1], फिरि गा पीय।
मैं उठि तुरति न लायेउँ, हिमकर हीय ॥ ५७ ॥

[परकीया कलहांतरिता]

जेहि लगि कीन बिरोधवा, ननद जिठानि।
रखिउँ न लाइ करेजवा, तेहि हित जानि ॥ ५८ ॥

[गणिका कलहांतरिता]

जिहि दीन्हेउ बहु बिरिया, मुहि मनिमाल।
तिहि ते रूठिउँ सखिया, फिरि गे लाल ॥ ५९ ॥

[मुग्धा विप्रलब्धा]

लखे[2] न कंत सहेटवा, फिरि दुबराय[3]।
धनिया कमलबदनिया, गइ कुम्हिलाय ॥ ६० ॥

[मध्या विप्रलब्धा]

देखि न केलि-भवनवा, नंदकुमार।
लै लै ऊँच उससवा, भइ बिकरार ॥ ६१ ॥

[प्रौढ़ा विप्रलब्धा]

देखि न कंत सहेटवा, भा दुख पूर।
भौ तन नैन कजरवा, होय[4] गा भूर ॥ ६२ ॥

[परकीया विप्रलब्धा]

बैरिन भा[5] अभिसरवा, अति दुख दानि।
प्रातउ[6] मिलेउ न मितवा, भइ पछितानि ॥ ६३ ॥

[गणिका विप्रलब्धा]

करिकै सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ।
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ ॥ ६४ ॥

पाठान्तर १—मन का हरिया। २—मिलेउ। ३—लखेउ डेरार। ४—भै। ५—महँ। ६—तापर।

[मुग्धा उत्कंठिता]

भा[1] जुग जाम जमिनिया, पिय नहिं आय।
राखेउ कवन सवतिया, रहि बिलमाय ॥ ६५ ॥

[मध्या उत्कंठिता]

जोहत तीय अँगनवा, पिय की बाट।
बेंचेउ चतुर तिरियवा, केहि के हाट ॥ ६६ ॥

[प्रौढ़ा उत्कंठिता]

पिय पथ हेरत गोरिया, भा भिनसार।
चलहु न करिहि तिरियवा, तुश्र इतबार ॥ ६७ ॥

[परकीया उत्कंठिता]

उठि उठि जात खिरिकिया, जोहत बाट।
कतहुँ न आवत मितवा, सुनि सुनि[2] खाट ॥ ६८ ॥

[गणिका उत्कंठिता]

कठिन नींद भिनुसरवा, आलस पाइ।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाइ ॥ ६९ ॥

[मुग्धा वासकसज्जा]

हरुए गवन नबेलिया, दीठि बचाइ।
पौढ़ी जाइ पलँगिया, सेज बिछाइ ॥ ७० ॥

[मध्या वासकसज्जा]

सुभग[3] बिछाय पलँगिया, अंग सिंगार।
चितवत चौंकि तरुनिया, दै दृग द्वार[4] ॥ ७१ ॥

[प्रौढ़ा वासकसज्जा]

हँसि हँसि[5] हेरि अरसिया, सहज सिंगार।
उतरत चढ़त नबेलिया, तिय कै बार ॥ ७२ ॥

पाठान्तर १—गौ। २—सूनी। ३—सेज। ४—दहुकै बार। ५—हरि।

[परकीया वासकसज्जा]

सोवत सब गुरु लोगवा, जानेउ बाल।
दीन्हेस खोलि खिरकिया, उठि कै हाल ॥ ७३ ॥

[सामान्या वासकसज्जा]

कीन्हेसि सबै सिंगरवा, चातुर बाल।
ऐहै प्रानपिअरवा, लै मनिमाल ॥ ७४ ॥

[मुग्धा स्वाधीनपतिका]

आपुहि देत जवकवा, गहि गहि पाय।
आपु देत मोहि पिअवा, पान खवाय ॥ ७५ ॥

[मध्या स्वाधीनपतिका]

प्रीतम करत पियरवा, कहत न जात।
रहत गढ़ावत सोनवा, इहै सिरात ॥ ७६ ॥

[प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका]

मैं अरु मोर पियरवा, जस जल मीन।
बिछुरत तजत परनवा, रहत अधीन ॥ ७७ ॥

[परकीया स्वाधीनपतिका]

भो जुग नैन चकोरवा, पिय मुख चंद।
जानत हैं तिय अपुनै, मोहि सुखकंद ॥ ७८ ॥

[सामान्या स्वाधीनपतिका]

लै हीरन के हरवा, मानिकमाल।
मोहि रहत पहिरावत, बस है लाल ॥ ७९ ॥

[मुग्धा अभिसारिका]

चलीं लिवाइ नबेलिअहि, सखि सब संग।
जस हुलसत गा गोदवा, मत्त मतंग ॥ ८० ॥

[मध्या अभिसारिका]

पहिरे लाल अछुअवा, तिय-गज पाय।
चढ़े नेह-हथिअवहा, हुलसत जाय ॥ ८१ ॥

[प्रौढ़ा अभिसारिका]

चली रैनि अँधिअरिया, साहस गाढ़ि।
पायन केर कँगनिया, डारेस काढ़ि ॥ ८२ ॥

[परकीया कृष्णाभिसारिका]

नील मनिन के हरवा, नील सिंगार।
किए रैनि अँधिअरिया, धनि अभिसार ॥ ८३ ॥

[शुक्लाभिसारिका]

सेत कुसुम के हरवा, भूषन सेत।
चली रैनि उँजिअरिया, पिय के हेत ॥ ८४ ॥

[दिवाभिसारिका]

पहिरि बसन जरतरिया, पिय के होत।
चली जेठ दुपहरिया, मिलि रबि जोत ॥ ८५ ॥

[गणिका अभिसारिका]

धन हित कीन्ह सिंगरवा, चातुर बाल।
चली संग लै चेरिया, जहवाँ लाल ॥ ८६ ॥

[मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका]

परिगा कानन सखिया, पिय कै गौन।
बैठी कनक पलँगिया, ह्वै कै मौन ॥ ८७ ॥

[मध्या प्रवत्स्यत्पतिका]

सुठि सुकुमार तरुनिया, सुनि पिय-गौन।
लाजनि पौढ़ि ओबरिया, ह्वै कै मौन ॥ ८८ ॥

[प्रौढ़ा प्रवत्स्यत्पतिका]

बन घन फूलहि टेसुआ, बगिअनि बेलि ।
चलेउ बिदेस पियरवा, फगुआ फेलि ॥ ८९ ॥

[परकीया प्रवत्स्यत्पतिका]

मितवा चलेउ बिदेसवा, मन अनुरागि ।
पिय[1] को सुरत गगरिया, रहि मग लागि ॥ ९० ॥

[गणिका प्रवत्स्यत्पतिका]

पीतम इक सुमिरिनिया, मुहि देइ जाहु ।
जेहि जप तोर बिरहवा, करब निबाहु ॥ ९१ ॥

[मुग्धा आगतपतिका]

बहुत दिवस पर पियवा, आयेउ आज ।
पुलकित नवल दुलहिया, कर गृह-काज ॥ ९२ ॥

[मध्या आगतपतिका]

पियवा आय दुअरवा, उठि किन देख ।
दुरलभ पाय बिदेसिया, मुद अवरेख[2] ॥ ९३ ॥

[प्रौढ़ा आगतपतिका]

आवत सुनत तिरियवा, उठ हरषाइ ।
तलफत मनहुँ मछरिया, जनु जल पाइ[3] ॥ ९४ ॥

[परकीया आगतपतिका]

पूछन चली खबरिया, मितवा तीर ।
हरखित अतिहि[4] तिरियवा, पहिरत चीर ॥ ९५ ॥

पाठान्तर १—तिय । २—जिय के लेखु । ३—यौवन प्रान पिअरवा हेरउ आय । तलफत मीन तिरिअवा जिमि जल पाय । ४—नैहर खोज

[गणिका आगतपतिका]

तौ लगि मिटिहि न मितवा, तन की पीर।
जौ लगि पहिर न हरवा, जटित सुहीर ॥ ९६ ॥

[नायक]

सुंदर चतुर धनिकवा, जाति कै ऊँच।
केलि-कला परबिनवा, सील समूच ॥ ९७ ॥

[नायक भेद]

पति, उपपति, बैसिकवा, त्रिबिध बखान।

[पति लक्षण]

बिधि सो ब्याह्यो गुरु जन, पति सो जानि ॥ ९८ ॥

[पति]

लैकै सुघर खुरुपिया, पिय के साथ।
छइबै एक छतरिया, बरखत पाथ ॥ ९९ ॥

[अनुकूल]

करत न हिय[1] अपरधवा, सपनेहुँ पीय।
मान करन की बेरिया[2], रहि गइ हीय[3] ॥ १०० ॥

[दक्षिण]

सौतिन करहिं निहोरवा, हम कह देहु।
चुन चुन चंपक चुरिया, उच से लेहु ॥ १०१ ॥

[शठ]

छूटेउ लाज डगरिया[4], औ कुल कानि।
करत जात अपरधवा, परि गइ बानि ॥ १०२ ॥

---

(९८) यह नवीन संग्रह में नहीं है।

पाठा० १—नहीं। २—सधवा। ३—जीव। ४—गरियवा।

(१०१) सब मिलि करैं निहोरवा हम कहँ देहु।
गहि गुहि चंपक टंडिया उचय सो लेहु।

[धृष्ट]

जहवाँ जात रइनियाँ, तहवाँ जाहु ।
जोरि नयन निरलजवा, कत मुसुकाहु ॥ १०३ ॥

[उपपति]

झाँकि झरोखन गोरिया, अँखियन जोर
फिरि चितवत चित मितवा, करत निहोर ॥ १०४ ॥

[बचन-चतुर]

सघन कुंज अमरैया, सीतल छाँह ।
झगरत आय कोइलिया, पुनि उड़ि जाह ॥ १०५ ॥

[क्रिया-चतुर]

खेलत जानेसि टोलवा[1], नंद-किसोर ।
छुइ बृषभानु-कुँअरिया, होइगा चोर ॥ १०६ ॥

[वैसिक]

जनु अति नील [illegible], बनसी लाय[2] ।
मो मन बारबधुअवा, मीन बझाय ॥ १०७ ॥

[प्रोषित नायक]

करबौं ऊँच अटरिया, तिय संग केलि ।
कबधौं पहिरि गजरवा, हार चमेलि ॥ १०८ ॥

[मानी]

अब भरि जनम सहेलिया, तकब न ओहि ।
ऐंठलि गइ अभिमानिया, तजि कै मोहि ॥ १०९ ॥

[स्वप्न-दर्शन]

पीतम मिलेउ सपनवाँ, भइ सुख-खानि ।
आनि जगाएसि चेरिया, भइ दुखदानि ॥ ११० ॥

१—टोलिया । २—लटकी नील जुलुफिआ बनसी भाइ ।

[चित्र दर्शन]

पिय मूरति चितसरिया, चितवत बाल ।
सुमिरत[1] अवध बसरवा, जपि जपि माल ॥१११॥

[श्रवण]

आयेउ मीत बिदेसिया, सुन सखि तोर ।
उठि किन करसि सिंगरवा, सुनि सिख मोर ॥११२॥

[साक्षात् दर्शन]

बिरहिन अवर बिदेसिया, भे इक ठौर ।
पिय मुख नकन तिरियवा, चंद चकोर ॥११३॥

[मंडन]

सखियन कीन्ह सिंगरवा, रचि बहु भाँति ।
हेरति नैन अरसिया, मुरि मुसुकाति ॥११४॥

[शिक्षा]

छाकहु बैठ दुअरिया, मींजहु पाय[2] ।
पिय तन पेखि गरमिया, बिजन डोलाय ॥११५॥

[उपालंभ]

चुप होइ रहेउ संदेसवा, सुनि मुसुकाय ।
पिय निज कर बिछवनवा, दीन्ह उठाय[3] ॥११६॥

[परिहास]

बिहँसति भौंहँ चढ़ाये, धनुष मनीय[4] ।
लावत उर अबलनिया, उठि उठि पीय[5] ॥११७॥

पाठान्तर १—चितवत । २—थके बइठि गोड़वरिआ मींजहु पाउ ।
३—हाथ बिरवना दीन्ह पठाय । ४—मनोज । ५—उपटनवा ऐंठि उरोज ।

बरवै

बन्दौं बिघन-बिनासन, ऋधि-सिधि ईस।
निर्मल बुद्धि-प्रकासन, सिसु ससि सीस ॥ १ ॥

सुमिरौं मन दृढ़ करिकै, नन्दकुमार।
जे बृषभानु-कुंवरि कै, प्रान-अधार ॥ २ ॥

भजहु चराचर-नायक, सूरज देव।
दीन जनन सुखदायक, तारन एव ॥ ३ ॥

ध्यावौं सोच-बिमोचन, गिरिजा-ईस।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि-सीस ॥ ४ ॥

ध्यावौं बिपद-बिदारन, सुवन-समीर।
खल-दानव-बन-जारन, प्रिय रघुबीर ॥ ५ ॥

पुन पुन बन्दौं गुरु के, पद-जलजात।
जिहि प्रताप तैं मन के, तिमिर बिलात ॥ ६ ॥

करत घुमड़ि घन घुरवा, मुरवा सोर।
लगि रह बिकसि अँकुरवा, नन्दकिसोर ॥ ७ ॥

बरसत मेघ चहूँ दिसि, मूसर धार।
सावन आवन कीजत, नन्दकुमार ॥ ८ ॥

अजौं न आये सुधि कै, सखि घनश्याम।
राख लिये कहुँ बसि कै, काहू बाम ॥ ९ ॥

कबलौं रहिहै सजनी, मन में धीर।
सावन हूँ नहिं आवन, कित बलबीर ॥ १० ॥

घन घुमड़े चहुँ ओरन, चमकत बीज।
पिय प्यारी मिलि झूलत, सावन-तीज ॥ ११ ॥

पीव पीव कहि चातक, सठ अधरात।
करत बिरहनी तिय के, हिय उतपात॥१२॥
सावन आवन कहिगे, स्याम सुजान।
अजहुँ न आये सजनी, तरफत प्रान॥१३॥
मोहन लेउ मया करि, मो सुधि आय।
तुम बिन मीत अहर-निसि, तरफत जाय॥१४॥
बढ़त जात चित दिन दिन, चौगुन चाव।
मनमोहन तैं मिलबौ, सखि कहँ दाँव॥१५॥
मनमोहन बिन देखे, दिन न सुहाय।
गुन न भूलिहौं सजनी, तनक मिलाय॥१६॥
उमड़ि-उमड़ि घन घुमड़े, दिसि बिदिसान।
सावन दिन मनभावन, करत पयान॥१७॥
समुझत सुमुखि सयानी, बादर झूम।
बिरहिन के हिय भभकत, तिनकी धूम॥१८॥
उलहे नये अँकुरवा, बिन बलबीर।
मानहु मदन महिप के, बिन पर तीर॥१९॥
सुगमहि गातहि गारन, जारन देह।
अगम महा अति पारन, सुघर सनेह॥२०॥
मनमोहन तुव मूरति, बेरिझवार।
बिन पयान मुहि बनिहै, सकल बिचार॥२१॥
झूमि झूमि चहुँ ओरन, बरसत मेह।
त्यों त्यों पिय बिन सजनी, तरफत देह॥२२॥
झूठी झूठी सौहैं, हरि नित खात।
फिर जब मिलत मरूके, उतर बतात॥२३॥

डोलत त्रिबिध मरुतवा, सुखद सुढार।
हरि बिन लागत सजनी, जिमि तरवार ॥२४॥
कहियो पथिक सँदेसवा, गहि कै पाय।
मोहन तुम बिन तनकहु, रह्यौ न जाय ॥२५॥

जब ते आयौ सजनी, मास असाढ़।
जानी सखि वा तिय के, हिय की गाढ़ ॥२६॥

मनमोहन बिन तिय के, हिय दुख बाढ़।
आयो नन्द-ढोटनवा, लगत असाढ़ ॥२७॥

बेद पुरान बखानत, अधम-उधार।
केहि कारन करुनानिधि, करत बिचार ॥२८॥

लगत असाढ़ कहत हो, चलन किसोर।
घन घुमड़े चहुँ ओरन, नाचत मोर ॥२९॥

लखि पावस ऋतु सजनी, पिय परदेस।
गहन लग्यौ अवलनि पै, धनुष सुरेस ॥३०॥

बिरह बढ्यौ सखि अंगन, बढ्यौ चबाव।
कर्‌यौ निठुर नँदनंदन, कौन कुदाव? ॥३१॥

भज्यौ कितै न जनम भरि, कितनी जाग।
सँग रहत या तन की, छाँही भाग ॥३२॥
भज रे मन नदनंदन, बिपति बिदार।
गोपी- जन-मन-रंजन, परम उदार ॥३३॥

जदपि बसत हैं सजनी, लाखन लोग।
हरि बिन कित यह चित को, सुख संजोग ॥३४॥
जदपि भई जल-पूरित, छितव सुआस।
स्वाति बूँद बिन चातक, मरत पिआस ॥३५॥

देखन ही को निस दिन, तरफत देह।
यही होत मधुसूदन, पूरन नेह ॥ ३६ ॥
कब तें देखत सजनी, बरसत मेह।
गनत न चढ़े अटन पै, सने सनेह ॥ ३७ ॥
बिरह बिथा तें लखियत, मरिबौ भूरि।
जौ नहिं मिलिहै मोहन, जीवन मूरि ॥ ३८ ॥
ऊधो भलो न कहनौ, कछु पर पूठि।
साँचे ते भे झूठे, साँची झूठि ॥ ३९ ॥
भादों निस अँधिअरिया, घर अँधिआर।
बिसर्यौ सुघर बटोही, [illegible] ॥ ४० ॥
हौं लखिहौं री सजनी, चौथ-मयंक।
देखौं केहि बिधि हरि सों, लगै कलंक ॥ ४१ ॥
इन बातन कछु होत न, कहौ हजार।
सब ही तैं हँसि बोलत, नन्द-कुमार ॥ ४२ ॥
कहा छलत हो ऊधो, दै परतीति।
सपनेहू नहिं बिसरै, मोहन-मीति ॥ ४३ ॥
बन उपबन गिरि सरिता, जिती कठोर।
लगत दहे से बिछुरे, नंद किसोर ॥ ४४ ॥
भलि भलि दरसन दीनेहु, सब निसि टारि।
कैसे आवन कीनेहु, हौं बलिहारि ॥ ४५ ॥
आदिहि ते सब छुट गा, जग ब्योहार।
ऊधो अब न तिनौं भरि, रही उधार ॥ ४६ ॥
घेर रह्यो दिन रतियाँ, बिरह बलाय।
मोहन की वह बतियाँ, ऊधो हाय ॥ ४७ ॥
नर नारी मतवारी, अचरज नाहिं।
होत बिटप हू नाँगे, फागुन माँहिं ॥ ४८ ॥

सहज हँसोई बातें, होत चवाइ।
मोहन को तनि सजनी, दै समुझाइ ॥ ४९ ॥
ज्यों चौरासी लख में, मानुष देह।
त्योंही दुर्लभ जग में, सहज सनेह ॥ ५० ॥
मानुष तन अति दुर्लभ, सहजहि पाय।
हरि-भजि कर सत संगति, कह्यो जताय ॥ ५१ ॥
अति अद्भुत छबि-सागर, मोहन-गात।
देखत ही सखि बूड़त, दृग-जलजात ॥ ५२ ॥
निरमोही अति झूठो, साँवर गात।
चुभ्यो रहत चित कोधौं, जानि न जात ॥ ५३ ॥
बिन देखे कल नाहिंन, इन अँखियान।
पल पल कटत कलप सों, अहो सुजान ॥ ५४ ॥
जब तब मोहन झूठी, सौंहें खात।
इन बातन ही प्यारे, चतुर कहात ॥ ५५ ॥
ब्रज-बासिन के मोहन, जीवन प्रान।
ऊधो यह सँदेसवा, अकह कहान ॥ ५६ ॥
मोहि मीत बिन देखे, छिन न सुहात।
पल पल भरि भरि उलझत, दृग जलजात ॥ ५७ ॥
जब तें बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
रहत भर्‌यो हिय साँसन, आँसुन नैन ॥ ५८ ॥
कैसे जावत कोऊ, दूरि बसाय।
पल अन्तर हू सजनी, रह्यो न जाय ॥ ५९ ॥
जान कहत हौ ऊधो, अवधि बताइ।
अवधि अवधि लौं दुस्तर, परत लखाइ ॥ ६० ॥
मिलन न बनिहै भाखत, इन इक टूक।
भये सुनत ही हिय के, अगनित टूक ॥ ६१ ॥

गये हेरि हरि सजनी, बिहँसि कछूक ।
तब ते लगनि अगनि की, उठत भबूक ॥ ६२ ॥
मनमोहन की सजनी, हँसि बतरान ।
हिय कठोर कीजत पै, खटकत आन ॥ ६३ ॥
होरी पूजत सजनी, जुर नर नारि ।
हरि बिनु जानहु जिय में, दई दवारि ॥ ६४ ॥
दिस बिदसान करत ज्यों, कोयल कूक ।
चतुर उठत है त्यों त्यों, हिय में हूक ॥ ६५ ॥
जब तें मोहन बिछुरे, कछु सुधि नाहिं ।
रहे प्रान परि पलकनि, दृग मग माहिं ॥ ६६ ॥
उझकि उझकि चित दिन दिन, हेरत द्वार ।
जब तें बिछुरे सजनी, नन्दकुमार ॥ ६७ ॥
जक न परत बिन हेरे, सखिन सरोस ।
हरि न मिलत बसि नेरे, यह अफसोस ॥ ६८ ॥
चतुर मया करि मिलिहौ, तुरतहिं आय ।
बिन देखे निस बासर, तरफत जाय ॥ ६९ ॥
तुम सब भाँतिन चतुरे, यह कल बात ।
होरी से त्यौहारन, पीहर जात ॥ ७० ॥
और कहा हरि कहिये, धनि यह नेह ।
देखन ही को निस दिन, तरफत देह ॥ ७१ ॥
जब तें बिछुरे मोहन, भूख न प्यास ।
बेरि बेरि बढ़ि आवत, बड़े उसास ॥ ७२ ॥
अन्तरगत हिय बेधत, छेदत प्रान ।
बिष सम परम सबन तें, लोचन बान ॥ ७३ ॥
गली अँधेरी मिलकै, रहि चुप चाप ।
बरजोरी मनमोहन, करत मिलाप ॥ ७४ ॥

सास ननद गुरु पुरजन, रहे रिसाय।
मोहन हू अस निसरे, हे सखि हाय! ॥ ७५ ॥
उन बिन कौन निबाहै, हित की लाज।
ऊधो तुमहू कहियो, धनि ब्रजराज! ॥ ७६ ॥
जेहिके लिये जगत में, बजै निसान।
तेहितें करे अबोलन, कौन सयान ॥ ७७ ॥
रे मन भज निस बासर, श्रीबलबीर।
जे बिन जाँचे टारत, जन की पीर ॥ ७८ ॥
बिरहिन को सब भाखत, अब जनि रोय।
पीर पराई जानै, तब कहु कोय ॥ ७९ ॥
सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर।
बौरी बाँझ न जानै, ब्यावर पीर ॥ ८० ॥
लखि मोहन की बंसी, बंसी जान।
लागत मधुर प्रथम पै, बेधत प्रान ॥ ८१ ॥
कोटि जतनहू फिरत न, बिधि की बात।
चकवा पिंजरे हू सुनि, बिमुख बसात ॥ ८२ ॥
देखि ऊजरी पूछत, बिन ही चाह।
कितने दामन बेचत, मैदा साह ॥ ८३ ॥
कहा कान्ह ते कहनौ, सब जग साखि।
कौन होत काहू के, कुबरी राखि ॥ ८४ ॥
तैं चंचल चित हरि को, लियो चुराइ।
याही तें दुचिती सी, परत लखाइ ॥ ८५ ॥
मी गुज़रद ईं दिलरा, बे दिलदार।
इक इक साअत हम चूँ, साल हज़ार ॥ ८६ ॥
नव नागर पद परसी, फूलत जौन।
मेटत सोक असोक सु, अचरज कौन ॥ ८७ ॥

समुझि मधुप कोकिल की, यह रस रीति ।
सुनहु श्याम की सजनी, का परतीति ॥ ८८ ॥
नृप जोगी सब जानत, होत बयार ।
संदेसन तौ राखत, हरि ब्यौहार ॥ ८९ ॥
मोहन जीवन प्यारे, कस हित कीन ।
दरसन ही कों तरफत, ये द्दग मीन ॥ ९० ॥
भज मन राम सियापति, रघु-कुल-ईस ।
दीनबन्धु दुख टारन, कौसलधीस ॥ ९१ ॥
भज नरहरि नारायन, तजि बकवाद ।
प्रगटि खंभ तें राख्यो, जिन प्रहलाद ॥ ९२ ॥
गोरज-धन-बिच राखत, श्री ब्रजचन्द ।
तिय दामिनि जिमि हेरत, प्रभा अमन्द ॥ ९३ ॥
गर्कज़ मै शुद आलम, चन्द हज़ार ।
बे दिलदार कै गीरद, दिलम करार ॥ ९४ ॥
दिलबर ज़द बर जिगरम, तीर निगाह ।
तपिद: जाँ मीआयद, हरदम आह ॥ ९५ ॥
कै गोयम अहवालम, पेश निगार ।
तनहा नज़र न आयद, दिल लाचार ॥ ९६ ॥
लोग लुगाई हिल मिल, खेलत फाग ।
पर्यौ उड़ावन मोकौं, सब दिन काग ॥ ९७ ॥
मो जिय कौरी सिगरी, ननद जिठानि ।
भई स्याम सों तब तें, तनक पिछानि ॥ ९८ ॥
होत बिकल अनलेखै, सुघर कहाय ।
को सुख पावत सजनी, नेह लगाय ॥ ९९ ॥
अहो सुधाधर प्यारे, नेह निचोर ।
देखन ही को तरसे, नैन चकोर ॥ १०० ॥

आँखिन देखत सब ही, कहत सुधारि।
पै जग साँची प्रीत न, चातक टारि॥ १०१॥
पथिक पाय पनघटवा, कहत पियाव।
पैंया परों ननदिया, फेरि कहाव॥ १०२॥
बरि गइ हाथ उपरिया, रहि गइ आगि।
घर कै बाट बिसरि गइ, गुहनैं लागि॥ १०३॥
अनधन देखि लिलरवा, अनख न धार।
समलहु दिय दुति मनसिज, भल करतार॥ १०४॥
जलज बदन पर थिर अलि, अनखन रूप।
लीन हार हिय कमलहि, डसत अनूप॥ १०५॥

———

(१०१) यहाँ पं० मयाशंकर की प्राप्त प्रति समाप्त होती है।
(१०२) कविता कौमुदी से उद्धृत।
(१०३) का० ना० प्रचारिणी पत्रिका नया संदर्भ भा० ६ पृ० १५१।
(१०४--५) हिन्दी शब्दसागर 'अनख' शब्द।

शृंगार-सोरठ

गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥ १ ॥
तुरुक-गुरुक भरिपूर, डूबि डूबि सुरगुरु उठै।
चातक जातक दूरि, देह दहै बिन देह को ॥ २ ॥
दीपक हिए छिपाय, नवल बधू घर लै चली।
कर बिहीन पछिताय, कुच लखि निज सीसै धुनै ॥ ३ ॥
पलटि चली[1] मुसुकाय, दुति 'रहीम उपजाय अति।
बाती सी उसकाय, मानों दीनी दीप की ॥ ४ ॥
यक नाही यक पीर, हिय रहीम होती रहै।
काहु न भई सरीर, रीति न वेदन एक सी ॥ ५ ॥
रहिमन पुतरी स्याम, मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधों शालिग्राम, रूपे के अरघा धरे ॥ ६ ॥

पाठान्तर—१ पुलकि चली।

मदनाष्टक

शरद-निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन वन निकुंजे कान्ह वंशी बजाई॥
रति, पति, सुत, निद्रा, साइयाँ छोड़ भागीं।
मदन-शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥ १॥
कलित ललित माला वा ज़वाहिर जड़ा था।
चपल चखन वाला चाँदनी में खड़ा था॥
कटि-तट बिच मेला पीत सेला नवेला।
अलि बन अलबेला यार मेरा अकेला॥ २॥
दृग छकित छबीली छेलरा की छरी थी।
मणि-जटित रसीली माधुरी मूँदरी थी॥
अमल कमल ऐसा खूब से खूब देखा।
कहि न सकी जैसा श्याम का हस्त देखा॥ ३॥
कठिन कुटिल कारी देख दिलदार जुलफें।
अलि कलित बिहारी आपने जी की कुलफें॥
सकल शशिकला को रोशनी हीन लेखौं।
अहह ब्रजलला को किस तरह फेर देखौं॥ ४॥
ज़रद बसन वाला गुल-चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुति युग चपला से कुण्डलें झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे॥ ५॥
तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारैं।
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल बिदारैं॥
मधुर मधुप हेरैं माल मस्ती न राखें।
बिलसित मन मेरे सुन्दरी श्याम आँखें॥ ६॥

भुजग जुग किधौं हैं काम कमनैत सोहैं।
नटवर! तुव मोहैं बाँकुरी मानु भौंहैं॥
सुनु सखि! मृदु बानी बे दुरुस्ती अकिल में।
सरल सरल सानी कै गई सार दिल में॥७॥
पकरि परम प्यारे साँवरे को मिलाओ।
असल अमृत प्याला क्यों न मुझको पिलाओ॥
इति बदति पठानी मनमथांगी बिरागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥८॥

फुटकर पद

(घनाक्षरी)

अति अनियारे मानों सान दै सुधारे,
महा बिष के बिषारे ये करत पर-घात हैं।
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै,
साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं॥
बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भये,
तौहू तो 'रहीम' थोरे बिधि ना सकात हैं।
घाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित,
नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं॥ १॥

पट चाहे तन, पेट चाहत छदन, मन
चाहत है धन, जेती संपदा सराहिबी।
तेरोई कहाय कै 'रहीम' कहै दीनबंधु,
आपनी बिपत्ति जाय काके द्वार काहिबी॥
पेट भर खायो चाहे, उद्यम बनायो चाहे,
कुटुँब जियायो चाहे, काढ़ि गुन लाहिबी।
जीविका हमारी जो पै औरन के कर डारो,
ब्रज के बिहारी तो तिहारी कहाँ साहिबी॥ २॥

बड़ेन सों जान पहिचान कै 'रहीम' काह,
जो पै करतार ही न सुख-देनहार है।
सीतहर सूरज सों नेह कियो याही हेत,
ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है॥
नीरनिधि माँहि धँस्यो शंकर के सीस बस्यो,
तऊ ना कलंक नस्यो ससि में सदा रहै।

बड़ो रीझिवार है, चकोर दरबार है,
कलानिधि सो यार तऊ चाखत अँगार है ॥३॥

मोहिबो निछोहिबो सनेह में तो नयो नाहिं,
भले ही निठुर भये काहे को लजाइये।
तन मन रावरे सों मतों के मगन हेतु,
उचरि गये ते कहा तुम्हें खोरि लाइये॥
चित लाग्यो जित जैयें तितही 'रहीम' नित,
धाधवे के हित इत एक बार आइये।
जान हुरसी उर बसी है तिहारे उर,
में सो प्रीत बसी तऊ हँसी न कराइये॥ ४ ॥

(सवैया)

जाति हुती सखि गोहन में मन मोहन को लखिकै ललचानो।
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नंदलाल को रीझिबो जानो॥
जाति भई फिरि कै चितई तब भाव 'रहीम' यहै उर आनो।
ज्यों कमनैत दमानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो ॥५॥

---

(३) नवीन कृत प्रबोध रस सुधासागर में यह पाठ है—
बड़ेन सों जान पहिचान तो कहा 'रहीम'
जो पै करतार ही न सुख देनहार हैं।
सीतहर सूरज सों प्रीति करी पंकज ने,
तऊ कंज वनन को मारत तुपार है॥
उदधि के बीच धँस्यो, शंकर के सीस बस्यो,
तऊ न कलंक नस्यो ससि में सदा रहै।
बड़े रीझिवार हैं चकोर दरबार देख्यो,
सुधाधर यार ए पै चुगत अँगार हैं॥

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु-सरासन दोय किया।
गये गेहहिं त्यागि के ताही समै सुनिकारि पिता बनबास दिया॥
कहे बीच 'रहीम' रह्यो न कछू जिन कीनो हुतो बिनु हार हिया।
बिधि यों न सिया रसबार सिया करबार सिया पिय सार सिया॥६॥
दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो तो 'रहीम' टरै नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहिं हाथ पसारे॥
दैव हँसे अपनी अपना बिधि के परपच न जात विचारे।
बेटा भयो बसुदेव के धाम औ दुँदुभि बाजत नंद के द्वारे॥७॥
पुतरी अतुरीन कहूँ मिलि कै लगि लागि गयो कहुं काहु करैटो।
हिरदै दहिबै सहिबै ही को है कहिबै को कहा कछु है गहि फेटो॥
सूधे चितै तन हाहा करें हू 'रहीम' इतो दुख जात क्यों मेटो।
ऐसे कठोर सों औ चित-चोर सों कौनसी हाय घरी भई भेंटो॥८॥

---

(६) नवीन कृत प्रबोध रस-सुधा-सागर में यह पाठ है—

जिहि कारन वार न लायो कछू गहि संभु सरासन द्वैजु किया।
न हुतो समयो वनवासहु को पै निकास पिता वनवास दिया।
भजि भेद 'रहीम' रह्यौ न कछू करि राख हुतो उन हार हिया।
विधि यों न सिया सुख वार सिया को सुवारसिया पतिवारसिया॥

(७) नवीन ने दूसरा यह पाठ दिया है और सन १८६० की प्रकाशित भाषा-सार में भी यही पाठ है।

दीनो चहै करतार जिन्हें सुख कौन 'रहीम' सकै तिहि टारे।
उद्यम कोउ करौ न करौ धन आवत है बिन ताके हँकारे॥
दैव हँसे सब आपुस में बिधि के परपंच न कोउ निहारे।
बालक आनक दुंदुभी के भयो दुंदुभी बाजत आन के द्वारे॥

कौन धौं सीख 'रहीम' इहाँ इन नैन अनोखियै नेह की नाँधनि।
प्यारे सों पुन्यन भेंट भई यह लोक की लाज बड़ी अपराधनि॥
स्याम सुधानिधि आनन को मरिये सखि सूधे चितैबे की साधनि।
ओट किए रहते न बनै कहते न बनै बिरहानल बाधनि॥९॥

(दोहा)

धर रहसी रहसी धरम, खप जासी खुरसाण।
अमर बिसंभर ऊपरै, राखो नहचौ राण॥ १० ॥
तारायनि ससि रैन प्रति, सूर होंहि ससि गैन।
तदपि अँधेरो है सखी, पीऊ न देखै नैन॥ ११ ॥

(पद)

छबि आवन मोहन लाल की।
काछनि काछें कलित मुरलि कर पीत पिछौरी साल की॥
बंक तिलक केसर को कीने दुति मानो बिधु बाल की।
बिसरत नाहिं सखी मो मन तें चितवनि नयन बिसाल की॥
नीकी हँसनि अधर सधरनि की छबि छीनी सुमन गुलाल की।
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकता माल की॥
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदनगोपाल की।
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस 'रहीम' के हाल की॥ १२॥
कमल-दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं सखी मो मन तें मंद मंद मुसकानि॥

(९) प्रवीन-सार संग्रह से संकलित।
(१०) पाठान्तर—ध्रम रहसी रहसी धरा खिस जासे खुरसाण।
अमर विसंभर ऊपरे, नहचौ राखो राण।

यह दसननि दुति चपला हू तें महा चपल चमकानि।
बसुधा की बसकरी मधुरता सुधा-पगी बतरानि॥
चढ़ी रहे चित उर बिसाल की मुकुतमाल-थहरानि।
नृत्य-समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि॥
अनुदिन श्री बृन्दाबन ब्रज तें आवन आवन जानि।
अब 'रहीम' चित तें न टरति है सकल स्याम कीबानि॥१३॥

रहीम काव्य

(श्लोक)

आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण ! या भूमिका ।
व्योमाकाशखखांबराब्धिवसुवस्त्वत्प्रीतयेऽद्यावधि ॥
प्रीतस्त्वं यदि चेन्निरीक्ष भगवन् स्वप्रार्थितं देहि मे ।
नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशीं भूमिकाम् ॥१॥

(अर्थ)

हे श्रीकृष्ण ! आपके प्रीत्यर्थ आज तक मैं नट की चाल पर आप के सामने लाया जाने से चौरासी लाख रूप धारण करता रहा । हे परमेश्वर ! यदि आप इसे (दृश्य) देख कर प्रसन्न हुये हों तो जो मैं माँगता हूँ उसे दीजिए और नहीं प्रसन्न हों तो ऐसी आज्ञा दीजिए कि मैं फिर कभी ऐसे स्वाँग धारण कर इस पृथ्वी पर न लाया जाऊँ ।

कबहुँक खग मृग मीन कबहुँ मर्कटतनु धरि कै ।
कबहुंक सुर-नर-असुर-नाग-मय आकृति करि कै ॥
नटवत् लख चौरासि स्वाँग धरि धरि मैं आयो ।
हे त्रिभुवन के नाथ ! रीझ को कछू न पायो ॥
जो हो प्रसन्न तो देहु अब मुकति दान माँगहु बिहँस ।
जो पै उदास तो कहहु इम मत धरु रे नर स्वाँग अस ॥

(खानखानाँ कृत)

बपु लख चौरासी सजे नट सम 'रिझवन तोहि ।
निरखि रीझि गति देहु कै खीझि निबारहु मोहि ॥

(भारतेन्दु जी कृत)

---

(१) पाठान्तर—प्रीतश्चेदथ तां निरीक्ष्य भगवन मत्······।
पुनर्मामीदृशींभूमिकां ।

रिझवन हित श्रीकृष्ण, स्वाँग मैं बहु बिध लायो।
पुर तुम्हार है अवनि अहबह रूप दिखायो॥
गगन-बेत-ख-ख-व्योम-वेद-बसु-स्वाँग दिखाए।
अंत रूप यह मनुष रीझ के हेतु बनाए॥
जो रीझे तो दीजिए ललित रीझ जो चाय।
नाराज भए तो हुकम करु, रे स्वाँग फेरि मत लाय॥[1]

(श्लोक)

रत्नाकरोऽस्ति सदनं गृहिणी च पद्मा
किं देयमस्ति भवते जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसे मनसे च तुभ्यं
दत्तं मया निजमनस्तदिद गृहाण॥ २॥

(अर्थ)

रत्नाकर अर्थात् समुद्र आपका गृह है और लक्ष्मी जी आप की गृहिणी हैं, तब हे जगदीश्वर! आप ही बतलाइए कि आप को क्या देने योग्य बच गया? राधिका जी ने आप का मन हरण कर लिया है और मेरा मन मेरे पास है, जिसे मैं आप को देता हूँ, उसे ग्रहण कीजिए।

रत्नाकर गृह, श्री प्रिया देय कहा जगदीश।
राधा मन हरि लीन्ह तव कस न लेहु मम ईश॥ (रत्न)

(श्लोक)

अहिल्या पाषाणः प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू-
र्गुहो भूच्चांडालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम्॥

१ मलसीर के ठाकुर भूरि सिंह के 'विविध-संग्रह' पृष्ठ ८६ पर इसी आशय का पहला छप्पय खानखानाँ कृत दिया है और यह दूसरा छप्पय मुं० देवीप्रसाद जी ने किसी अज्ञात कवि का दिया है।

अहं चित्ते नाश्मः पशुरपि तवार्चादिकरणे।
क्रियाभिश्चांडालो रघुवर न मामुद्धरसि किम् ॥ ३ ॥

अर्थ—अहिल्या जी पत्थर थीं, बंदरों का समूह पशु था और निषाद चांडाल था पर तीनों को आपने अपने पद में शरण दिया। मेरा चित्त पत्थर है, आपके पूजन में पशु समान हूँ और कर्म भी चांडाल सा है इसलिए मेरा क्यों नहीं उद्धार करते। इसी भावार्थ का दोहा नं० १४४ भी है।

(श्लोक)

यद्यात्रया व्यापकता हता ते भिदैकता वाक्परता च स्तुत्या ॥
ध्यायेन बुद्धेः परतः परेशं जात्याजतात्तन्तुमिहार्हसित्वम् ॥४॥

(अर्थ)

अर्थ—यात्रा करके मैंने आपकी व्यापकता, भेद से एकता, स्तुति करके वाक्परता, ध्यान करके आप का बुद्धि से दूर होना और जाति निश्चित करके आप का अजातिपन नाश किया है, सो हे परमेश्वर! आप इन अपराधों को क्षमा करो।

दृष्टात्तत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरङ्गशावनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
उन्मद्भ्रू धनुषा कटाक्षविशिखैः, घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुज़ारो शुकर ॥५॥

अर्थ—विचित्र वृक्षलता को देखने के लिये मैं बाग़ में गया था। वहाँ कोई मृग-शावक-नयनी खड़ी फूल तोड़ रही थी। भौं रूपी धनुष से कटाक्ष रूपी बाण चला कर उसने मुझे घायल किया था। तब मैं सदा के लिये मोह रूपी समुद्र में पड़ गया इससे हे हृदय धन्यवाद दो।

(श्लोक)

एकस्मिन्दिवसावसानसमये, मैं था गया बाग में।
काचित्तत्र कुरङ्ग-बालनयना, गुल तोड़ती थी खड़ी ॥
तां दृष्ट्वा नवयौवनां शशिमुखीं, मैं मोह में जा पड़ा।
नो जीवामि त्वया विना शृणु प्रिये, तू यार कैसे मिले ॥६॥

(अर्थ)

एक दिन संध्या के समय मैं बाग में गया था। वहाँ कोई मृग छौने के नेत्रों के समान आँख वाली खड़ी फूल तोड़ती थी। उस चंद्रमुखी नई युवती को देख कर मैं मोह में जा पड़ा। हे प्रिये ! सुनो, तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता (इसलिए बतलाओ) कि तुम कैसे मिलोगी।

(श्लोक)

अच्युतचरणतरङ्गिणी शशिशेखर-मौलि-मालतीमाले।
मम तनु-वितरण-समये हरता देया न मे हरिता ॥७॥

(अर्थ)

विष्णु भगवान के चरणों से प्रवाहित होने वाली और महादेव जी के मस्तक पर मालती माला के समान शोभित होने वाली हे गंगा जी ! मुझे तारने के समय महादेव बनाना न कि विष्णु। अर्थात् तब मैं तुम्हें शिर पर धारण कर सकूँगा। इसी अर्थ का दोहा नं० २ भी है।

(श्लोक)

भर्ता प्राची गतो मे, बहुरि न बगदे, शूँ करूँ रे हवे हूँ।
माभी कर्मा चि गोष्ठी, अब पुन शुणसि, गाँठ घेलो न ईठे ॥

म्हारी तीरा सुनोरा, खरच बहुत है, ईहरा टाबरा रो,
दिट्ठी टैंडी दिलों दी, इश्क अल् फ़िदा, ओडियो बच्च नाङ्॥८॥*

(अर्थ)

मेरे पति पूर्व की ओर जो गये सो फिर न लौटे, अब मैं क्या करूँ। मेरे कर्म की बात है। अब और सुनो कि गाँठ में एक अधेला भी नहीं है। मुझसे सुनो कि खर्च अधिक है और परिवार भी बहुत है। तेरे देखने को मन में ऐसा हो रहा है कि प्रेम पर निछावर हो जाऊँ। (विरहणी नायिका इस प्रकार कातर हो रही थी कि किसी ने कहा कि) वह आया है।

---

* यह श्लोक स्वर्गीय पं० चुन्नीलाल जी वैद्य से प्राप्त हुआ है। अनेक भाषाओं के ज्ञाता कोई विद्वान यदि इस श्लोक का पूरा संगठित अर्थ लिख भेजने का कष्ट उठाएँ तो बहुत ही अनुगृहीत हूँगा। पूछ ताछ कर यहाँ अर्थ यथाशक्य दिया गया है ।

टिप्पणी

दोहावली

१—चकोर—पक्षी विशेष। इसके दो गुण प्रसिद्ध हैं। प्रथम यह कि जब तक चन्द्रमा दिखलाता है तब तक यह उसी की ओर देखता रहता है। इसका यह प्रेम एकांगी है। दूसरा गुण अग्नि खाना है। इसका कारण एक कवि यों बतलाता है कि चकोर ने यह जान कर कि चन्द्रमा महादेवजी के मस्तक पर रहते हैं और महादेवजी भस्म रमाते हैं, अग्नि खा कर अपने शरीर को भस्म बनाना चाहता है कि उसका भस्म ही कम से कम चन्द्र के पास किसी प्रकार पहुँच सके।

२—अच्युत-चरण-तरंगिणी—विष्णु भगवान के चरण से निकली हुई नदी अर्थात् गंगाजी।

शिव-शिर-मालति-माल—महादेव जी के मस्तक पर मालती की माला के समान शोभित रहने वाली।

इंदव-भाल—महादेवजी जिनके सिर पर चन्द्रमा शोभित है।

हरि न बनायो······इंदव भाला—हे गंगे! तुम्हारे अंक में जिसकी मृत्यु होती है उसे तुम विष्णु या महादेव बना देती हो। मेरी प्रार्थना है कि मुझे विष्णु मत बनाना क्योंकि तुम उनके चरण से निकली हो प्रत्युत् महादेव बनाना कि तुम्हें शिर पर धारण करूँ।

इस दोहे में रहीम उपनाम नहीं है, पर एक श्लोक जिस का यह भावार्थ है, ख़ानख़ानाँ ने गंगाजी पर बनाया था;

इससे यह दोहा भी उनका हो सकता है। श्लोक संग्रह में दिया है।

कहा जाता है कि मृत्यु के समय ये गंगा जी के तट पर जा कर रहे थे और उनका आधा शरीर जल में रखा गया था। इसी अवस्था में उनका प्राण-वायु निकला था। यह श्लोक उसी समय की रचना है।

३—ये—अधम वचन और ताड़ की छाँह के लिये आया है।

४—अनकीन्ही बातें करै—जिस विषय को नहीं भी जानता उस पर भी खूब बकवाद करता है और सोए होने का बहाना कर जागता रहता है ऐसे पुरुष को सिखाना या जगाना उचित नहीं है। तात्पर्य यह कि जो अपने को सर्व-विद्या-विशारद समझता है, उसे सिखाना क्या है? और जो जाग रहा है, उसे जगाना कैसा?

५—बड़े लोगों की सहायता पाकर ही छोटे लोग अच्छे बुरे सभी काम कर लेते हैं जिस प्रकार शीतांशु चन्द्र के योग ही से चकोर अग्नि को पचाता है।

६—गुराइसु— गुरु+आइसु)गुरु अर्थात् बड़ों की आज्ञा। गाढ़ि —अकाट्य, अनुल्लंघनीय।

यद्यपि गुरुजन की आज्ञा श्रुति स्मृति आदि के अनुसार अकाट्य है तथापि यदि वह आज्ञा अनुचित हो तो उसे न मानना चाहिये। श्रीरामचन्द्र जी ने पिता की आज्ञा मानी थी पर भरत जी ने पिता, माता, गुरु तथा बड़े भाई की आज्ञा अनुचित समझ कर नहीं मानी थी, इसी से उनका यश अधिक प्रख्यात है। गोस्वामी जी ने कहा है कि—

जिनके प्रिय न राम वैदेही। तजिये तिन्हें कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही ॥

७—दोनों ही बातें कठिन हैं, क्योंकि उनमें से एक भी उपेक्षा करने योग्य नहीं है। 'दुनिया चलाना मक्कर से' कहावत ही है, तब सत्य व्यवहार से संसार चलाना कठिन है और असत्य से ईश्वर मिल ही नहीं सकता।

८—अमरबेलि—आकाश बेलि, आकास बौंर।

सूत के समान पीली बेल होती है जो पेड़ों पर लिपटी रहती है और जिस वृक्ष पर होती है, उसे सुखा डालती है। जड़, पत्ती, कनखे कुछ नहीं होते। गरम होती है,बाल बढ़ाने की औषधि में काम आती है और हकीम लोग वायु रोग पर देते हैं।

सभी वृक्ष, पौधे आदि जड़ ही से अपनी खाद्य वस्तु भूमि से खींचते हैं। ईश्वर या प्रकृति ने ऐसा नियम सा बना दिया है। ऐसी अवस्था में बेजड़ के पौधों को नष्ट हो जाना चाहिये, पर बेजड़ की आकाश बेलि को भी वह पालता है। कवि कहता है कि ऐसे पालने वाले ईश्वर को छोड़कर और किसे खोजते हुये भटकता है।

९—मीठी बातों में क्रोध का मेल भी अनुचित नहीं ज्ञात होता जैसे मिश्री के कुञ्जे में नीरस बाँस की फाँस बुरी नहीं मालूम होती। कवि कहता है कि किसी पर क्रोध करने का अवसर आ पड़े तो मीठे शब्दों ही में करना चाहिये जिससे किसी के हृदय पर चोट न पहुँचे।

१०—अरज-गरज मानै नहीं—कोई बात नहीं सुनता। रिनिया—ऋण देने वाला।

११—असमय—बुरे दिन, गिरती हुई अवस्था।

पराशर ऋषि के यहाँ लक्ष्मण जी कब अनाज माँगने गये थे, इस कथा का कोई उल्लेख अभी तक नहीं मिला।

१२—राजा के पास प्रतिष्ठाहीन हो कर रहना ठीक नहीं है। चाहे करोड़ों ही का लाभ क्यों न हो? ऐसे जीवन को धिक्कार है।

१३—बबूल—काँटेदार बबूल का झंखाड़ जो बारियों या खेतों के रक्षार्थ लगा दिये जाते हैं। पहिले तो इसकी छाया फल फूल आदि किसी के काम का नहीं होता और जिनका होता है, उन तक पहुँचने में लोगों को यह रोकता है। अर्थात् स्वयं किसी को लाभ नहीं पहुँचाता है और दूसरों को भी दान करने से रोकता है। यह पक्का कंजूस है।

१४—जीरन—जीर्ण, पुराना। बरै—बट का अपभ्रंश जैसे बरसाइत में हुआ है।

बरोह—वट वृक्ष की डारों से जो जटाएं भूमि तक जाती हैं, उन्हें बरोह कहते हैं। बुरे दिनों ही में मित्र-प्रेम काम में आता है। जिस प्रकार वट वृक्ष के पुराने होने पर ये बरोह उसके काम आते हैं। भूमि तक पहुँचने पर बरोह उसमें नए जीवन का संचार करते हैं और उसे खड़ा रखने में खंभे का काम देते हैं जिससे वह जीर्ण हो कर गिरने नहीं पाता।

१५—उरग—सर्प। तुरंग—घोड़ा।

कवि कहता है कि सर्प, घोड़ा, स्त्री, राजा, नीच जाति के पुरुष और हथियार पर कभी विश्वास न करे। इन्हें

पलटते हुये अर्थात् धोखा देने में देर नहीं लगती। तात्पर्य यह कि इनसे सदा सावधान रहे। इसी अर्थ का एक दोहा तुलसीदास जी का भी है।

१६—ऊगत—उदय होता है। अथवत—अस्त होता है। किरण—कांति, शोभा।

सूर्य जिस शोभा के साथ उदय होता है, वैसी ही शोभा के साथ अस्त भी होता है। अर्थात् उदय और अस्त दोनों ही समय वह समान रहता है। कवि कहता है कि उसी प्रकार दुःख सुख दोनों ही को एक ही चाल से सज्जन सह लेते हैं। न वे दुःख में रोते फिरते हैं और न सुख में फूल ही जाते हैं।

१७—कुरंड—एक प्रकार का हंस जिसे कारंडव कहते हैं।

कवि का भाव है कि दो चोंच एक उदर के भरने के लिये काफी से अधिक हैं, पर यदि इसका विपरीत हो तो कैसे पूरा पड़ सकता है। गोस्वामी जी ने 'बहु परिवार कि जनु धनहीना' कहा ही है।

१८—एक कार्य करने से वह शीघ्र पूरा हो जाता है और कई कार्य एक साथ आरम्भ कर देने से कोई भी पूरा नहीं होता। जड़ सींचने से कुल वृक्ष पुष्ट होता है और फूलता फलता है। 'दो घोड़े का सवार अवश्य गिरता है' यह कहावत प्रसिद्ध है। यह दोहा कबीर का भी कहा जाता है (कबीर बचनावली पृ० ७६)

१९—दर दर—(फा०) द्वार द्वार। मधुकरी—साधुओं की उस वृत्ति को कहते हैं जो सात गृहस्थों के द्वारों पर जाकर भिक्षा लेते हैं और उसी से जीवन निर्वाह करते

हैं। मधुकर अर्थात् भ्रमर के समान कई स्थानों का रस लेने से उनकी वृत्ति मधुकरी वृत्ति कहलाई।

यार—(फा०) मित्र। यारी—मित्रता। रहीम—(फा०) दयावान।

इस दोहे में 'रहीम' शब्द दो बार आया है और कवि की गिरती अवस्था का द्योतक है। रहीम कहते हैं कि अब हमारी मित्रता छोड़ो, अब हम पहिले के रहीम नही हैं, अब तो द्वार द्वार भीख माँग कर पेट भरते हैं।

२०—बड़े अर्थात् समर्थ पुरुष अच्छे (या पाठा० के अनुसार साधारण) काम करते हैं तो उससे उनकी कोई विशेष प्रशंसा नही होती। वह तो उनका स्वभाव ही समझा जाता है। हनुमान जी स्वभावतः ही पहाड़ उठाते, फोड़ते रहते थे पर श्री कृष्ण ने अपने जीवन में एक ही बार ऐसा किया था, इससे वे गिरिधारी कहलाए।

२१—अंजन—काजल। किरकिरी—महीन कणों से युक्त।

'रहीम' कहते हैं कि जिन नेत्रों से भगवान के दर्शन हुये हैं, वे अत्यन्त पवित्र हो गये हैं और उनमें ईश्वर का बास हो गया है। आँखों की शोभा काजल या सुरमा देने से होती है पर किरकिरा काजल लगाया जाय तो कष्ट होगा और यदि महीन सुरमा लगाया जाय तो किरकिराहट न रहते भी कालिख लगेगी जिससे वह अपवित्र हो जायगा।

२२—अंड—एरंड, रेंड़ का वृक्ष। बौड़—भ्रम में पड़ो, बौराओ।

अरे एरंड ! अपने चिकने पत्तों को देख कर तू मत बौरा, अपने को श्रेष्ठ वृक्ष समझ कर मत ऐंठ। हाथी के धक्के और कुल्हाड़ी की चोट सहने वाले वृक्ष दूसरे होते हैं।

२३—दाव—अग्नि।

'चिंता अधिक चिता दहै' प्रसिद्ध ही है। भीतर तो आग लगी रहती है, पर धुएँ के प्रकट न होने से वह किसी को मालूम नहीं होता। यदि ज्ञात होता है तो केवल उसको जिस पर वह बीत रही है या जिस पर बीत चुकी है।

२४—कदली—केला का वृक्ष। स्वाति—एक नक्षत्र।

कवि-कल्पना है कि स्वाति-जल केले में पड़ने से कपूर, सीप में पड़ने से मोती और सर्प के मुख में पड़ने से विष हो जाता है।

२५-२६—कमला थिर न रहीम कहि—लक्ष्मी स्थिर क्यों नहीं है ? इस प्रश्न के दो उत्तर रहीम ने दो दोहों में दिये हैं।

कमला—लक्ष्मी, धन। पुरुस पुरातन—विष्णु, वृद्ध पुरुष। प्रभु—विष्णु, स्वामी। फजीहत—(अरबी) बुरा नाम, कष्ट मिलना।

२७—निपुनई—योग्यता। निपुन हजूर—योग्य पुरुष के सामने।

योग्य पुरुष के सामने जो गुण न रहने पर भी अपनी योग्यता का आडंबर दिखलाता है अर्थात् झूठी डींग मारता है वह मानों वृक्ष पर चढ़ कर पुकारता है कि हम दुष्ट हैं।

२९—दुति—दीप शिखा, प्रकाश। सनेह—(स्नेह का अपभ्रंश) प्रेम, ममता।

जब एक दीपक से सब वस्तु प्रकाशित हो जाती है और शरीर नेत्ररूपी दो दो दीपकों से प्रकाशित हो रहा है तब प्रेम किस प्रकार उसमें छिप कर रह सकता है। तात्पर्य यह कि नेत्र प्रेम प्रगट कर देते हैं।

३०—घटै बढ़ै उनको कहा—उनको घटने बढ़ने से क्या? या उनका क्या घटेगा और बढ़ेगा।

३१—रहीम कहते हैं कि इस संसार से प्रीति अर्थात् परोपकारिता पुकार कर अर्थात् सबको सूचित कर चली गई और अब नीच मनुष्यों में स्वार्थपरता ही बच रही है।

३२—कसौटी—एक प्रकार का काला पत्थर जिस पर रगड़ कर सोने की परख की जाती है। यहाँ मित्रता की कसौटी विपत्ति को माना है। कसे—जो कसौटी पर रगड़ कर जाँचा गया है अर्थात् जिन्होंने विपत्ति में साथ दिया है। क्रिया—कसना अर्थात् कसौटी पर सोने को रगड़ कर उसको जाँचना।

३३—केतिक—(स० कति+एक) कितना। बिहाय गई—बीत गई। अंत—मृत्यु के समय।

३४—केर—केले का पौधा। रस—आनंद।

भावार्थ यह कि केले और बेर के वृक्ष यदि आसपास हों और वायु के कारण दोनों जब हिलने लगें तो फलतः बेर के काँटों से केले के चिकने पत्ते फट जायँगे। तात्पर्य यह कि सज्जन और दुष्ट का संसर्ग पहिले के लिये दुःखप्रद है। कबीर ने भी यही कहा है (नं० ३८३ का दोहा)।

३६—बाय—वायु, स्वाँस। बाय खैंचना—घमंड करना।

दोहे का भाव यह है कि कागज़ के पुतले के समान शीघ्र नष्ट होने वाला यह शरीर भी अहंकार करता है कि मैं यह हूँ, वह हूँ। इसी पर कवि आश्चर्य दिखला कर शरीर की नश्वरता को पुष्ट करता है।

३७—भँवरी—भौंरी घूमना, पाणि-ग्रहण के अनंतर जो सप्त पदी होती है। यहाँ विवाह की समाप्ति से अर्थ है। विवाहोपरांत मौर नदी में फेंक दिया जाता है।

३८—बाजू—(फ़ा० बाज़ू) भुजा, डैना, पर। बाज—(फ़ा० बाज़) एक शिकारी चिड़िया। साहब—(अरबी) स्वामी, परमेश्वर।

इसी भाव का एक दोहा यों है—

सींग झरे अरु खुर घिसे, पीठ न बोझा लेय।
ऐसे बूढ़े बैल को, साहब चारा देय॥

३९—कल्प वृक्ष—स्वर्ग का एक वृक्ष। समुद्र-मंथन में निकले हुये चौदह रत्नों में से एक यह भी है जो इंद्र को दिया गया था। इस वृक्ष से जिस वस्तु के लिये प्रार्थना की जाय, उसे वह देता है। दाख—(सं० द्राक्षा) किसमिस का पेड़।

४०—पामरी—उपरना, एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो ओढ़ने के काम आता है जैसे सोल्हा पामड़ा।

४१—उरज—(सं० उरोज) स्तन, कुच।

४२—गैर—(अरबी ग़ैर) शत्रुता, बैर।

४३—भाव यह है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के यहाँ जाने में क्यों पछताता है, वास्तव में तो विपत्ति ही, धन का

अभाव ही, धन के पास ले जाता है। मनुष्य तो निमित्त मात्र है।

४४—करुए मुख—कटु बोलने वाला।

४७—खैंचि—खींचने से, प्रेम-आकर्षण करने से। बंस-दिया—आकाश दीप।

कार्तिक मास में लोग प्रत्येक रात्रि को दीये बाँस के बनाए हुये लालटेनों में रख कर ऊँचे पर टाँगते हैं और इसके लिये लम्बे बाँसों को उसके सिरे पर कड़ी लगा कर खड़ा कर देते हैं। डोरी के सहारे ये लालटेन आवश्यकतानुसार ढीले कर उतारे और खींच कर चढ़ाये जाते हैं।

भावार्थ—खींचने से तो वह दूर भागते हैं और छोड़ देने से झट पास आ जाते हैं। भला यह प्रेम की कैसी चाल है। ऐसा मालूम होता है कि आज कल कृष्ण जी ने आकाश दीप की चाल सीख ली है।

कहा जाता है कि जब यह वृन्दावन कृष्ण दर्शन के लिये गये थे तब मुसलमान होने के कारण यह मंदिर के बाहर ठहरा दिये गये थे। इस पर यह जब क्रोधित हो घूम कर बैठ गये, तब श्रीनाथ जी स्वयं प्रसाद लेकर आए, जिस पर इन्होंने यह दोहा और दो पद कहे, जो संग्रह में दिए गए हैं।

४८—खैर—कत्था, इसका रंग जल्दी नहीं छूटता। खून—(फा० .खून) रक्त, रक्तपात, किसी को मार डालना। खुशी—(फा० .खुशी) प्रसन्नता। जहान—(फा०) संसार, यहाँ लोक अर्थात् सभी मनुष्यों से अर्थ है।

४९—गरज—(अरबी ग़रज़) स्वार्थ। आप सों—स्वयं, आप ही। इस दोहे का भाव संकोची स्वभाव के भले आदमियों के लिये लागू है।

५१—गुन—(सं० गुण) रस्सी, योग्यता।

जब कूएँ से गुन (रस्सी) द्वारा जल निकाल लिया जाता है तब गुण (हुनर, योग्यता) से क्या किसी पुरुष के मन को प्रभावान्वित नहीं किया जा सकता अर्थात् उसके मन में जो सरसता है उसको सच्चा गुणी अवश्य ही उद्वेलित कर सकता है। कठोर से कठोर भी समालोचक सच्ची योग्यता की अवश्य दाद देगा क्योंकि उसका मन भी कूएँ से अधिक गहरा नहीं हो सकता। सलिल के जोड़ पर सरसता अर्थ लेना ही भावमय है, मंशा या मन की बात ताड़ना नहीं।

५२—बतौरी—एक रोग है। शरीर में रक्त संचित होकर गाँठ सी बन जाती है जिसमें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती और बराबर बना रहता है।

५३—यहाँ रहीम उपासना, ज्ञान तथा भक्ति तीनों में भक्ति के विशेष महत्व को दिखला रहे हैं। चरण छूने अर्थात् उपासना करने तथा मस्तक छूने अर्थात् ज्ञान प्राप्ति करने से भी माया हाथ नहीं छोड़ती; परन्तु जब भक्त-हृदय स्वयं प्रभु को छू लेता है अर्थात् सच्चा भक्त हो जाता है तब वह न जाने क्यों छोड़ देती है।

५४—छाला—चर्म, यहाँ शरीर से तात्पर्य है।

१५—चाह—इच्छा। निरीह अर्थात् इच्छा रहित ईश्वर की प्रशंसा में प्रयुक्त होता है, जिस मनुष्य को इच्छा नहीं उसे किसी

की क्या परवाह है। बादशाह क्या, वह उससे भी बढ़ कर है।

५६—अवध-नरेश—यहाँ श्रीरामचन्द्र जी से तात्पर्य है।

ख़ानख़ानाँ ने जब रीवाँनरेश या किसी अन्य नरेश से किसी याचक को एक लक्ष रुपया दिलवाया था तब उस अवसर पर यह दोहा बना कर उनके पास भेजा था। उस समय बादशाही कोप के कारण यह स्वयं निर्धन हो रहे थे और याचक के माँगने पर भी विवश होकर उन्हें स्वयं याचक बनना पड़ा था।

५७—टोटे—जब धन का टोटा पड़ा हो अर्थात् निर्धनता में। सगे—संबंधी। कुबेला—दुःख के समय।

बुद्धि की परीक्षा चिंता के समय होती है, दारिद्रय में स्त्री की पहिचान होती है, बुरे दिन में नातेदार पहिचाने जाते हैं और स्वामी की परीक्षा कष्ट में होती है।

५८—भृगु मारी लात—ब्रह्मा, विष्णु और महेश में कौन बड़ा है इसकी परीक्षा भृगु मुनि ने की थी। ब्रह्मा प्रणाम न करने से और महेश कुछ कहने से क्रोधित हो गये पर विष्णु भगवान हृदय पर लात मारने से भी प्रसन्न ही रहे। उलटे वे ऋषि से पूछने लगे कि कहीं पैरों में चोट तो नहीं पहुँची और पैर के चिह्न को जिसे भृगुलता कहते हैं अपने वक्षस्थल पर रख कर सहनशीलता की पराकाष्ठा दिखला दी।

५९—रेख, रेखा—लकीर, रेखा खींच कर कहना अर्थात् निश्चित बात। मेख—(फा० मेख़) खूँटी।

६०—अगोट—(अ+गोष्ट) फूट, मेल न रहना। गोट—(सं०

गुटिका) चौपड़ का मोहरा, गोटी। गोटी फूटना—जुग फूटना।

कवि कहता है कि जब तक इस संसार में जीवन है तब तक उसमें मिल कर सुख क्यों नहीं करते। फूट में दुःख ही दुःख है देखो जुग फूटते ही दोनों नरद पिट जाती है।

६१—वित्त—धन। ।अंबुज—अंबु अर्थात् जल से उत्पन्न कमल।

कमल को विकसित करने वाला सूर्य तभी तक उसका मित्र है जब तक उसके पास जलरूपी अपना धन रहता है। जल के सूख जाने पर वही सूर्य भलाई के बदले शत्रुता कर उसे सुखा डालता है।

६२—अपने ही कर्म को मनुष्य भोगता है अर्थात् वह भोग एक प्रकार से उसी के हाथ में है, ऐसा भान होता है पर वास्तव में वह अपने हाथ में नहीं है। गोस्वामी जी ने कहा ही है—

उमा दारु योषित की नाईं।
सबै नचावत राम गुसाईं॥

६३—जलहि......आँच की भीर।

दूध और जल का पारस्परिक प्रेम दिखलाया है। दूध पानी को अपने में मिला कर अपने समान बना लेता है कुछ भी भेद नहीं रखता और जब लोग उसे आँच पर रखकर औटाते हैं तब पानी स्वयं जल कर दूध की रक्षा करता है। यह तो इस दोहे का अर्थ हुआ; पर दूध का प्रेम कच्चा नहीं है, इसलिये वह चुपचाप

बैठा नहीं रहता प्रत्युत् क्रोध से उफन कर जल के शत्रु अग्निको बुझाने का प्रयत्न करता है, । चाहे उस प्रयत्न में उसका सर्वस्व क्यों न नष्ट हो जाय । इसी समय चार बूँद जल छिड़क दीजिये तो झट उसका क्रोध शांत हो जाता है । यह पारस्परिक प्रेम की कवि-कल्पना प्रसिद्ध है ।

६४—गाँठ—ईख की गाँठ, मित्रता में गाँठ पड़ जाना अर्थात् वैमनस्य । जोय—देखता है । मँड़ए तर की गाँठ—दूल्हा दुलहिन की गाँठ जो विवाह के समय मंडप के नीचे बाँधी जाती है ।

६५—जाल परे......छाड़त छोह—यहाँ मछली का जल के प्रति एकांगी प्रेम दिखलाया है । जल को मछली से प्रेम न रहते भी मछली जल से प्रेम रखती है । गोस्वामी जी का निम्नलिखित दोहा इससे भी कहीं अधिक सरस है—

मीन काटि जल धोइये, खाए अधिक पियास ।
तुलसी प्रीति सराहिये, मुए मीत की आस ॥

६६—कहाँ सुदामा......जोग—श्रीकृष्ण भगवान ने सुदामा के समान दरिद्र ब्राह्मण के साथ भी पाठशाला की मित्रता का निर्वाह किया था और उसे भूले नहीं थे । यह उनके उस सर्वोच्च पद ही के योग्य था ।

६७—जे रहीम......नखत तें बाढ़ि—गोस्वामी तुलसीदास जी के कथन 'समरथ कहुँ नहिं दोष गोसाईं' के अनुसार सदोष होने पर भी चन्द्रमा बड़े होने के कारण निर्दोष छोटे छोटे तारों से बढ़ कर माना जाता है ।

६८—दाहे ...सुलगाहि—जो प्रेम-पाश में फँसे हुये हैं, उन्हें विरहाग्नि में जलने और मिलन में शांति पाने अर्थात् विरहाग्नि के बुझने के बहुत अवसर मिलते हैं। ये प्रेमी 'रोज़ के मरने वाले' होते हैं।

७०—जेहि......अब कौन—अपनी आत्मा (परमेश्वर) से सुख दुःख कहने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि उससे कुछ छिप नहीं सकता।

७३—करी—(सं०) हाथी, किया।

गजेन्द्र मोक्ष में जब हाथी मगर द्वारा पकड़ा गया तब उसके सुख के साथी साथ छोड़ कर चले गये और उस कष्ट के समय ईश्वर ही ने उसकी रक्षा की। कवि ईश्वर को उपालंभ देता है कि हे ईश, आपने भी उन्हीं हाथियों का सा वर्ताव मेरे साथ कर रखा है। उसकी इच्छा है कि ईश्वर को उनका स्वभाव जता दे, जिससे वे उसका उद्धार करें।

७४—अनुचितकारी—अयोग्य काम या अकर्त्तव्य करने वाले। अंक—धब्बा, पाप, दुःख।

७५—कदली—केला। सुपत-सुपात्र, अच्छे पत्तों वाला। अपत—कुपात्र। सुडौल—सुगठित शरीर वाला। करील—(सं० करीर) ऊसर और कंकरीली भूमि में होने वाली एक कँटीली भाड़ी, जिसमें पत्तियाँ नहीं होतीं केवल हरे रंग की बहुत सी पतली पतली डंठलें फूटती हैं। राजपुताने और ब्रज में बहुत होती हैं। फागुन और चैत में गुलाबी रंग के फूल आते हैं, जिनके झड़ जाने पर गोल गोल फल लगता है जो टेंटी या कचड़ा कह-

लाता है। ये कसैले होते हैं और इनका अचार पड़ता है। इसकी लकड़ी के हलके सामान बनते हैं, रेशे की रस्सी बँटी जाती है और फल दवा के काम में लाया जाता है।

जो अच्छे डील डौल वाला अच्छे पत्तों से युक्त केले का पौधा किसी के घर ही में बंद है और प्राप्त नहीं हो सकता तो उससे रास्ते का पत्तों से हीन करील ही अच्छा है जो सभी को हर समय मिल सकता है। तात्पर्य यह कि दृढ़ शरीर वाला और अच्छे वंश में उत्पन्न लड़का घर ही में घुस कर बैठ रहे तो उससे वह युवक अच्छा है जो सुन्दर और सुवंशजात न हो कर भी अपने राह पर लगा है।

७६—भीम—युधिष्ठिर के छोटे भाई। जूए के अनंतर जब पांडव बारह वर्ष बनवास कर चुके थे तब एक वर्ष अज्ञातवास करने के लिये यह रूप भीम ने लिया था। यह कथा प्रसिद्ध है।

७८—उमगै—उमड़ै, बढ़ चलै, भर कर ऊपर उठै।

७९—उत्तम प्रकृति—परिपक्व और अच्छा स्वभाव। भुजंग—सर्प, दुष्ट पुरुष। साधारण स्वभाव वालों तथा युवकों पर कुसंग का शीघ्र असर पड़ जाता है केवल चंदन सदृश अच्छे तथा काष्ठवत् दृढ़ स्वभाव पर ही दुष्ट संसर्ग का प्रभाव नहीं होता।

८०—फरज़ी—शतरंज का एक मुहरा जिसे वज़ीर भी कहते हैं, इसकी चाल टेढ़ी है। प्यादे की चाल सीधी होती है पर जब वह फ़रज़ी बन जाता है तब उसी की चाल चलता है

८१—हवाल—(अरबी) वर्तमान अवस्था।

गोवर्धन—एक पहाड़ी जो ब्रज में है। गोवर्धन लीला की कथा प्रसिद्ध है जिसमें श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उँगली पर उठा कर इंद्र के कोप से ब्रज की रक्षा की थी। कथा है कि जब हनुमान जी धवलागिरि को लंका ले जा रहे थे तब उसका एक शृंग ब्रज में गिर पड़ा, जो गोवर्धन कहलाया।

८२—बारे—बालापन, लड़कपन, बालना, दीप जलाना। बढ़े—अवस्था बढ़ने पर, युवा होने पर, दीप बढ़ाना, बुझाना। गति······गति सोय—कपूत और दीप की समानता दिखलाई है।

८४—नैन बान की चोट—काम बाण अर्थात् कामिनियों के नैन-बाण। ईश्वर के चरणों की आड़ अर्थात् उनकी कृपा ही से कोई कोई भक्त इस नैन-बाण के मोह से बचे थे।

८६—आँसू गारिबो—रोना। खीस—व्यर्थ, निष्फल।

८७—मनसा—मन। काया—शरीर।

केवल मानसिक पुण्य, पाप, दान आदि से कुछ नहीं होना दिखलाया है।

८८—गति—शक्ति।

८९—विषया—व्यसन, मोह आदि।

९०—टूटे—जो किसी कारण बिगड़ जायँ या क्रोधित हो जायँ।

९१—मन राखो ओहि ओर—मन को उसी के अर्थात् ईश्वर के प्रति लगाए रहो। शरीर तो कर्म के वश में है, वह आप से आप और किसी ओर नहीं जा सकता।

इसलिये जब मन को ईश्वर के प्रति लगाओगे तभी इस शरीर को अच्छी गति मिलेगी। दृष्टांत यों दिया है कि प्रवाह से उल्टे ले जाने के लिये नाव को 'गोन' रस्सी से खींचते हैं।

९२—जीबो—जीना। दीबो—देना। कुचित—(कु+उचित) अनुचित, बुरा। धीम—धीमा, कम।

९३—सँचहि—संचय करता है। यह दोहा संस्कृत के एक श्लोक का अनुवाद है—

पिबंति नद्यः स्वयमेव नांभः, स्वयं न खादंति फलानि वृक्षाः।
पयोमुचाम्भः कुचिदस्ति पास्यं, परोपकाराय सतां विभूतयः॥

९४—रीते—सूखे, जिसमें जल नहीं, खाली।

९५—दोहा नं० ३६ ही का भाव इसमें भी है।

९६—थोथे—जल हीन, केवल दिखावटी। घहरात—गरजते हैं। पाछिली बात—बीती हुई अमीरी के समय की बात।

९८—सरवर को कोउ नाहिं?—तालाब जो दूसरों के लिये बारहों महीने जल संचित रखता है, उसकी याद कोई नहीं करता। यह भी भाव होता है कि चातक की रटनि की सरवरि या समानता इनमें कोई नहीं कर सकता।

चातक—पक्षी विशेष। यह स्वाति नक्षत्र के जल के लिये तरसता है और यदि न मिले तो प्यासा ही रह जाता है। दूसरे तो अन्य जल से भी काम चला लेते हैं।

९९-१००—दोनों में दीनता या नम्रता की महत्ता दिखलाया है। दीनबंधु परमेश्वर ने इसी दीनता को अपनाया है। तात्पर्य यह कि दीनता दैवी गुण है, इसे हर एक मनुष्य को अपनाना चाहिये।

१०१—दीरघ—बड़ा, अधिक। आखर—अक्षर का अपभ्रंश। कुण्डली—शरीर समेट लेना।

१०३—घूर—गाँव आदि के पास का ऐसा स्थान जहाँ कूड़ा कतवार फेंका जाता है।

१०५—देखिए भूमिका।

१०६—पिक—कोयल।

१०८—गाढ़े दिन को मित्त—मरने पर ईश्वर ही काम आता है, ये कोई भी मृत्यु के दिन साथ नहीं देते।

१०९—अनत—अन्य स्थान। भाय—रुचि।

भ्रमर अपनी कृतघ्नता और बेवफाई के लिये इतना प्रसिद्ध है कि कितने भ्रमर गीत बन गए हैं।

११२—धूर धरत……गजराज—पहिले दो चरण में प्रश्न है और दूसरे दो चरण में उसका उत्तर है। हाथी का स्वभाव है कि वह धूल सूँड़ से उठा कर अपने शरीर पर छोड़ा करता है।

जेहि रज मुनिपत्नी तरी—रामचन्द्र जी की वह चरण धूलि जिससे गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या जी का उद्धार हुआ था। रामायण में इसकी पूरी कथा है।

११४—भाव यह है कि दूरी से प्रेम, श्रद्धा बढ़ती है। 'अपन गाँव को ।जोगड़ा आन गाँव को सिद्ध'। दूरस्थ तीर्थों के यात्री उन पर जितनी श्रद्धा करते हैं उतनी वहाँ के रहने वाले की उनके प्रति नहीं रहती।

११५—नाद………मृग—गाने बजाने पर रीझ कर हरिण ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि अहेरी उन्हें पकड़ लेते हैं।

११६—निजकर……भावी के हाथ—कुछ आलसियों का कथन

है कि तदबीर से तक़दीर बड़ी है, इससे कुछ कर्म करना व्यर्थ है। रहीम के अनुसार कर्म करना आवश्यक है, जिसका फल ही भावी कहलाता है। कर्म किये बिना कर्म का पता नहीं चल सकता।

११८—पन्नगबेलि—नागबेलि, पान की लता। सम—बराबर। रति—प्रेम। हिम—पाला। सत—सतीत्व, पातिव्रत्य। जोजन—योजन, योग, मेल। दहियान—जलाया गया। अर्थात् नाश हुआ।

कवि का भाव है कि पान की लता तथा पतिव्रता का प्रेम एक सा है। जिस प्रकार तरी से उत्पन्न पान की लता पाला से नष्ट हो जाती है उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने ही गुण सतीत्व के बल पर सती हो जाती हैं। पातिव्रत्य की शक्ति से स्वयं अग्नि उत्पन्न कर वह जल जाती हैं अर्थात् जिसके कारण वह पतिव्रता कहलाई, वही उसे जलाती है।

११९—भगवान ने वामन का अवतार लेकर जो भीख माँगने का छल किया था, उसी पर कवि उन्हें उपालंभ देता है।

१२०—पसरि—फैला कर। पत्र—पत्ते जो पानी पर फैले रहते हैं। झंपहि—छिपा लेते हैं, आड़ में छिप जाते हैं। पितहिं—यहाँ जल से अर्थ है। कमल की जल से उत्पत्ति है। ससि—चन्द्र, सागर से उत्पन्न होने के कारण कमल का भाई हुआ। सकुचि देत—संकोच लेता है, दबोच देता है।

कमल, पत्ते तथा चन्द्र तीनों ही सागरोद्भूत हैं, इस कारण उनमें भाई चारा है। प्रकृत्या कमल सूर्य को

देख कर विकसित और चन्द्र को देख कर संकुचित होता है। कवि का भाव है कि कमल के पत्ते फैल कर जल को, अपने पिता को, छिपा देते हैं और चन्द्रमा अपने शीत से कमल को संकुचित कर देता है, तब कहिये कि कैसे कहा जा सकता है कि कमल के कुल वालों में कौन किस का मित्र और कौन किसका शत्रु है। इस दोहे से एक ऐतिहासिक ध्वनि भी निकलती है कि मुगल राजवंश में कौन किसका मित्र या शत्रु है, यह नहीं कहा जा सकता है। खानखानाँ के सामने की घटना है कि शाहजहाँ ने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया और अपने भाई को मारा था। कवि ने इसी घटना को कमल पर घटा कर कहा है।

१२१—जड़ को न सींच कर पत्ते पत्ते को सींचना और इकट्ठे ही पीठी में नोन न मिलाकर प्रत्येक बरी में निमक डालने वाली बुद्धि या पागलपन को कौन लेना चाहेगा।

१२२—वर्षा ऋतु में मेंढ़कों की टर्र के आगे कौन किसकी सुनता है, इसीलिए कोयल ने मौन धारण कर लिया है। बीरबल की एक कहानी का यह सार है कि मूर्खों से काम पड़ने पर मौन रहना ही बुद्धिमानी है।

१२४—देवरा—भूत प्रेत आदि।

भारतेन्दु जी ने एक दोहे में यही भाव यों कहा है—

खसम जो पूजे देहरा भूत-पूजनी जोय।
एकै घर में दुइ मता कुशल कहाँ ते होय॥

वास्तव में हिन्दू जाति अभी तक तैंतीस करोड़ देवताओं की पूजा से तृप्त नहीं हुई है। इसी से गाजी मियाँ,

पीर, कबर, भूत आदि भी पूजती है। नहीं मालूम कि बिलायती सेंट आदि की भी पूजा शुरू हो गई है या नहीं।

१२५—जब किसी को किसी की सच्ची लगन लग जाती है, तब उसके हृदय में दूसरे से प्रेम करने का स्थान ही नहीं रह जाता।

१२६—शाह—(फ़ारसी) शतरंज का एक मोहरा जिसे मीर और बादशाह भी कहते हैं। तासीर—(अरबी) असर करना, स्वभाव।

१२७—माया—धन, ऐश्वर्य। हरि हाथी—गजेन्द्रमोक्ष की कथा प्रसिद्ध है, जिसमें गज की स्तुति सुन कर ग्राह से उसकी रक्षा करने के लिये भगवान ने स्वयं हरि का अवतार धारण किया था।

१२९—हहरिकै—घबड़ा कर, गिड़गिड़ा कर।

१३०—राई—एक मसाला जिसका दाना बहुत छोटा होता है। बीज के लिये उदाहरण रूप में काम लाया गया है। बीज से बड़े बड़े फल पैदा होते हैं। पर बड़े फल छोटे नहीं होते।

१३३—सोस—(फ़ारसी शब्द अफ़सोस का अपभ्रंश) शोक, दुःख। महिमा घटी···परोस—रावण के लंका में बसने के कारण समुद्र बाँधा गया था।

१३४—बाँकी—तिरछी, टेढ़ी। गाँसी—तीर, बरछी आदि के फल। भाव यह है कि सीधा नोक हो तो निकल भी जाय पर यह चितवन टेढ़ी है, इसीलिये निकालने से नहीं निकलती।

१३७—भजौ···आन—यदि भजन करना है तो और किसको भजें?

यदि त्याग करना है तो किस दूसरे का है ? कोई दूसरा है कहाँ ? इस दोहे से 'सोऽहं' की ध्वनि भी निकलती है।

१३८—परि खेत—युद्ध भूमि में गिर कर।

भाव यह है कि पेट ही के कारण संसार में मनुष्य को दूसरों की दासता स्वीकार करनी पड़ती है तथा सिर झुकाना पड़ता है। युद्ध में कट कर गिरने पर सिर इसी से प्रसन्न हो रहा है कि अब उसे इस प्रकार झुकने से छुट्टी मिल गई। आत्म-गौरव दिखलाया गया है।

१३९—भार—भारीपन, अहंकार, अधिक प्रज्वलित अग्नि, भाड़, बोझा।

यह स्वाभाविक है कि बोझ न लेकर तैरने वाले से बोझ लिया हुआ मनुष्य जल्दी डूब जायगा। इसी से रहीम कहते हैं कि भवसागर पार जाना चाहने वाले को पाप की गठरी पहिले नष्ट कर देना चाहिये।

१४१—उनमान—परिमाण। बाँझ—बंध्या, कवियों ने गौरी जी को बंध्या ही माना है। बरु—स्वामी, पति। अज़ीम—(फ़ा०) बड़े।

कवि होनहार की प्रबलता दिखला रहा है कि पाण्डव से समर्थ लोग वन में छिपते फिरते थे और महादेव जी ऐसे पति के रहते भी पार्वती जी बंध्या रहीं। पाठान्तर डरु भी है। शिव जी भी पहाड़ की चोटी पर इस प्रकार जा बैठे हैं कि मानों डर ही से ऐसा करते हैं।

१४२—पाखान की भीत—पत्थर की दीवाल, पक्की दीवार।

भाव यह है कि पत्थर की दृढ़ दीवार भी गिरकर छितिर बितिर हो जाती है और उसके पत्थर इधर उधर अन्य अन्य स्थानों में काम आते हैं तथा फिर एक जगह नहीं रह जाते।

१४३—पर्वत की चोटी से लेकर भूमि तक सभी एक रूप मिट्टी पत्थर हैं और कहीं कुछ विभिन्नता नहीं है। उच्चासन-स्थित राजे तथा उनके आश्रित गुणी जन भी सभी एक रूप हैं और व्यर्थ ही वे एक दूसरे को छोटा समझते हैं।

१४५—मनसिज—कामदेव। फल—फल से यहाँ स्तन का अर्थ लिया है। फूल—यहाँ फूल से कमल की माला का अर्थ लिया है। साथ ही भाव फूलने अर्थात् प्रसन्न होने से भी है।

१४६—दृगन जो आदरैं—देख कर ही मित्रता और प्रेम का आरम्भ होता है।

यहाँ मन को राजा तथा आँख को दीवान की उपमा दी गई है। जिस प्रकार मंत्री के परामर्श से राजा काम करता है, उसी प्रकार आँख के प्रिय को मन भी अपनाता है।

१४४—मंदन—खल, दुष्ट। सिराहिं—समाप्त होना, मिटना। मरहा—एक प्रकार का भूत।

कहते कि अकाल मृत्यु से मरने के कारण दुष्टों की आत्मा प्रेत होती है। दुष्टों के गुण अवगुण का मरने पर भी अंत नहीं होता। बाघ से मारे जाने पर भी अर्थात् अकाल मृत्यु होने पर भी दुष्टों की दुष्टता मरहा भूत हो कर अधिक उत्पात मचाती है।

१४८—महि नभ सर पंजर कियो—अग्नि ने पेट पीड़ा के कारण श्रीकृष्ण की आज्ञा से खांडव वन जलाया था। इन्द्र से रक्षा करने के लिये अर्जुन ने उस वन को पृथ्वी से स्वर्ग तक आग्नेयास्त्र तीरों का पिंजड़ा बना डाला था कि इन्द्र-प्रेरित प्रलय-मेघों की वर्षा की धाराएँ अग्नि को बुझा न दें। भागवत में यह कथा विस्तार से दी है।

बल-अवशेष—बल की सीमा, अंत।

नारि के भेष—जब पांडवों ने अज्ञातवास लिया था, तब अर्जुन विराट की पुत्री उत्तरा को स्त्री रूप में बृहन्नला नाम से नृत्य कला आदि सिखलाते थे। उर्वशी अप्सरा के शाप से इन्हें एक वर्ष स्त्री बनना पड़ा था।

१४९—बावन—(स० वामन) अर्थात् बहुत नाटा मनुष्य, बावन अंगुल का शरीर वाला।

जब दानवों ने देवताओं को परास्त कर उनके राज्य पर अधिकार कर लिया तब भगवान ने वामनावतार धारण कर दानवराज बलि से उस समय तीन पग भूमि का दान माँगा, जब वह यज्ञ कर रहा था। दान ले लेने पर वामन भगवान ने विराट रूप धारण कर तीन पग में कुल त्रिलोक नाप लिया था, तिस पर भी वे वामन नाम ही से प्रसिद्ध रहे।

१५०—माँगत आगे....रघुनाथ—जिस प्रकार रामचन्द्र ने विभिषण को माँगने के पहिले ही लंका की राजगद्दी का तिलक कर दिया था।

१५१—सफरिन—मछलियों से।

१५२—विष खाय के शंभु भये जगदीश—जब समुद्र-मंथन हुआ

था तब उसमें से सबसे पहिले हलाहल विष उत्पन्न हुआ, जिससे संसार जलने लगा। तब महादेव जी की स्तुति की गई, जिन्होंने उसे पान कर संसार की रक्षा की और जगदीश कहलाये। इस विष को कंठ में रखने के कारण उनका नीलकंठ नाम हुआ।

राहु कटायो शीश—समुद्र-मंथन के अनंतर अमृत बाँटने में देवताओं और दैत्यों में झगड़ा हुआ, तब भगवान से उसे बाँटने के लिए कहा गया। इन्होंने 'छोटे पानी बड़े पीढ़ा' की कहावत दैत्यों को समझाया और पहिले देवताओं को अमृत पिलाने लगे। देवता और दैत्य पंक्ति बाँध कर बैठे और जब अमृत पिलाते हुये भगवान दैत्यों की पंक्ति के पास आने लगे तब राहु नामक दैत्य जो पास था, उसने देखा कि अमृत का घड़ा खाली हो रहा है। वह उनका कौशल समझ देवता का रूप धारण कर उनकी पंक्ति में जा बैठा और इस प्रकार उसने अमृत पान कर लिया। जब भगवान को उसकी धूर्तता मालूम हुई तब उन्होंने चक्र द्वारा उसका सिर काट 'लिया, पर अमृत पीने के कारण वह नहीं मरा और उसके दोनों भाग राहु तथा केतु कहलाये जाने लगे।

१५३—माह—माघ। टेसू-पुष्प विशेष, यह वसत में खिलता है।

भावार्थ—माघ महीने में टेसू की और थल पर पड़े हुये मछली की जो दशा होती है, वही दशा अपने स्थान से च्युत लोगों की होती है।

१५४—कर—संबंध वाचक का, करने वाला अर्थात् बनाने वाला।

१५५—ही—थी। गुह—निषादराज। मातंग—श्वपच, अस्पृश्य। गौतम ऋषि की पत्नी अहिल्या, बंदरों और निषाद का राम जी ने उद्धार किया और इन तीनों के गुण मेरे शरीर में हैं।।

रहीम का एक श्लोक इसी संग्रह के पृष्ठ ७४-५ पर है जिसके आशय का यह दोहा भी है।

१५६—कचन—बाल

१५७—कूपवंत—गहरा, जिसमें गहरा कुंड हो। सरिताल—झील, बहुत बड़ा तालाब। मनसा—इच्छा।

१५८—प्रीति में व्यवहार अच्छा नहीं है, प्रेमी का प्रेम एकांगी भी हो अर्थात् जिस पर उसका प्रेम है वह न भी प्रेम करता हो तब भी उससे प्रेम करना होगा, बदला न मिलने से उसे छोड़ देना अच्छा नहीं। हारने या जीतने पर प्राणों का दाँव लगाना ही पड़ेगा।

१५९—चोर—यहाँ दुष्टों से अर्थ है। नए—टेढ़ा होना, मीठा बोलना, विनम्र होना।

चीता अहेर पर आक्रमण करने के समय पहिले झुक कर तब चोट करता है। दुष्ट यदि मीठा बोले तो अवश्य धोखा देगा। कमान टेढ़ी हो जाने पर अर्थात् खींची जाने ही पर तीर छोड़ कर हानि पहुँचाती है।

१६०—रहीम कहते हैं कि हमारा मन जल कर भस्म हो गया है। यह हमने इस प्रकार जाना कि उसे जिससे लगाते हैं वही रूखा हो जाता है।

१६१—आपु बड़ाई आपु—स्वयं अपनी बड़ाई करना, आत्म-श्लाघा।

१६३—तुरंग—घोड़ा। दाग (फ़ा० दाग़) धब्बा, छाया।
घुड़सवार सेना में यह नियम है कि सवारों का नंबर घोड़े पर छाप दिया जाता है। यह प्रथा पहले पहल अकबर के समय में राजा टोडरमल ने चलाई थी, जो आज तक प्रचलित है। कुछ लोगों का कथन है कि इसे अज़ीज़ कोका आज़मखाँ ने चलाया था।

१६४—जिस प्रकार जल में शरीर की छाया पड़ने पर भी शरीर बाहर ही रहता है। उसी प्रकार शरीर-रूपी बाजार में अर्थात् प्रेमिका के शारीरिक सौंदर्य पर मन बिक जाता है, मुग्ध अवश्य हो जाता है पर वास्तव में ऐसा नहीं होता कि प्रेमी का मन शरीर में से निकल कर प्रेमिका के सौंदर्य में चिमिट जाय। यह कवि-कल्पना मात्र है कि 'दिल ले गया हमारा'।

१६५—देखिये दोहा नं १६।

१६६—चाँवर—(सं० चामर) मोरछल, चँवर, राजचिह्न। तात्पर्य ऐश्वर्य से है। कदाच—कदाचित, कभी।

१६८—कानि—चाल, रीति जो सदा रही।

१६९—मृग—चन्द्रमा के रथ में मृग जुते हुए हैं, इससे वह ऊपर उछलता है।

बराह—वाराह (भगवान) पृथिवी को पाताल से हिरण्याक्ष को मार कर लाये थे, इसलिये बराह गण पृथिवी खोदते रहते हैं।

१७०—अन खाना—(अन्न+खाना) पेट भरा हो, (अनखे) क्रुद्ध होना, बुरा मानना।

भाव यह है कि जब कोई किसी से माँगने जाता है तो उसे

बुरा मालूम होता है इसलिये यदि पेट भरा रहे तो न कोई माँगेगा और न कोई खफ़ा होगा।

१७१—सेंहुड़—पौधा विशेष जिसके पत्ते कुछ लम्बे होते हैं। इसका रस गर्म होता है, जो बच्चों को सर्दी में दिया जाता है। कुज—लतादि।

१७२—रुधिरै देत बताय—घायल हरिन जिधर प्राण बचाने को भागता है, उधर का रास्ता अहेरी को उसी के रक्तबिंदु बतलाते हैं अर्थात् अपने सगे ही कुसमय पड़ने पर शत्रु हो जाते हैं।

१७४—आँटा के लगे—मृदंग, जोड़ी आदि वाद्य यंत्रों पर आँटा की गोल टिक्की जमाई जाती है, जिससे अच्छा शब्द निकलता है।

१७५—अच्छी प्रकृति वालों ही का संग रखना चाहिए, नीचों का नहीं। जला हुआ बर्तन हाथ में लेने से अवश्य ही कालिख लगेगी। नं २८१ का सोरठा इसी भाव का है।

१७६—संयोग में गले का हार भी इस कारण कष्टकर था कि वह दोनों को अपनी मुटाई भर दूर रखता था। समय बदल जाने पर वियोग में अब उन्हीं दोनों के बीच पहाड़ आदि आगये हैं। समय किसी का नहीं होता।

१७९—सेस—[सं० शेष] शेष भगवान, कुछ नहीं, जो कुछ बचा हुआ हो।

१८०—जीवधारियों में हाथी अत्यंत शक्तिमान पशु है पर वह भी अपने प्रभु के प्रभुत्व को मानता है। यही कारण है कि दीनता से वह दाँत निकाले हुये है और लटकती हुई सूँड़ सहित अर्थात् नाक घिसता हुआ चलता है। दाँत दिखाना और नाक रगड़ना दीनता के लक्षण हैं।

१८१—रीते—खाली रहने पर, भूखे रहने पर। 'बुभुक्षितः किं न करोति पापं' कहा ही है। अनरीत—पाप, विरुद्ध आचरण। इस दोहे के कई प्रकार के पाठ मिलते हैं।

१८२—हूक—चमक जो किसी नस के हट बढ़ जाने से पैदा हो जाती है।

१८३—ज्वारी—जूआ खेलने वाला, कृष्ण जी ने शकुनी और कौरवादि जुआरियों से पांडवों की रक्षा की थी। चोर—ब्रह्मा जी ने ग्वालबालों और गायों का हरण किया था, जिनसे श्रीकृष्ण ही ने उन्हें छुड़ा दिया था। लबार—झूठे प्रपंचक, दुःशासन आदि कौरवों से द्रौपदी की रक्षा की थी। पतिराखनहार—लज्जा-प्रतिष्ठा बचाने वाला। माखन-चाखनहार—श्रीकृष्ण जी।

१८४—रस के खान ऊख में सर्वत्र ही रस रहता है पर गाँठों में वहाँ भी रस नहीं मिलता। इसीसे कहते हैं कि प्रीति में यदि गाँठ पड़ जायगी तो वहाँ भी रस नहीं रह जायगा।

१८५—जहाँ आरंभ ही खोटा है, वहाँ फल भी बुरा ही होगा। अंधकार खाने वाला दीपक कालिख के सिवा और क्या उलटी करेगा।

१८६—आपु······नाहिं—'अहमिति' है तो ईश्वर नहीं है और ईश्वर है तो अहंता नहीं है। रहीम कहते हैं कि भक्ति का मार्ग बहुत सँकरा है।

यहाँ अहमत्व मिटा कर अपने इष्टदेव में तल्लीन हो जाय तभी उस तक पहुँच हो सकती है, नहीं तो रास्ता न मिलेगा, अँड़स कर वहीं बाहर रह जायगा।

१८७—रहँट—कूँयें से जल निकालने का यंत्र, जिसकी सिकड़ी में

कई पात्र लगे रहते हैं। ओछे पुरुष स्वार्थ के साथी होते हैं, जब कार्य हो गया, पेट भर गया, तब वे आँखें तक नहीं मिलाते।

१९०—दमामा—(फ़ा० दमाम:) धौंसा, बड़ा नगाड़ा।

१९२—गथ—पूंजी, कोष।

प्रबल प्रतापी दशानन को अंत समय यह देखना पड़ा कि उसके रहते भी बंदरों ने लंका में लूट मचा दी थी।

१९३—बादल का पिता समुद्र सूमड़ा है इसी से उसका खारा जल कोई नहीं पीता। यही कारण है कि उसके पुत्रों से आच्छादित हो कर आकाश काला हो जाता है। तात्पर्य यह कि पिता के कुकर्मों का पुत्रों पर अवश्य असर पड़ जाता है।

१९५—सरग पताल—अंड बंड, कुवाच्य।

१९६—उखारी—ईख का खेत। रमसरा—ईख के खेत में ईख के समान रूप रंग का एक प्रकार का सरकंडा जो आप से आप पैदा हो जाता है, पर उसमें रस नहीं होता। गो० तुलसीदास जी के नाम से भी यह दोहा प्रसिद्ध है और रहिमन के स्थान पर तुलसी है।

१९७—दाँव—समान, इच्छानुकूल। बासर—दिन। कचपची—कृत्तिका नक्षत्र, छोटे छोटे तारों का समूह, जो गुच्छे के समान दिखलाई पड़ता है।

१९८—गाँठ युक्ति की—पंचतत्व की, इस शरीर तथा प्राणवायु का ईश्वर द्वारा युक्ति पूर्ण एकत्रीकरण।

१९९—पयान—हट जाना।

२००—मामिला—(अरबी मुआमिल:) मिल कर कोई काम करना, न्यायालय में कोई कार्य्य।

२०२—मुँह स्याह—सुफेद को काला करना, ख़िजाब लगाना।
भाव यह कि अब वृद्ध हो जाने के कारण न ब्याह ही करना है और न पराई स्त्री ही को रिझाने की क्षमता रह गई। अर्थात् ऐसा करना मुख में कालिख लगाने के समान है।

२०४—पाँच रूप···नलराज—इन लोगों पर बुरे दिन आ गये थे इसलिये छोटे काम भी करने पड़े थे।
पांडवों की कथा प्रसिद्ध है कि वे किस प्रकार जूए में कौरवों से हार कर बारह वर्ष वन में रहे थे और उसके अनंतर एक वर्ष तक अज्ञातवास किया था। इस समय प्रत्येक ने अलग अलग रूप धारण कर राजा विराट के वहाँ नौकरी कर ली थी।
नल और दमयन्ती की कथा भी प्रचलित है। जूए में हारने पर जब नल देशत्यागी हुए तब उनकी पतिव्रता स्त्री दमयंती ने भी उनका साथ दिया पर वह उसे जंगल में छोड़ कर चले गये थे और राजा ऋतुपर्ण के यहाँ घुड़साल में नौकरी कर ली थी।

२०७—कामादिक को धाम—पापों का घर, महापापी।
महापापी भी धोखे से राम नाम ले कर परमगति को प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत के अजामिल की कथा ही पर यह दोहा बना हुआ है।

२०८—बिथा—व्यथा, दुःख। गोय—छिपा कर।

२०९—देखिये दोहा नं० ६१।

२११—लाभ विकार—हानि।
संपुटी—शीशे के दो समान गोले जो एक में जुटे होते हैं और बीच में इतना बारीक छेद होता है कि एक में

का जल दूसरे में घंटे भर में चला जाता है। प्राचीन समय में इसी प्रकार की जल या रेत की घटी प्रचलित थी। इसी पात्र को संपुटी कहते हैं।

घरिआर—घंटा, कांस पात्र, जिस पर चोट देकर घंटा बजाते हैं।

२१२—यारी—मोह, ममता।

शिवि—काशिराज शिवि जब बान्नबे यज्ञ कर चुके तब इंद्र विघ्न डालने की इच्छा से अग्नि को कबूतर बनाकर और स्वयं बाज का रूप धारण कर उसका पीछा करता हुआ यज्ञ में पहुँचा। कबूतर रक्षार्थ शिवि के गोद में गिर पड़ा तब उन्होंने अपने शरीर का मांस देकर उसकी रक्षा करनी चाही पर तौलते समय सारे शरीर का मांस भी कबूतर के तौल बराबर नहीं हुआ तब उन्होंने अपना सिर काट कर पलरे पर रखना चाहा कि भगवान ने स्वयं पहुँच कर उसे स्वर्गलोक भेज दिया।

दधीचि—जब वृत्रासुर देवताओं के कुल शस्त्रों को निगल गया तब उन लोगों ने घबड़ा कर परमेश्वर की स्तुति की और उनके आज्ञानुसार दधीचि मुनि से जाकर उनकी हड्डी माँगी। उन्होंने परोपकारार्थ देहत्याग कर दिया और विश्वकर्मा ने उनकी हड्डी से वज्र नामक शस्त्र बनाया जिससे वृत्रासुर मारा गया।

२१३—पानी—जल, मान, प्रतिष्ठा, मोती की चमक। न उबरै—किसी काम का न रहना।

२१४—खीरा के समान ऊपरी प्रेम न रखना चाहिये। ऐसा प्रेम

स्वार्थी ही रखते हैं। कहावत है कि 'मन में कतरनी मुख में राम राम'।

२१५—पैंड़ा—रास्ता। सिलसिली—फिसलने वाली।

कवि कहता है कि प्रेम का मार्ग इतना चिकना है कि चींटी के पैर भी फिसलते हैं और लोग उस पर स्वार्थरूपी बोझ से लदा हुआ बैल ले जाना चाहते हैं। तात्पर्य यह कि ऐसे कठिन मार्ग को ऐरे गैरे सभी पार करना चाहते हैं। (कबीर बचनावली दो० ७६३)

२१६—जरदी—(फ़ारसी ज़र्दी) पीलापन।

भाव यह कि दोनों अपना अपना रंग छोड़ कर एक रंग हो जाते हैं।

२१७—बिआधि—व्याधि, विपत्ति, दु:ख।

२१८—भेषज—दवा, औषधि। व्याधि—रोग।

२१९—अगम्य—जहाँ जा नहीं सकते, जिसे विचार में ला नहीं सकते, विचार के परे अर्थात् ईश्वर संबंधी-ज्ञान।

भाव यह है कि जो इस विषय में कुछ पहुँच रखता है वह सुपात्र देखकर कुछ कह देता है पर जो कुछ नहीं जानते वे ही ब्रह्मज्ञानी बने हुए प्रलाप करते रहते हैं।

२२३—मभाव—जाओ, चलो, पानी में पैठो।

२२६—हलुकन—हल्के मनुष्य, छिछोरे, भूँसी। गरुए—भारी आदमी, गंभीर मनुष्य, अन्न।

२२७—गोत—गोत्र, एक गोत्र के लोग।

२२९—देखिये दोहा नं० १९९।

२३०—रहिला—चना। परसना—भोजन के लिये खाने की चीजों को सामने सजाना। यही भाव नं० २८७ के सोरठे में भी है।

२३१—तरैयन—तारे ।

भाव यह है कि राजाओं को सूर्य के समान न तपना चाहिए प्रत्युत् पूर्ण चंद्र सा, क्योंकि चन्द्रमा के प्रकाश में नक्षत्रगण जिस प्रकार उदित रहते हैं उसी प्रकार सम्राटों को अपनी छत्रच्छाया में राजों, मांडलीकों तथा सर्दारगण को भी सुखपूर्वक रहने देना चाहिये ।

जहाँगीर के अन्य दो भाई—दानियाल तथा पर्वेज मदिरा-पान के कारण पहिले ही मर चुके थे, इसलिये यह कहना कि जहाँगीर की राज्यलिप्सा के कारण भ्रातृ-वध करने पर यह दोहा कहा गया है, अशुद्ध है । कवि का भाव भी यह नहीं है । सूर्य, चंद्र तथा नक्षत्रों में सम्राट् तथा अधीनस्थ राजे और सर्दारों के संबंध ही की ध्वनि निकलती है, समान प्रतिद्वंदी का भाव नहीं है । इसमें से यदि कोई ऐतिहासिक ध्वनि निकलती है तो वह जहाँगीर के सुपुत्र ख़ुर्रम के उन प्रयत्नों पर हो सकती है, जो उसने दक्षिण के सुलतानों के अधीनता मान लेने पर भी उन्हें नष्ट करने में की थी । ख़ानख़ानाँ स्वभावतः पराजित शत्रु पर स्नेह रखते थे और मलिक अंबर आदि से तो इनकी मित्रता ही थी ।

२३२—खर—तिनका, घास, भूंसा । गुलियाना—गोला बना कर मुँह में ठूँसना ।

विषय में प्रसन्नता से लिपटे रहते भी उससे कहीं उत्तम दोनों लोक सुधारने वाला राम नाम लेते मनुष्य को वैसे ही बुरा लगता है, जिस प्रकार पशु मौज से घास पात खाता है पर गुड़ नहीं खाता ।

२३३—नै चलो—नम्रता से व्यवहार करो । फ़ारसी मिश्रित

कहावत है कि—ज़बाँ शीरीं—मुलुकगीरी, ज़बाँ टेढ़ी मुलुक बाँका।

२३५—घट-गुन—घड़ा और रस्सी।

घड़े और रस्सी ही को फूटने और टूटने का डर रहता है, तिस पर भी वह पानी खींच कर दूसरों ही को देता है। निःस्वार्थ परोपकार ही की प्रशंसा करनी चाहिये।

२३६—सर्प राग सुन कर प्रसन्न होता है और दूध पीता है, तिस पर डसना नहीं भूलता।

२३७—ढेकुली—गड़ारी जिस पर से रस्सी आती जाती है। ढारत—गलाना, घिसना।

२३८—चोरी करि होरी रची—प्रह्लाद जी की बूआ अर्थात् हिरण्यकशिपु की बहिन धोखे से इन्हें गोद में लेकर अग्नि में बैठी पर स्वयं जल गई और यह बच गये।

२३९—विषान—(सं० विषाण) सींग।

संस्कृत श्लोक 'साहित्य-संगीतकला-विहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः' का भाव ही इस दोहे में दिया गया है।

२४२—मुसल्मान आत्मा के आवागमन को नहीं मानते।

२४३—बेसाहियो—क्रय करना।

जिससे आँखें लग गई हैं, वह कुछ गिनता ही नहीं और उलटे फल यह हुआ कि जो सुख था वह भी हाथ से निकल गया, ऊपर से सोच और दुःख अपने आप ही पीछे लग गया। भाव यह है कि प्रेम करना सुख को गँवा कर दुःख मोल लेना है।

२४५—जम के किंकर—यमराज के दूत। कानि—आदर, दबाव, संकोच।

२४६—उपाधि—उपद्रव, व्यसन आदि। बादि—व्यर्थ।

२४८—स्वाभाविक सौंदर्य, भगवद्वार्ता, भजन के पद, उत्तम वस्त्र, सुवर्ण, दोहा, (छोटे छंद होने के कारण सुकवियों को इनमें भाव कूट कर भरने पड़ते हैं) और लाल (अमूल्य रत्न) को जितना ही ध्यानपूर्वक देखिए उतना ही उसका गुण अधिक दिखलाई पड़ता है तथा मूल्य बढ़ता है।

२४९—थाके ताकहिं—थकने पर भी देखती ही रहती हैं।

२५०—रोल—आंदोलन, कोलाहल। सनै सनै—धीरे, धीरे।

२५१—मैन—काम, कवि प्रेम-मार्ग की अगम्यता बतला रहा है।

२५२—बनारसी—काशीवासी अर्थात् गंगा के इस पार रहने वाले।

मगरूस्थान—मगधदेश अर्थात् गंगा के उस पार, जहाँ मृत्यु होने से मुक्ति नहीं होती। भक्तमाल में ऐसी कथा है कि एक पुरुष ने काशी आकर वहीं मृत्यु पाने के विचार से अपने हाथ पैर कटा डाले कि कहीं जा न सके पर दैवात् एक घोड़ा उसे मृत्यु के समय मगध मे लेकर जा पहुँचा।

२५४—चाणक्यनीति के प्रसिद्ध श्लोक 'वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं द्रुमालयं पक्वफलांबुभोजनम्। तृणानि शय्या परिधानवल्कलं न बंधु-मध्ये धनहीनजीवनम्' का यह दोहा आशय है।

२५६—घन—घना, गहिरा। तम—अंधकार। अवधि-आस—मिलने के निर्धारित समय की आशा, मीआद पर मिलने की आशा।

विरह-रूपी घने अंधकार में मिलने की आशा की झलक उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार भादों की रात्रि में जुगनू की चमक दिखलाई पड़ती है।

२५७—परोपकारी-पक्ष के मनुष्य धन्य हैं। वे जो कुछ दूसरों को देते हैं, उसका प्रतिफल उन्हें उसी प्रकार अवश्य मिलता है जिस प्रकार बाँटने वाले को अर्थात् मेंहदी लगाने वाले को भी उसका रंग लग जाता है।

२५८—मुकाम—(अरबी मुक़ाम) ठहरने का स्थान, ठहरना।

२५९—सलाम—(अरबी) आशीर्वाद, ख़ुदा का नाम।

२६०—लसकरी—(फ़ारसी लश्करी) सैनिक। सेल्ह—बर्छा, भाला। जागीर—(फ़ारसी) भूमि जो राज्य की ओर से किसी को वेतन या पुरस्कार के रूप में मिलती है।

२६४—नं० १८२ का दोहा इसी भाव तथा भाषा का है।

२६७—कूबर—रथ का वह भाग जिस पर जुआ बाँधा जाता है, हरसा, कुबड़ा।

स्वार्थ ही संसार में अवगुण बनाता है। टेढ़े मेढ़े हरसे की छाया को भला कोई भी आदमी पसंद करेगा, पर काम पड़ने पर यह औगुन भी गुण हो जाता है और लोग प्रसन्नता से उसी की छाया को काम में लाते हैं। भाव यह हुआ कि जब ग़रज नहीं रहती तभी सब अवगुण मालूम पड़ता है।

२६८—तुरिय—(सं० तुरीय) चौथा, मोक्ष की वह अवस्था जब भेदज्ञान का नाश हो जाता है और आत्मा ब्रह्म चैतन्य हो जाती है।

परा—जो सब से परे हो, श्रेष्ठ। स्वयं ब्रह्मज्ञानी, स्त्री सती तथा पुत्र सुयोग्य हो तो तीनों घर में परम पवित्र हैं।

२६९—जोखिता—योगिता, योगीपन, विरक्ति।

भाव यह है कि साधुता के लिए साधु तथा विरक्ति के लिए योगी ही प्रशंसा करते हैं पर शूर की उसके शत्रु भी प्रशंसा करते हैं।

२७०—बाट—बाज़ार, रास्ता।

२७१—संतत—सर्वदा, हमेशा।

सर्वदा से यह नियम रहा है कि संपत्तिमान समझ कर ही लोग उसे सब कुछ देते हैं, पर दीन दरिद्र की दीन-बन्धु ईश्वर के सिवा कोई सुधि नहीं लेता।

२७१—भरम—भेद, मर्यादा। धन-मर्यादा गँवा देने पर, दिन में उदित चंद्र के समान, कुछ हाथ में नहीं रह जाता।

२७३—लटी—बुरी।

२७४—चंद्रमा, बाल, साहस, पानी, प्रतिष्ठा और प्रेम ये सभी बढ़ते बढ़ते बढ़ भी जाते हैं और घटते घटते निःशेष भी हो जाते हैं। कवि इतना ही कह कर चुप अवश्य हो जाता है पर उसका भाव इतने ही तक नहीं समाप्त होता। वह उपदेश देता है कि इन सब को कभी घटने देने का अवसर ही न देना चाहिए, वरन् सर्वदा उनके बढ़ाते रहने ही में प्रयत्नशील रहना चाहिए।

२७५—भरत—(सं० भरण) पालन करता है।

सूर्य शीत तथा अंधकार हरण करता है और संसार का पालन करता है, इतने पर भी यदि उल्लू उसे घट कर समझे तो सूर्य का क्या बनता बिगड़ता है, यह उसी का उल्लूपन है।

२७६—जिस प्रकार कमान पर तीर चढ़ाते समय उसको अपनी

ओर खींच कर तब उसे दूर फेंकते हैं उसी प्रकार श्रीकृष्णजी ने अपनी ओर आकर्षित कर दूर कर दिया।

२७७—हरी—श्रीकृष्ण जी, हरण किया, दुःखहर लिया। श्रवन—कान।

यह दोहा भूरीसिंह ने विविध संग्रह में रहीम के नाम से दिया है।

२७८—बिसात—(अरबी) शक्ति, सामर्थ्य हैसियत।

तात्पर्य यह कि सामर्थ्य के अनुसार दूसरों की भलाई अवश्य करना चाहिये।

२७९—कदाच—कदाचित, कभी, देखिये दोहा नं० १२७।

२८०—जिसकी छाया पास नहीं है और फल दूर है, वैसे ताड़ खजूर के पेड़ों के बढ़ने से कोई लाभ नहीं। सूम से इन पेड़ों की समानता की गई है।

२८१—सीरो—ठंढा होने पर।

२८४—जिस प्रकार पत्थर पानी में डूब जाने पर भी भीतर से नम नहीं होता उसी प्रकार पुस्तक रट लेने वाले मूर्ख का ज्ञान है, जिसे विवेक ज्ञान नहीं होता। कहा ही है कि 'पढ़ लिख के पत्थर भए'।

२८५—गगन—आकाश। तिरै—उतरना, नीचे आना।

२८७—देखिये दोहा नं० २३०।

२८८—बिंदु—गोलाकार चिह्न, बूँद, यहाँ पृथ्वी से आशय लिया है। हेरन हार—खोजने वाला। हेरान—लोप हो गया।

मनुष्य सृष्टि के रहस्य का अन्वेषण करते आप ही आप उसी में विलीन हुआ जाता है।

२८९—देखिये दोहा नं० १३९।

नगर शोभा

१—आदि रूप—परमेश्वर, आदि पुरुष। रसन—ध्वनि, जिह्वा।
यद्यपि ईश्वर का प्रकाश शरीर भर में समा रहा है तिस पर भी मेरे मूर्ख मन में बोलने की शक्ति नहीं है कि उसकी स्तुति कर सकूँ।

२—'ना जाने केहि भेष में नारायण मिलि जाहिं' का भाव आया है। कभी कभी किसी 'नर' में 'नारायण' का आभास मिलने से आँखों की तृप्ति हो जाती है।

४—प्रजापति-परमेश्वरी—ब्रह्मा जी की शक्ति, सरस्वती। पवित्रता के लिये गंगा सरस्वती की उपमा प्रायः दी जाती है।

५—रति—प्रेम, कामक्रीड़ा। राज—राज्य, अधिकार। पचि—बहुत परिश्रम करके। कनक-कुसुम—चंपा का फूल। सान—जिला देना, तेज़ करना।

६—पारस पाहन—पारस पत्थर का गुण है कि लोहा उसे स्पर्श करते ही सोना हो जाता है। पुतरी—पुतली, सुन्दर स्त्रियों के लिये इसका उपयोग होता है।

भाव यह है कि यह पुतली मानों पारस का शरीर धारण करती है कि जिसके स्पर्श से पुरुष सोना हो जाता है।

८—आँखों से परे होते भी और बिना दृश्य घाव किये ही उसके विरह की चोट लगती है। पति के हृदय में साधारण पीड़ा नहीं करती प्रत्युत् हीरा सी गड़ जाती है अर्थात् मरण कष्ट देती है।

९—कैथिन—कायस्थिन, कायस्थ जाति की स्त्री। पारई—सकती।

११—भाइ—भाव का, समान।

घूँघट से आधा मुख दिखलाकर हृदय के दो टुकड़े कर दिए।

१३—सुरँग—लाल। बरइन—पान वाली, तमोलिन।
नेत्रों को अपना लाल वर्ण दिखलाकर मानों पान खिलाया। अपने विरही प्रेमी के प्रान को पान के समान फेरते हुए, नष्ट नहीं होने देती।

१४—पानी—आब, कांति, सौंदर्य। खौरे—लगाये हुये। बीरी—ओठों पर पान की जमी हुई ललाई, धड़ी।

१५—सुनारि—सुन्दर स्त्री, सोनारिन।

१६—रहसनि—काम-क्रीड़ा। बहसनि—वाचालता।

१७-८—पेक—पायिक, फेरी वाला, टुट पुँजहा व्यापारी। गरुए—भारीपन से धीरे धीरे। डाँड़ी मारना—कम तौलना।

१९—आनन—मुख। सुरत—कामकेलि। रंग—चिह्न।

२०—मार—निशान, मारे जाने वाले वस्तु।
अपने नैनरूपी हरिण से मेरे मन रूपी निशान को मरोड़ कर मारती है।

२१—गँवारि—ग्रामीण स्त्री, पनिहारिन से यहाँ तात्पर्य है। घनवा की—(सं० घनवाह) वायु या (संघनवल्ली) बिजली। उनहारि—एकरूपता, साम्य। अर्थात् वायु या विद्युत का गुण चपलता, फुर्ती से हट जाना।

२२—लेजू—रस्सी,रज्जु।

२३—काँजरी—कुंजड़िन, तरकारी भाजी बेंचने वाली।

२५-६—जेहरि—पैर का घुँघरूदार गहना। लोइन—लोचन, नेत्र। लौन—लावण्य, सुंदरता।

२७—कौरी बैस—छोटी अवस्था की युवती। सरवा—(सं०शराव) पुरवा, मिट्टी का जलपात्र।

मिट्टी से भरे हुये दो सुंदर तथा उलटे पुरवे स्तन के ऐसे दिखलाते हैं।

२९—धवै—बलती रहती है। लुहारि—लुहारिन, लोहार की स्त्री, लोहारी, लोहे का काम।

३०—पारि—डालना, डुबोना। घन—हथौड़ा। टोरि—तोड़ना। ताइ कै—तपा कर।

३२—गजक—चिखना।

३३—गोरस—दूध, इन्द्रिय-सुख।

३५—काछिन—तरकारी आदि की खेती करने वाली, शूद्रों की एक जाति।

३६—मूरा—बड़ी मूली। लौका—भारी कद्दू।

३८—लेह छुरी—यह पाठ ठीक नहीं ज्ञात होता। लेह तो लेइ होना चाहिए और छुरी के स्थान पर कोई हृदय वाचक शब्द होना चाहिये। छुरी से छुरी टेना ठीक नहीं जान पड़ता और साथ ही इस सब तैयारी का फल भी किसी पर होना चाहिये।

३९—तबाखिनी—थाल में खाद्य वस्तु लगाकर बेंचने वाली। हियरा भरै—भोजन का सुगंध ही देकर मन भर देती है, आकर्षित करती है। सुरवा—शोरबा, रसेदार माँस, हरीरा।

४०—दूभर—दुबले, कृश।

४१—बेलन—बेला के फूल।

४३—पाटंबर—पीताम्बर। पटइन—पटवा जाति की स्त्री।

४४—फूंदी—इजार बंद। फुँदना—रेशम, बादले आदि का गाँठ की तरह बना भब्बा।

४७—गुमान—घमंड, नखरा। कमाँगरी—कमानगर अर्थात्

धनुष बनाने वाले की स्त्री। फिरि कमान सी आइ—कमान के ऐसी फिर जाती है अर्थात् खींचने के बाद धनुष की प्रत्यंचा के समान लौट कर डट जाती है।

४८—सूधी करत—तपा कर किसी वस्तु को सीधा करना, अपने मन का बनाना अर्थात् वश में करना।

४९—बारत—बालती है, बोझती है। बेझा—(सं० वेधक) छेद करने वाला औज़ार।

५०—सरीकन—सलाख, शलाका, छड़। साल—वेदना, पीड़ा। दुख-संकट—पाठ ठीक नहीं ज्ञात होता। सरेस—चिपकने वाली वस्तु।

५१—छीपिन—कपड़ा छापने वाली, छीपी जाति की स्त्री। पीक—पान चबाने से एकत्र हुआ मुख में रस।

५२—मैन—सौंदर्य, सुन्दरता। सुरतंग—सुरति+अंग=(सुरत्यंग) काम कलोल का अंग में।

५३—सिकलीगरिन—ज़िलः करने वाले की स्त्री, धातु के वस्तु को चमकाने वाली। औसेर—अवसेर, अटकाव, वह बुकनी जिसे लगा कर ज़िलः किया जाता है। मुसकला—कठिनाई से, चमकाने का हथियार।

५५—संका—शंका, डर। सक्किन—भिश्तिन, पनिहारिन। चिबुक को कूप—ठुड्ढी के बीच का गड्ढा, फारसी काव्य-कला के 'चाहे जनख़दाँ' का अनुवाद है।

५७—गाँधिन—गंधी जाति की स्त्री। माजू तथा कुटली—कोई सुगंधित द्रव्य होंगे।

५८—कामेश्वर—प्रेम, स्नेह। चोआ—एक सुगंधि द्रव्य। चिहुर—केश, बाल।

५९—देस रूप की दीप—'देस' पाठ ठीक नहीं मालूम पड़ता।

भेस (वेषभूषा) हो सकता है। 'की' के स्थान पर के था और उससे दीप का अर्थ द्वीप ही उचित ज्ञात होता है। हाँ, यदि 'की' कर दिया जाय तब 'रूप देश की दीप' अर्थ बैठता है, इससे ऐसा ही पाठ रहने दिया।

६१—सतराइ—चिढ़ना, कोप करना। तुरकिन—तुर्क देश की स्त्री। तरकि—(फा० तर्क) छोड़ी, त्यागी।

६२—जार—जाल, फंदा। इजारा—ठेका, स्वत्व। इज़ार—लहँगा, शल्वार, सुथना।

६४—बैरागी—(वि०) विरक्तों सा। सिंगी—सींघ का बना हुआ बाजा। मुदरा—मुद्रा, योग के खास खास अंग विन्यास, जिसमें पहिला खेचरी कहलाता है।

६५—भाटिन—भाट की स्त्री। हटकी—मना करने पर भी। तरकि—छोड़ कर।

६६—दोहरा—दोहा, दोलड़ी। चौपाई—चौपाई, चौगुना। लौन—लावण्य, निमकीनपन।

अर्थ के सिवा जब एक प्रकार के कुछ वस्तुओं का नाम भी किसी पद से ध्वनित हो तब मुद्रालंकार कहलाता है। जैसे, यहाँ दोहरा और चौपाई शब्द आए हैं। नगर शोभा में इसके उदाहरण विशेष मिलते हैं।

६७—डोमनी—गाने वाली।

६९—चेरी—शागिर्द पेशा की औरत, चेला जाति की स्त्री। माती मैन की—काम पीड़िता, मतवाली। जँभुवाई कै—आलस्य से जम्हाई लेते हुए।

७०—रंग—यौवन, जवानी। रँग राती—रँग जाना, मस्त होना।

७१—नटनंदनी—नटिन, नट की पुत्री। कटाछन—काजल की रेखा, जो आँखों की कोर पर खींची जाती है।

७४—दाइरौ—(फा० दायर:) गोलाकार घेरा।

७५—कंचनी—साधारण वेश्या । भाना—सूर्य। भामै—प्रकाश करै।

७७—आवज—वाद्य विशेष। विभासै—विभास राग।

७८—बाँध—फंदा, फाँसने की तैयारी।

७९—अंगना—स्त्री। 'माँगना' पाठ था पर 'माँगि' आगे आया है और कर्त्ता वाचक दोहे में एक भी शब्द नहीं था इससे अंगना ही मिलता जुलता तथा सार्थक पाठ ठीक ज्ञात हुआ।

८०—चेटुवा—चिड़िया का बच्चा। लेह—लेहना अर्थात् चीरना।

८१—पातुरी—वेश्या। काय पाँच रसवान—रसीली पाँच इंद्रियों से।

८४—जुकिहारी—जोंक लगाने वाली। मास चखाइ कै—शरीर का सौंदर्य दिखला कर।

८८—कुंदिन—कुंदीगरिन, वस्त्र पर कुंदी करने वाली स्त्री। महमही—सुगंधित, खुशबूदार। बसेधी—बसी हुई।

९०—सबनीगरिन—साबुन बनाने वाली।

९२—थोपिन—मिट्टी थोपने वाली, मिट्टी का पलस्तर करने वाली।

९३—आरे—आड़े, तिरछे, दासा।

९४—कुंदन—सोने का महीन पत्तर जो जड़ाऊ काम में नग बैठाने के काम आता है। कुंदीगरिन—सोने चाँदी के पत्तर पीटने वाले की स्त्री।

९५—पगहि—प्रसन्न रहती है। मोगरी—काठ का बना हुआ हथौड़ा जिससे सोने चाँदी के टुकड़े रबर की थैली में रख कर कूटे जाते हैं।

९८—कोरिन—मोटा कपड़ा बीनने वाली शूद्र जाति की स्त्री।

९९—पानी मुख धरै—बुनते समय तानी पर मुख का पानी लबाब के लिये छिड़का जाता है, मुख पर सौंदर्य धारण करती है।

१००—दब्रगरिन—ढाल या कुप्पा बनाने वाले की स्त्री।

१०१—कुपी—चमड़े की बनी हुई कुप्पी, जिसमें तेल आदि चिकनी वस्तु रखी जाती है।

१०३—बिछुआ—पैर का एक आभूषण।

१०६—ठठेरिनी—बर्तन बनाने वाली, ठठेरा जाति की स्त्री।

१०७—गड़ुवा—टोंटीदार जलपात्र जिसकी गर्दन बड़ी पतली होती है। कठोर—यहाँ ठोस से तात्पर्य है।

१०८—कागदिन—कागज़ का व्यापार करने वाले की स्त्री।

११०—मसिकरिन—रोशनाई बनाने वाले की स्त्री। टौना डारई—जादू करती है।

११२—बाजदारिनी—बाज़ पक्षी पर नियुक्त सेवक की स्त्री। जरझकिनी—(ज़ेर = नीचे) नीचे को देखने वाली। (ज़र = धन) धन को चाहने वाली।

११३—सचान—श्येन पक्षी, बाज़। बाज़ से शिकार करा लेने पर शिकार को उससे ले लेते हैं और उसे खा जाने नहीं देते।

११६—भँगेरिनी—भँगेड़ी की स्त्री, भाँग पीने वाली, पर यहाँ भाँग बेंचने वाली से तात्पर्य है।

११७—सुरत—स्मरण शक्ति। हरुवैई—सहज ही में।

११८—बाजीगरिन—जादू का खेल दिखाने वाली। इसका पाठ 'बोजगरिन' (बूज़ = हलकी शराब + गर = बनाने वाला) था पर आगे 'खेलत बाज़ी' साफ़ बाज़ीगरिन

ही ठीक बतला रहा है। बाजार में शराब बनाने वाली क्यों खेलने बैठेगी। रसन—रसना, जीभ। इस प्रकार का खेल दिखलाने वाले बहुत बकते हैं।

१२०—चीताबानी—चीता पालने वाली।

१२१—लांक—लंक, कमर।

१२२—कठिहारी—लकड़हारिन।

१२४—घासिन—घसिहारिन, घास बेंचने वाली।

१२६—डफालिनी—मुसल्मानों की एक जाति जो डफ ताशा आदि बाजा बजाती है और उन बाजों का मरम्मत करती है।

१२८—गड़िबारिन—गाड़ी वाली, गाड़ी चलाने वाली। शिव-वाहन—बैल।

१३०—महत—बड़ी, सर्दार। महावतिन—हाथीवान की स्त्री।

१३१—कलाव—कलावा, हाथी के गले का रस्सा।

१३२—सरवानी—ऊँट हाँकने वाले की स्त्री।

१३३—मुहार—ऊँट की नकेल।

१३४—नालबंदिन—घोड़े के सुम में नाल बाँधने वाले की स्त्री। नाल—साथ, लोहे का टेढ़ा गोला किया हुआ टुकड़ा जो जूतों या सुम में जड़ा जाता है।

१३५—चिरवादारिनि—साईस की स्त्री। खरहरा—लोहे के दाँतों का ब्रुश, जिससे घोड़े साफ किये जाते हैं।

१३७—लुबधी—लालची। बगर—बड़ा मकान, महल। लुगरा—कपड़ा, वस्त्र। लिलाट—माथा, मस्तक।

१३८—गदहरा—गदहा, मूर्ख।

१३९—जिस प्रकार हुमायूँ बादशाह को बचाने वाले भिश्ती ने दो घड़ी के लिये अपनी मसक को कटवा कर उसके

सिक्के चलाए थे, उसी प्रकार यह भी दो दिनी यौवन के राज में तपना चाहती है।

१४०—अधोरी—चँदवा, ओढ़ना।

१४१—चूहरी—चूहड़ी, मेहतरानी, चंडालिन।

इन दोहों के भाव से मिलते हुए कुछ बरवै मिले हैं, जिनमें से यहाँ दो चार उद्धृत किये जाते हैं।

ऊँच जाति ब्रह्मनिया बरनि न जाय।
दौरि दौरि पालागी सीस छुआय॥
बड़ि बड़ि आँखि बरुनिया हिय हरि लेत।
पतरी के अस डोब, कजरवा देत॥
सुंदरि तरुनि तमोलिनि तरवन कान।
हेरै हँसै हरै मन फेरै पान॥
कलवारी मदमाती काम कलोल।
भरि भरि देय पियलवा महा ठठोल॥

बरवै नायिका भेद

बरवै—हिंदी शब्दसागर में लिखा है कि १९ मात्राओं का एक छंद, जिस में १२ और ७ मात्राओं पर यति और अंत में जगण होता है। इसे ध्रुव और कुरंग भी कहते हैं। उ० 'मोतिन जरी किनरिया बिथुरे बार।' उसी कोष में जगण का अर्थ उसी पृष्ठ तथा उसी कालम में दो बार लिखा है कि पिंगल के अनुसार तीन अक्षरों का संग्रह जिसका मध्याक्षर दीर्घ मात्रा युक्त हो और आदिम तथा अंतिम अक्षर ह्रस्व हों। जैसे 'रसाल, तमाल, जमाल'। दूसरे स्थान पर भी ऐसी ही परिभाषा देकर 'महेश, रमेश, गणेश और हसंत' उदाहरण दिये गये हैं। अब देखना है कि बरवै के उदाहरण में जो पद दिया गया है उसके अंत में 'रे बार' है और जगण की परिभाषा के अनुसार जगण नहीं हो सकता। अस्तु, अब निश्चित यही है कि बरवै में १९ मात्रा, १२ तथा ७ पर यति और अंत में दीर्घ तथा लघु होना चाहिए। जगण के पिंगल की कोई आवश्यकता नहीं।

नायिका भेद—रूप गुण संपन्न नायिका के स्वभाव के अनुसार तीन भेद होते हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा। पहिली प्रिय के अहित करने पर भी हित, दूसरी पति के हिताहित के अनुसार भलाई बुराई तथा तीसरी पति के हित करने पर भी अहित करने वाली होती है। धर्म के अनुसार भी स्वकीया, परकीया तथा गणिका तीन भेद हुये। अवस्था के अनुसार स्वकीया अर्थात् विवाहिता तथा परकीया अर्थात् परस्त्री मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा होती हैं। गणिका प्रौढ़ा ही मानी जाती है। यौवन के आगम को न जानने वाली अज्ञातयौवना तथा जानने वाली ज्ञातयौवना ये मुग्धा के दो भेद हैं। ज्ञातयौवना के पुनः दो

भेद किये गए हैं—नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा। पतिसमागम से संकोच करे वह नवोढ़ा और जिसे संकोच के साथ पति पर कुछ प्रेम तथा विश्वास भी हो वह विश्रब्ध नवोढ़ा कहलाई। लज्जा और वासना जिसमें समान हो वह मध्या और काम-क्रीड़ा में जो दक्ष हो वही प्रौढ़ा या प्रगल्भा कहलाती है। परकीया प्रेमिका के विवाहिता या अविवाहिता होने से ऊढ़ा या अनूढ़ा दो भेद होते हैं। व्यापार भेद से सभी नायिकाओं के कई भेद किये गये हैं—सुरति संगोपना, विदग्धा, लक्षिता, मुदिता, कुलटा, अनुशयाना, गर्विता तथा अन्यसंभोग दुःखिता। पहिली भूत, वर्तमान या भविष्य के कामकेलि को छिपाने के कारण तीन प्रकार की हो गई। दूसरी वाक्-चातुर्य या क्रिया चातुर्य के कारण दो प्रकार की होती है। तीसरी वह है जो अपनी क्रीड़ा को छिपा न सकी और चौथी काम-वासना पूरी करने का अवसर प्राप्त हुआ जान कर प्रसन्न है। कुलटा कुलटा ही है। भावी या वर्तमान संकेत स्थान के नष्ट होने या समय पर वहाँ न पहुँच सकने के कारण दुःखी अनुशयाना के तीन भेद हो गये। पति-प्रेम या सुन्दर रूप पाकर गर्व करने वाली दो प्रकार की गर्विता हुई और अपने पति के या प्रेमी के साथ रमण की हुई अन्य स्त्री को देखकर दुःखी स्त्री अन्य संभोग दुःखिता कहलाई।

इनके सिवा रहीम ने दस प्रकार की और नायिकाओं के उदाहरण दिये हैं, जैसे प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, वासकसज्जा, प्रवत्स्यत्पतिका, स्वाधीन-पतिका, आगतपतिका तथा अभिसारिका। पहिली पति के विदेश जाने से विरह-दुःख कातरा है तो दूसरी अपने पति के रात्रि भर हवा खाने के बाद घर लौटने पर दुःखी हो रही है। तीसरी पहिले कलह कर बाद को पछताती है और चौथी संकेत स्थान में

प्रेमी को खोजने पर भी नहीं पाती। पति का आगमन न होने से उत्कंठिता पाँचवीं है और सब तैयारी कर पति के आने का आसरा देखनेवाली छठी हुई। जिसका पति विदेश जाने वाला है वह सातवीं, जिसने पति ही को वश कर रखा है वह आठवीं और जिसका पति विदेश से लौटा हो वह नवीं है। पति या प्रेमी से मिलने जाने वाली दसवीं है। अंतिम के दिन और अंधेरी या चाँदनी रात्रि के समय अभिसार करने के अनुसार तीन भेद किये गये हैं—दिवाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका और शुक्लाभिसारिका। नायक के तीन भेद पति, उपपति और वैशिक हैं। पति विवाहिता होता है, उपपति जार है और वैशिक वेश्यानुरक्त है। एकपत्निव्रत अनुकूल, अनेक पत्नियों पर समान प्रीति रखने वाला दक्षिण, स्त्री के प्रति अपराध कर निर्लज्जता से विनय करने वाला धृष्ट और अपराधों को छल से छिपाने में चतुर शठ, ये पति के चार भेद हुए। उपपति वचन-चतुर या क्रिया-चतुर दो प्रकार का होता है।

१—कंद—मिश्री, साफ कर जमाई हुई चीनी।

४—बिन गुन पिय उर हरवा—हार का दाग जिसमें गूंधन नहीं उभड़ सका। हेरि—देखकर।

५—गुमनवा—मान, घमंड। बारि—आब, मान।

६—अहटाय—आहट नहीं लगती, लज्जा तथा संकोच से इतना धीरे पैर रखती है कि पायजेब बोलने नहीं पाता।

७—बिथुरे—छिटके हुए, खुले हुए।

८—नबेलिअहिं—नबेली स्त्री को, नवयौवना को। तिरछान—तिरछे होने लगे, चंचलता आने लगी।

९—लाय—आग।

१०—गोइअवाँ—संगिनी या सखी सहेली।

११—भाव—इच्छानुसार। चाव—चाह, वांछा।

१३—तरुनि—युवती स्त्री। घइलना—गगरा, जलपात्र।

१४—घरिअलवा—घड़ियाल, घंटा। पाठान्तर में घरिअलिया है जिसका अर्थ कोयल है।

१८—कटील—काँटों से भरी हुई।

१९—चोटार—तेज़, चोखी।

२०-२१—प्रेमी-प्रेमिका रति के अनंतर साथ पकड़े जाने पर बातों के फेर में वर्तमान सुरति को छिपा रहे हैं। २० में प्रेमिका इस प्रकार बातें कर रही है मानों उसने प्रेमी को किसी काम के लिये भेजा था और वह तत्काल आया है। दूसरे में दोनों के साथ ही जल्दी जल्दी आने से परिश्रम होना दिखलाया गया है। नवीन संग्रह आदि में यह अन्यसंभोग दुःखिता के उदाहरण में रखा गया है, जिसके कारण दूसरे पद में कुछ पाठ भेद हो गया है।

२३—छोहरिया—छोटी लड़की।

२४—बारन—बालने, जलाने।

२५—नथुनी बहुत छोटी है, इसलिये नाक के छिद्र में मन लगाकर सींक ही डाल दो।

२९—अवरन—औरों के। जवकवा—महावर, अलता। आगर—आगे।

३०—खीन मलिन बिख भैया—घटने बढ़ने वाला, सकलंक तथा उस समुद्र से उत्पन्न जिसमें से विष भी निकला था। विधु-बदनी—चन्द्र के समान मुख वाली।

३१—दाँतुल—दाँतेदार। सुगरुवा—भारी। नीरस—रसहीन। गुमान—विचार। लाल मूँगे से उपमा दिए जाने पर

रूपगर्विता अपने अधरों को उससे बढ़ कर बतला रही है।

३३—ऊन—दुःख, क्लेश।

३४—तरुनिअहिं—युवती नायिका को। रूख—वृक्ष।

३५—दवत—जलाती है। दवरिया—बन की अग्नि।

३६—संकेत स्थान से प्रेमी बाँसुरी बजा कर उसे बुला रहा है पर युवती उस ओर देख कर पछताती है।

३७—राम—(फा०) आरामे-दिल, प्रेमिका। अमरैया—बगीचा, कुंज।

३८—आसु—शीघ्र, जल्दी।

४१—लाखन……सकाम—लाखों ने उसकी बिछिया को देखते हुए उसे काम के वश में हुआ देखा।

४६—झर—लगातार वर्षा। करमै—कर्म, भाग्य। खोर—बुरा।

४७—मान—ग्रहण कर, कोप, नखरा।

४८—निचवइ जोय—नीचे देखती है। छिति—भूमि। छिगुनिया—छोटी उँगुली।

४९—पवढ़हु—सोओ, लेटो। बरोठवाँ—आँगन का बाहरी भाग, बैठका। डसाइ—बिछा कर।

५२—रैनि जगे कर निंदिया—रात्रि में जागने के कारण जो निद्रा आ रही है।

५३—जिसके लिये सगे संबन्धी, घर बार, अपने मित्र तथा परिवार वाले छुट गये वह पराए की सोच में है।

५४—बइरिनिया—वैरिणी, दुश्मन।

५५—जुरुते—तुरंत, तत्काल।

५७—मनुहार—विनय, प्रार्थना। लागेऊँ—लगाया। हिमकर

हीय—हृदय को शीतल करने वाले को, पत्थर से हृदय वाली।

५९—बिरिया—बार, मर्तबा।

६०—दुबराय—कृश हो कर, दुबली हो कर। धनिया—नायिका।

६१—उससवा—उसास, साँस। बिकरार—(फा० बेक़रार) उद्विग्न, घबड़ाई हुई।

६२—भौ—बह गया।

६५—भा जुग जाम जर्मिनिया—आधी रात हुई।

६७—हेरत—देखते हुए। भिनुसार—सबेरा।

७०—हरुए गवन—धीमी चाल से, धीरे धीरे।

७१—दै दृग द्वार—आँखों को द्वार पर लगाए हुए।

७२—अरसिया—ऐना, दर्पण। तिय—स्त्री।

७७—क्रमानुसार अपने को जल और प्रिय को मीन बनाया है।

७८—परकीया कहती है कि प्रेमी के दोनों नेत्र हमारे मुख चंद के चकोर हो रहे हैं। अर्थात् वह सर्वदा मेरा मुख देखा करता है और अपनी ही स्त्री तथा सुखकंद समझता है।

८०—गोदवा—तात्पर्य साथ।

जस······मत्त मतंग—जिस प्रकार नए मस्त हाथी को गड़दार सिपाही साथ लिवा चलते हैं। 'जैसे गड़दार अड़दार गजराज को, (भूषण)

८१—अछुअवा—आछू, बिछिया। गजपाय—महावत, गजपाल। हथिअवहा—हाथी।

८२—कँगनिआ—कड़ा।

८५—जरतरिआ—जरी का, रुपहले तार का।

८७—गौन—गमन, विदेश-यात्रा।

८८—ओबरिया—छोटा घर, कोठरी।

८९—फगुआ फेलि—फागुन के महीने को छोड़ कर।

९०—सुरत—स्मृति, ध्यान।

९३—मुद अवरेख—प्रसन्न हो।

९५—तीर—पास। सुहीर—हीरा।

९७—धनिकवा—धनी, नायक। केलिकला परबिनवा—काम कलोल में चतुर।

९८—वैसिक—वेश्यागामी।

९९—तात्पर्य यह कि पति के साथ सब दुःख उठाने को तैयार है।

१००—बेरियाँ—अवसर, मौका, साध।

१०२—डगरिया—मार्ग, रास्ता।

१०७—अलकिआ—बाल की लट। बनसी—मछली फँसाने की कँटिया। बार बधुअवा—वेश्या।

१०९—तकब—देखूंगी। ऐंठलि—मान करके।

१११—अवध बसरवा—जिस दिन पति आने को है उस दिन से पहिले के दिन।

११५—बिजन—पंखा।

११७—मनीय—कमनीय, सुंदर। अबलनिआ—अबला, नायिका।

———

बरवै

१—सिसु-ससि-सीस—चन्द्रभाल महादेव जी के पुत्र अर्थात् गणेश जी।

२—वृषभानु-कुँवरि—राधिका जी।

३—एव—(फ़ा० ऐब) दोष, मलिनता, पाप।

४—नागर—चतुर, बुद्धिमान। भरन—भरण पोषण करनेवाला। सुरसरि-सीश्र—गंगा जी जिसके सिर पर शोभित हैं, महादेव जी।

५—सुवन-समीर—वायु-पुत्र हनुमान। खल-दानव-बन-जारन—दुष्ट राक्षसरूपी जंगल को जलाने वाले।

६—बिलात—नष्ट होता है।

७—घुरवा—घोर, गरज। मुरवा—मोर।

८—अजौं—आज तक। बाम—स्त्री।

१०—बलबीर—बलराम जी के बीर अर्थात् श्रीकृष्ण।

११—बीज—बिजली।

१४—मया—प्रेम, मुहब्बत। अहरनिसि—दिन रात।

१५—चौगुन चाव—इच्छा चौगुनी हो रही है। दाँव—अवसर, मौका।

१७—मनभावन—प्रिय, प्रेमी। पयान—प्रयाण, यात्रा।

१८—धूम—धूमधाम, उपद्रव।

१९—उलहे—उत्पन्न हुए, निकले। पर—कंक पत्र जो तीर के पीछे बाँधे जाते हैं।

२०—शरीर को गलाना या जलाना सुगम है प्रेम में सच्चा उतरना अत्यंत दुर्गम है।

२३—मरुके—कठिनाई से।

२६—गाढ़—कष्ट, दुःख।

२७—ढोठनवा—पुत्र।

२८—अधम-उधार—पापियों का उद्धार करने वाले।

३१—चबाव—झूठी बातें, अपकीर्ति। कुदाव—कपट, धोखा।

३२—जाग—जगह, स्थान। भाग—भाग्य, कर्मफल।

३५—छितव—क्षिति, पृथ्वी। सुआस—आसा के अनुकूल, मनमाना।

३६—कामवासना रहित सच्चे प्रेम का निदर्शन है।

३७—नायक और नायिका अटारियों पर चढ़े हुए एक दूसरे को स्नेह के कारण देख रहे हैं और निरंतर वर्षा होते रहने पर भी वे जल की कुछ परवाह नहीं करते। कारण स्नेह (प्रेम तथा तैल) है। स्वभावतः चिकनाहट पर जल का असर नहीं होता।

३८—भूरि—निश्चय।

३९—पूठि—पीठ।

४१—चौथ मयंक—भादों मास का वर्णन है इससे भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी के चंद्र से तात्पर्य है जिसके देखने से, कथा है, कि अवश्य ही झूठा कलंक लगता है।

४३—मीत—मित्रता, प्रेम।

४६—जग-व्यौहार—समाज का बंधन। भाव यह कि कृष्ण से प्रेम करते ही कुल-कलंकिनी कहलायी थी और संसार के सब बंधन छुट गये थे। पर तब कृष्ण का प्रेम ही हमारे लिये सब कुछ था, अब तो वह भी न रहा।

५३—कोधौं—किधर, किस ओर।

५६—अकह कहान—न कहने योग्य बात।

६०—अवधि—निर्दिष्ट समय, अंतकाल। दुस्तर—कठिन, कठोर।

६२—लगनि—लगन, प्रेम, लगना, बल उठना।

६६—विरह के कारण निकलता प्राण पलकों तक पहुँच कर रह गया और आँखें मार्ग की ओर लगी रह गईं।

६८—तक—लज्जा, हार, भय। नेरे—पास।

७०—कल—सुन्दर, प्रिय।

७३—परम—श्रेष्ठ, बढ़ कर।

७५—जिसके लिये प्रेम करने के कारण बड़े लोग क्रुद्ध हो गये, वे मोहन भी ऐसे निर्मोही निकले।

८०—ब्यावर—प्रसूति की, बच्चा पैदा होने की।

८२—भावी प्रबल है कि पिंजरे में बंद होने पर भी चकवा चकई रात्रि समय एक दूसरे से विमुख होकर रहते हैं।

८३—ऊजरी—उज्ज्वल।

८५—दुचिती—दो चित्तावाली, घबड़ाई हुई। श्रीकृष्ण का चंचल चित्त ले लेने के कारण वह दो चित्त वाली अर्थात् चंचल हो रही है।

८६—इस हृदय को बिना प्रेमिका के एक एक घड़ी हजार वर्ष के समान बीतते हैं।

८७—नई सुन्दरी स्त्री के चरण-स्पर्श से प्रफुल्लित होने वाला अशोक शोक को मिटा देता है तो उसमें आश्चर्य क्या ?

८९—बयार—हवा।

९२—प्रगट—प्रकट होकर।

९४—ज़—पाठ 'अज़' था पर उससे एक मात्रा बढ़ जाती है, इसलिए ज़ कर दिया जिसका अर्थ भी 'से' है।

संसाररूपी शराब में कई सहस्र बार डूब जाय पर बिना प्रिय के हृदय कब शांत होता है।

९५—प्रिय ने कलेजे पर निगाह का तीर मारा था इसलिए हर दम वहाँ से तपी हुई आह निकलती है।

९६—अपने हाल को निगार अर्थात् प्रिय के आगे कैसे कहूँ? क्योंकि वह कभी अकेला नहीं मिलता, इसलिए हृदय लाचार है।

९७—काग उड़ाना—पति के विदेश जाने पर उसके आने का शकुन विचारने को कौए उड़ाना।

९४—कौरी—रूठी हुई, क्रुद्ध।

१०२—सुधाधर-प्यारे—चंद्रमारूपी प्रियतम। नेह—निचोर—स्नेह के सर्वस्व।

१०१—उर्दू शैर है कि 'जब आँखें हुईं चार। दिल में आया प्यार। जब आँखें हुईं ओट। दिल में आया खोट॥

इन्हीं का इस बरवै में भाव आया है। कवि का कथन है कि केवल चातक ही इसके विरुद्ध सच्ची प्रीति करता है।

१०२—भाव यह है कि पथिक की बोली उसे इतनी अच्छी लगी कि उसे फिर सुनने के लिए ननद से प्रार्थना कर रही है।

१०३—उपरिया—उपला, सूखे गोबर की चिपड़ी। गोहनै—संग, साथ।

१०४—अनधन—(सं० अन्य—धनी) दूसरी युवती स्त्री। अनख—डाह, द्वेष।

१०५—अनखन—डिठौना, काजल की बिंदी।

———

शृंगार सोरठा

१—जो स्त्री अग्नि लेने आई थी वह मेरे हृदय में प्रेमाग्नि प्रदीप्त कर चली गई। यह प्रेमाग्नि वह है जो प्रज्ज्वलित हो जाने पर बुझती नहीं प्रत्युत् भभक भभक कर बल उठती है अर्थात् प्रेम पुष्टतर होता जाता है।

२—तुरुक-गुरुक—मुसलमानों के गुरु पीर अर्थात् विरह पीड़ा। सुर-गुरु—जीव। चातक-जातक—चातक से उत्पन्न, पी-पी शब्द यहाँ प्रिय, पति। विनदेह—अनंग, कामदेव।

भावार्थ—पति-विरह-पीड़िता नायिका का वर्णन है। पति तो दूर चला गया है इससे अवसर पाकर कामदेव अपना प्रकोप दिखला रहे हैं। अधिक पीड़ा के कारण उस नायिका का प्राण डूब डूब कर फिर लौट आता है। जीव का बैठना या डूबना महाविरा है।

३—हिए—हृदय, हृदय के पास। साधारणतः स्त्रियों का स्वभाव है कि जब हवा रहती है तब वे दीप को रक्षार्थ आँचल से छिपा कर ले जाती हैं। नवल-बधू—नई बहू। सीसै धुनै—हवा लगने से दीपशिखा हिलती है। हिलती क्या है मानों पछता पछता कर सिर धुनती है

४—दुति—द्युति, कांति, मुख शोभा।

मुख शोभा मुस्कुराहट से द्विगुणित हो गई। कवि यह देख कर कहता है कि ऐसा भान होता है कि किसी ने दीप-शिखा को बढ़ा कर उसकी प्रभा भी बढ़ा दी है।

५—यक नाहीं यक—एक न एक।

भावार्थ—कवि का भाव है कि प्रेमी के हृदय में एक न एक पीड़ा हर समय होती ही रहती है। शारीरिक वेदना के समान वह एक चाल की क्यों नहीं होती।

६—श्वेत नेत्रों के बीच काली पुतली होती है उसी पर कवि ने एक सोरठे में दो उपमा रख कर विकल्प किया है। वह कहता है कि नेत्र में श्याम रंग की पुतली क्या है मानों श्वेत कमल में भौंरा शोभायमान है और फिर संदेह करता है कि कहीं चाँदी के अर्घे में शालिग्राम जी की बटिया तो नहीं रखी हुई है।

मदनाष्टक

१—शरद-निशि—शरद ऋतु की रात्रि, कृष्णलीला का महारास शारदीय पूर्णिमा ही से आरंभ होता है। निशीथे—अर्द्धरात्रि में। रोशनाई—ज्योति, प्रकाश, रोशनी। निकुंजे—कुंज में। मदन-शिरसि भूयः—कामदेव शिर में समा रहा है। बला—आफत, उपद्रव।

इस पद का भाव है कि श्रीकृष्ण जी ने महारास करने के लिए गोपियों को वंशी बजा कर बुलाया और वे भी उसे सुन कर तथा सब को त्याग कर इस प्रकार भागीं कि मानों उन्हें कोई बला लग गई है। इस के अनंतर एक सखी दूसरी सखी से साढ़े छ पद में श्रीकृष्ण के रूप आदि का वर्णन करती है और फिर उनके सौंदर्य का उसके हृदय पर कैसा असर हुआ है सो बतलाती है।

२—कलित—सुन्दर। बा—(फा०) साथ। चखन—(सं० चक्षु) आँख। मेला—बँधा हुआ। सेला—ज़री का साफा या दुपट्टा जो कमर में बाँधा जाता है। अलबेला—बाँका छैला।

३—मूँदरी—अँगूठी। अमल कमल ऐसा—निर्मल सुन्दर कमल के समान। हस्त—(फा०) हाथ।

४—कारी—(फा०) असर करने वाली। दिलदार—मनहरण, प्यारी। जुलफें—(फा०) बाल की लटें जो मुख के दोनों ओर लटकती हैं, अलक। कुलफें—(अ०) दुःख, कष्ट, धब्बा।

हे सखी, बिहारी के मनहरण कारी अलक को देख कर मैंने अपने मन के सारे धब्बों को स्वच्छ कर दिया अर्थात् मिटा दिया।

५—जरद--बसन--पीतांबर । गुलचमन—(फा०) फूलबाग।
रेख़्ता—(फा०) मिली जुली हुई भाषा अर्थात् उर्दू, एक प्रकार का गान जो ग़ज़ल के समान होता है। श्रुति—कान।

६—तरल—चंचल। तरनि—(सं०तरणि) नाव, स्थल कमलिनी। बिदारैं—फाड़ डालती हैं अर्थात् स्थान कर लेती हैं। बिल-सति—विलास अर्थात् खेल करती हैं, स्थान कर लिए हैं।

७—कमनैत–धनुर्धर। यहाँ यह विशेषण साभिप्राय है और इससे कमान का भाव लिया जायगा। दोनों भौंहें मिलकर मानों काम के धनुष की तरह शोभित हैं। सानी—शान धरी हुई, चुभती हुई। सार—लोहा, चोट।

८—मनमथांगी—कामोत्पीड़िता, कामदेव से सताई हुई। पठानी—पठान जाति की स्त्री।

फुटकर पद

१—अनियारे—नोकदार, चोटीले। सान—ज़िलः, तेज़ करना। बिषारे—विषैले, ज़हरीले। अगम—बुद्धि के परे, दुर्बोध। अगाधी—अथाह, समझ के बाहर। हरि-हिय—कृष्ण जी के हृदय। बोरे—नैन रूपी बान के हृदय में धँसाने से। घाइक—घाव करने वाले। घनेरे—बहुतों के।

२—पट—वस्त्र, आच्छादन। छदन—(सं० छदि—जीवित रहना, दृढ़ होना) भोजन। साहिबी—प्रभुत्व, ईश्वरत्व।

३—करतार—स्रष्टा, बनाने वाला। शीतहर—नमी सोखने वाला। तुषार—पाला। कलानिधि—चन्द्रमा।

४—निछोहिबो—प्रेम न करना, बेवफाई करना। मतों—हमलोगों से तात्पर्य है। उचरि गये—उचट जाने से, न लगने से। खोरि—दूषण, दोष। धाधबे-देखने के लियें।

५—गोहन—(सं० गोधन) गोशाला, खरिक। कमनैत—कमान चलाने वाला। दमानक—तीरों की बौछार, तीर चलाना। निशान—शिकार।

६—बार देर। बिनुहार—बिनुहार के अर्थात् हार की दूरी भी असह्य थी। पाठान्तर 'उनहार' अर्थात् सदृश है। भाव यह है कि हृदय को ऐसा बना रक्खा था। नसिया—नाश करने वाला अर्थात् रूठ गया। करबार—बाहर किया।

७—पाठान्तर—आनकदुंदुभि—बसुदेव।

८—अतुरीन—अकुलाई हुई, चंचल। करैटो—काँटा।

९—नाँधनि—शुरू करना, लगाना। साधनि—इच्छा, चाह। बाधनि—पीड़ा, ताप।

१०—खुरसाण—रजपूती भाषा में यह शब्द मुसलमानों के लिए प्रयुक्त होता है। यह शब्द खुरासान से बना है।

महाराणा प्रताप सिंह के पुत्र अमरसिंह जहाँगीर से युद्ध करने और परास्त होने पर जंगलों में घूमते घबड़ा गये तब उन्होंने खानखानाँ को निम्नलिखित दोहे लिख कर भेजे थे।

हाड़ा कूरम राव बड़, गोखाँ जोख करंत।
कहियो खानाखान ने, बनचर हुआ फिरंत॥
तुबरासु दिल्ली गई, राठौड़ाँ कनवज्ज।
राण पयंपै खान ने, वह दिन दीसै अज्ज॥

इसी के उत्तर में खानखानाँ ने यह दोहा लिख भेजा था। इसका अर्थ यह है कि 'धर्म रहेगा, पृथ्वी रहेगी (परन्तु) बादशाह का नाश होगा। हे राणा अमर! ईश्वर के ऊपर विश्वास रखो।' इस भविष्य वाणी पर उस समय शायद ही किसी ने विश्वास किया होगा?

११—गैन—दिन।

ऐसा कहा जाता है कि खानखानाँ ने इसका पूर्वार्द्ध बनाया था पर दोहे की पूर्ति नहीं कर सके तब किसी स्त्री ने उत्तरार्द्ध बनाया था।

१२—साल (फा० शाल) दुशाला। सधरनि—ऊपर के ओंठ। पुरइन—कमल के पत्ते।

१३—उनमानि—अनुमान।

कहा जात है कि जब खानखानाँ दर्शन के लिये जाकर गोविन्द कुंड की छत्री पर बैठे तब मुसलमान होने के कारण इनके लिये प्रसाद बाहर आया तब इन्होंने दोहा नं० १४५ कहा था। इसके अनंतर नाथ जी प्रसाद लेकर स्वयं बाहर आये तब इन्होंने ये दोनों पद गाये थे।

Printed at the 'Allahabad Press', Allahabad.